जयश्री सिन्हा

संस्कृत नाटिका विमर्श

संस्कृत
नाटिका
विमर्श

संस्कृत नाटिका विमर्श

डॉ० जयश्री सिन्हा

एम० ए०, पी-एच० डी०
संस्कृत-विभाग
बिहार विश्वविद्यालय
(एम० डी० डी० एम० कालेज)
मुजफ्फरपुर (बिहार)

कैपिटल पब्लिशिंग हाउस

दिल्ली-6

प्रकाशक :

प्रकाश चन्द नारंग

कैपिटल पब्लिशिंग हाऊस

358 कटरा शेख गंझा, हौज काज़ी दिल्ली-6

दूरभाष : 730155-731009

मूल्य दो सौ रुपये

मुद्रक : राजरानी प्रिंटर्स द्वारा सुरेन्द्रा कम्पोजिंग द्वारा श्री रामचन्द्र मार्ग
आदर्श मौहल्ला, पूर्वी मौजपुर, दिल्ली शाहदरा-53

माँ

की

पुण्य-स्मृति

में

आमुख

"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्"

मानव-रुचि में विभिन्नता होने पर भी सबों के लिए नाट्य आनन्दप्रद होता है। इसीलिए आचार्य वामन ने "सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः" इस डिण्डिमनाद से नाट्य रूप रूपक का श्रेयस्त्व बतलाया है। दशरूपक में नाटक का सर्वाधिक महत्त्व है।

स्त्रीपात्रों का बाहुल्य, नृत्यगीतादि के साथ श्रृंगार का प्राधान्य, चार अंगों का बन्धन, कैशिकी वृत्ति का प्रयोग आदि नाटिका के कतिपय अपने वैशिष्ट्य हैं। फिर भी साधारणतः नाटक के ही अनुसरण पर नाटिका की संरचना की जाती है। अतएव उपरूपक के भेदों में नाटिका की सबसे अधिक लोकप्रियता तथा महत्ता है।

भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' इसका प्रमाण है कि नाटिका भी नाटक के विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों से सम्बद्ध होने के कारण नाटक की कथावस्तु में व्यापकता है और राज-प्रासाद के अन्तरङ्ग वातावरण में आबद्ध रहने के कारण नाटिका की कथावस्तु में व्याप्यता है। फिर भी संस्कृत वाङ्मय में नाटिका-साहित्य प्रचुरमात्रा में उपलब्ध है।

लक्ष्य-लक्षण रूप में नाटिका की प्रचुरता को देखकर गवेषकों का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट हुआ है। इसी क्रम में 'संस्कृत नाटिका विमर्श' यह गवेषणात्मक तथा आलोचनात्मक कृति सहृदय पाठकों के समक्ष है। प्रकृत शोध-ग्रन्थ में [डा० जयश्री] सिन्हा ने नाटिका के सिद्धांत तथा प्रयोग इन उभय पक्षों पर निष्पक्ष विवेचन किया है और इस दिशा में निश्चित ही पाठकों को ज्ञानवर्धन की प्रचुर सामग्री दी है।

जितनी नाटिकाओं का सर्वाङ्गीण विमर्श इस ग्रन्थ में किया गया है संस्कृत में उतनी ही नाटिकाएं नहीं हैं लेखिका का यह संकेत प्रशंसनीय है। भारत जैसे विशाल देश की संस्कृतमय सुदीर्घ परम्परा में विरचित सभी नाटिका-साहित्य का विमर्श किसी एक गवेषक से संभव नहीं है, तो भी डा० सिन्हा की प्रकृत कृति में नाटिका के सिद्धांत और प्रयोग का जो वैदुष्यपूर्ण विविध विमर्श हुआ है वह निश्चित ही अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। इसके लिए डा० जयश्री सिन्हा को भूरि-भूरि हार्दिक बधाई और साधुवाद है। विश्वास है, सुधी समाज में इस ग्रन्थ का पूर्ण समादर होगा इतिशम्

जयमन्त मिश्र

कुलपति,

कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय

दरभंगा

23.3.85

पुरोवाक्

श्रीहर्ष के युग से नाटिका संस्कृत नाट्यकारों के प्रश्रय में विकसित-पल्लवित होती रही। यह विधा अपने अपने ढंग की अनूठी है। स्त्रीबहुल शृंगार प्रधान रचना होने के कारण राजकीय अन्तः पुर में इसका अभिनय सदा प्रेय रहा। समग्र नाटिका साहित्य जितना विपुल-रमणीय है, सांस्कृतिक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से उतना ही महत्त्वपूर्ण भी। ऐसी नाट्य विधा की समालोचना अपेक्षित थी। मुझे प्रसन्नता है कि डाक्टर जयश्री सिन्हा ने अपनी गवेषणा द्वारा इस अभाव की पूर्ति की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भरत, धनञ्जय, धनिक, रामचन्द्र-गुणचन्द्र, शारदातनय, शिङ्ग भूपाल, विश्वनाथ सदृश आचार्यों के सिद्धान्त-निरूपण के तुलनात्मक विवेचन के आलोक में नाटिका के प्रयोगात्मक विकास क्रम का समीक्षण किया गया है।

नाटिका नारी प्रधान रचना मानी गयी है। ऐसे उपरूपक भेद में नायक एवं नायकेतर पुरुष पात्रों की अवतारणा का महत्त्व कितना है, इसकी भी मीमांसा लेखिका ने की है।

संस्कृत नाटिका का प्रणयन जिस सांस्कृतिक-सामाजिक परिवेश में हुआ उसका उन्मीलन प्रथमवार इतने विस्तृत फलक पर इसमें हुआ है।

नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने नाट्यभाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किये हैं, उनकी समीक्षा करते हुए नाटिका की भाषिकी संरचना का भी विवेचन इसमें किया गया है।

इस प्रकार संस्कृत नाटिका के आलोचना-संदर्भ के रूप में यह ग्रन्थ शीर्षण्य है। सिद्धांत और प्रयोग इन दोनों पक्षों के विश्लेषण की दृष्टि से इतनी पूर्ण आलोचना अभी तक देखने में नहीं आयी है।

निस्संदेह यह प्रकाशन लेखिका की वैदुष्यपूर्ण आलोचना-क्षमता का परिचायक है। मैं इस श्रमसाध्य अनुशीलनपरक प्रकाशन के लिए डाक्टर जयश्री सिन्हा को बधाई देता हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विद्वज्जन इस कृति का समुचित समादर करेंगे।

16-3-1985

रामकरण शर्मा
कुलपति

कुलपति निवास
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

आत्मनिवेदन

संस्कृत-नाटिका-विमर्श बिहार विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत मेरे शोध-प्रबन्ध का परिवर्त्तित एवं परिवर्धित संस्करण है।

छात्रजीवन में मेरी अभिरुचि रूपक-साहित्य में अधिक रही। इस अभिरुचि ने उपेक्षित नाटिकासाहित्य के अध्ययन की ओर मुझे प्रेरित किया, जिसकी परिणति प्रस्तुत-ग्रन्थ के रूप में हुई है।

संस्कृत-नाट्य-परम्परा में नाटिका की विधा अतिप्राचीन न होने पर भी आचार्यों के सैद्धान्तिक विवेचन का विषय बनी रही है। भरत से लेकर विश्वनाथ तक सभी आचार्यों ने नाटिका के शास्त्रीय पक्ष का निरूपण किया है।

इसमें संशय नहीं कि आलोचकों ने रूपकभेदों में नाटक-विधा को सर्वाधिक महत्त्व दिया तथा सिद्धान्त-प्रयोग की दृष्टि से इसका गहन विश्लेषण किया। फलस्वरूप इन दोषैकदृक् आलोचकों की दृष्टि से नाटिका वञ्चित रह गयी। आलोचकों की इस उपेक्षा का कारण, सम्भवतः, उपरूपक की इस विधा में केवल राजवर्ग के अन्तःपुर ही के जीवन के चित्रण से जनित एकाङ्गिता रही हो। पुनः, राजवर्ग की क्रमिक अवनति ने भी, सम्भव है, इस नाट्य-विधा के आलोचकों के आकर्षण को क्षीण कर दिया हो।

आचार्यों के नाटिका-विषयक लक्षण-निरूपण इस तथ्य से प्रभावित हैं कि उपरूपक की यह विधा मूलतः राजभवन के अन्तःपुर की स्त्रियों के अनुरञ्जन का साधन रही। परन्तु इस विधा में राजा की प्रणयलीला को ही प्रधानता क्यों मिली, यह विचारणीय है।

नाटिका से जुड़ी विभिन्न शंकाओं एवं जिज्ञासाओं के समाधान के अभाव को देखते हुए इस ग्रन्थ के औचित्य को लेकर विवाद की संभावना नहीं दीखती। एक तो नाटिका-विधा की परम्परा ऋद्धिपूर्ण रही है, तथा दूसरे, तात्कालिक सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश के आकलन में इसका योगदान अस्वीकार करना अनुचित होगा। पुनः, सिद्धान्त और प्रयोग की दृष्टि से नाटिकाओं के विकासक्रम का आलोचन भी महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन सभी बिन्दुओं पर समग्रता से विचार करने का प्रयास किया गया है। सर्वथा मौलिक होने का दावा न करते हुए भी यह ग्रन्थ नाटिकाओं के आलोचकों एवं जिज्ञासुओं को संतोष दे सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन के क्रम में प्रतिनिधि नाटिकाओं को समाविष्ट करने का यथाशक्ति प्रयास किया गया है । सभी नाटिकाओं का विवेचन न तो सम्भव ही है और न सार्थक ही । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में नाटिका का कोई आलोचनीय पक्ष छूट नहीं गया है ।

वर्त्तमान युग में सामाजिक, राजनैतिक परिवेश नये मूल्य-बोधों से व्याप्त है । आधुनिक आलोचक एवं पाठक को, वर्त्तमान जीवन-दर्शन के इस संदर्भ में, नाटिका उल्लेख्य नाट्य-विधा के रूप में भले ही ग्राह्य न हो, परन्तु अतीत के विलुप्त सामंत-वर्ग के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष से जोड़ने का कार्य इसने अवश्य किया है । वस्तुतः नाटिका को सर्वथा आधुनिक युगबोध के ही संदर्भ में देखना अनुचित होगा ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की उपादेयता कितनी है यह साहित्य-रसिक आलोचकों की प्रतिक्रिया बतला पावेगी । मैंने इस ग्रन्थ को आलोचकों के लिए ग्राह्य बनाने की यथाशक्ति चेष्टा की है । महाकवि कालिदास के शब्दों में मेरा निवेदन यही है—

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।

जयश्री सिन्हा

संस्कृत विभाग,
बिहार विश्वविद्यालय,
(महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय)
मुजफ्फरपुर ।

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर गुरुजनों एवं शुभेच्छुओं को स्मरण करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। सर्वप्रथम अपने शोधप्रबन्ध के बाह्य परीक्षक गुरुकल्प डा० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य, भूतपूर्व मयूरभंज प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय एवं डा० रामकरण शर्मा, संयुक्त शिक्षा परामर्श-दाता, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार (अभी कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) के प्रति प्रणतिपुरस्सर कृतज्ञता अर्पित करती हूं। पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा, अध्यक्ष भोजपुरी अकादमी (भूतपूर्व कुलपति, कामेश्वरसिंह दरभंगा विश्वविद्यालय तणा पटना बिश्वबिद्यालय) के कृपापूर्ण आशीर्बचन के लिए विनयावनत हूं। बिहार विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति एवं गुरुवर्य डॉ० जयमन्त मिश्र को स्मरण करती हूं जिनके स्नेहसिक्त आशीर्वाद एवं उत्साहवर्धक प्रेरणा के फलस्वरूप ही मैं शोधकार्य की दिशा में अग्रसर होने का साहस जुटा पायी।

अपने निदेशक तथा गुरुवर डॉ० शिवशङ्कर प्रसाद, रीडर, संस्कृत-विभाग विहार विश्वविद्यालय की ऋणी हूं, जिनके निदेशन के अभाव में इस ग्रन्थ का पूर्ण होना स्वप्नमात्र रह जाता।

पटना विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय डॉ० बेचन झा का सादर स्मरण करती हूं। स्नातक (आनर्स) स्तर पर मेरे संस्कृत के अध्ययन में उनके मार्ग-दर्शन का अत्यन्त महत्त्व रहा है।

महन्तदर्शनदास महिला महाविद्यालय के संस्कृत-विभाग की भूतपूर्व अध्यक्षा स्वर्गीया श्रद्धा मजुमदार ने कालेज जीवन के प्रारम्भ से ही संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन के प्रति मुझे आग्रही बनाया और इसका प्रतिफलन प्रस्तुत ग्रन्थ है।

बिहार विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष प्रो० हरिप्रपन्न द्विवेदी, तथा गुरुवर्य प्रो० ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार (भागलपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष) के प्रति उनकी सदाशयता तथा उत्साहवर्धन के लिए आभार व्यक्त करती हूं।

स्वर्गीया श्रीमती अदिति दे, अध्यक्षा, संस्कृत-विभाग पटना विश्वविद्यालय, को उनके स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन के लिए सादर प्रणतिपूर्वक स्मरण करती हूं। उन्हें इस पुस्तक को देखकर जो आह्लाद होता उसकी अनुभूति से मैं वञ्चित हो गयी हूं।

अपने गुरुवर श्री श्रीबन्धु चौधरी, एम०ए० (त्रय) के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूं, जिन्होंने अनेक गुत्थियों के सुलझाने में अमूल्य सहायता की है।

महन्तदर्शनदास महिला कालेज की प्राचार्या श्रीमती ललिता सिंह के प्रोत्साहन ने इस ग्रन्थ को शीघ्र पूरा करने के लिए विवश किया है। उनकी सदिच्छा के लिए मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूं। संस्कृत विभाग की अध्यक्षा डा० इन्दर कौर और सहयोगिनी श्रीमती सीमा बोस की सहृदयता ने इस गुरुतर लेखन-कार्य को सहज अनायास पूर्ण होने दिया है।

महाविद्यालय की भूतपूर्व पुस्तकाध्यक्षा सुश्री रिनि सेन के प्रति आभार व्यक्त न करना अनुचित होगा, क्योंकि इस कार्य में उनका साहाय्य मेरे लिए अत्यन्त मूल्यवान् रहा है।

इस पुस्तक के प्रकाशन के क्रम में जिन शुभेच्छुओं को स्मरण न करना अपराध-बोध से भर देगा उनमें उल्लेख्य हैं : स्वर्गीय कार्त्तिक प्रसाद डोगरा, श्री ब्रजकिशोर चक्रवर्ती, तथा डा० नन्दकिशोर शर्मा। उनके आशीर्वचन-शुभकामना मेरी सफलता के मार्ग में पाथेय बने हैं।

अपने परिवार के सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना औपचारिकता होगी। वस्तुतः उनकी सदिच्छा एवं मंगलकामना का पाश्रय पाकर ही यह कार्य पूरा हो सका है।

अन्त में प्रकाशक श्री प्रकाशचन्द को धन्यवाद देती हूं, जिन्होंने पुस्तक के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए यथाशक्ति प्रयास किया है।

जयश्री सिन्हा

विषयानुक्रम

षष्ठ अध्याय

नाट्य-स्वरूप एवं प्रभेद-निरूपण

समाज के सभी वर्गों के मन को परितोष देने एवं धार्मिक आस्था के समावेश के लिए भारतीय पौराणिक परम्परा में नाट्य की दैवी उत्पत्ति का संकेत है। नाट्यवेद ब्रह्मा द्वारा रचित है। नाट्यवेद के अनुसार आरम्भ में नाट्य की कथावस्तु में ऐसे प्रसंगों का उल्लेख था, जिनमें देवों और दैत्यों का संघर्ष और अन्त में दैत्यों की पराजय का विवरण प्रस्तुत किया गया था। अपने वर्ग की पराजय का इस प्रकार उल्लेख और प्रदर्शन किया जाना दैत्यों को असह्य लगना स्वाभाविक था और इसी कारण नाट्य-प्रदर्शन के अवसर पर दैत्यगण तरह तरह के विघ्नों से आयोजन को विफल बनाने के लिए कटिबद्ध रहा करते थे। अतः नाट्य-प्रदर्शन निर्विघ्न सम्भव हो सके, इस उद्देश्य से एक ओर जहां नान्दीपाठ, देवपूजन एवं स्तुति तथा भरतवाक्य आदि धार्मिक नियमन का नाट्य में समावेश किया गया, वहीं दूसरी ओर विश्वकर्मा का आवाहन कर उनके द्वारा ऐसे सुदृढ़ नाट्यगृह के निर्माण की ओर आग्रह दिखलाया गया जहां दैत्यों के सभी विघ्नकारी प्रयत्न विफल हो जायं और नाट्य-प्रदर्शन की समाप्ति तक किसी प्रकार की बाधा न हो। पौराणिक आख्यान में उपरिनिर्दिष्ट दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु नाट्यकला धार्मिक आस्था एवं वास्तुकला के विनियोग इन उभय तत्वों से प्रभावित होने लगी।

यह उल्लेखनीय है कि नाट्योत्पत्ति के इतिहास के आख्याता एवं आदि आचार्य भरत ने नाट्यवेद के लोकधर्मी होने का उद्घोष एकाधिक बार किया है।[१] वस्तुतः नाट्य को जीवन से भिन्न नहीं माना गया। देव, असुर, लोक अर्थात् सामान्य जन तथा ऋषिवर्ग के वृत्तांत ने नाट्य की व्यापकता की सृष्टि की।[२]

---

१. भरत, नाट्यशास्त्र,

लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्। १/७८

२. भरत, नाट्यशास्त्र,

हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत्।
देवानामसुराणां च राज्ये लोकस्य चैव हि।
ब्रह्मर्षीणां च विज्ञेयं नाट्यं वृत्तान्तदर्शकम्॥ १/७९

इस प्रकार नाट्य का परिवेश देवों के धार्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित, कलाकार विश्वकर्मा की निर्मात्री प्रतिभा से समन्वित एवं लोकाचार से व्याप्त हो चला। नाट्य के इन तत्त्वों का सन्निवेश आचार्य भरत ने अपने सिद्धान्त-ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में किया है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार नाट्य की उत्पत्ति त्रेता युग में ब्रह्मा के द्वारा की गई। त्रेता युग में देवगण ब्रह्मा के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि किसी ऐसे वेद की रचना करें जिसका अनुशीलन शूद्र भी कर सकें, क्योंकि शूद्रों के लिए निःश्रेयस् का कोई अन्य साधन नहीं था। वेदाध्ययन उनके लिए वर्जित था।[३] अतः प्रजापति ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर सार्ववर्णिक पञ्चम वेद की रचना की।[४] उमा महेश्वर ने लोकानुरंजन के लिए लास्य एवं ताण्डव नृत्य का सहयोग देकर इसका संवर्धन किया, विश्वकर्मा ने रंगमंच बनाया और विष्णु ने चार नाट्यशैलियां दीं। इस प्रकार मनुष्यमात्र को अनुरंजित करने के लिए प्रजापति ने भरतमुनि को इस पंचम वेद का प्रचार और प्रसार करने का भार सौंपा। वस्तुतः ऐसा कोई शास्त्र, शिल्प, विद्या और कला नहीं है जिसका नाट्यशास्त्र में समावेश न हो।[५] नाट्य का मुख्य उद्देश्य ऐहिक जीवन की नाना वेदनाओं से परिश्रान्त जनसमूह का मनोरंजन करना हैं।[६] इस प्रकार यह देव, दानव एवं मानव समाज के आमोद-प्रमोद का सरल साधन है।

नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत के अतिरिक्त शिलालिन् तथा कृशाश्व नामक नटसूत्र के आचार्यों का उल्लेख मिलता है।[७] इन दो आचार्यों का नटसूत्र

३. भरत, नाट्यशास्त्र,

न च वेद विहारोयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पंचम सार्ववर्णिकम्।। १/१२

४. भरत, नाट्यशास्त्र,

जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। १/१७

५. भरत, नाट्यशास्त्र,

न तच्छास्त्रं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो, न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।। १/८२

६. भरत, नाट्यशास्त्र

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम्।। १/८०

७. पाणिनि, अष्टाध्यायी,

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। ४.३.११०
कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। ४.३.१११

ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। केवल भरत का नाट्यशास्त्र ही उपलब्ध है। यह ग्रन्थ दो पाठान्तरों में है, उत्तरीय पाठ और दाक्षिणात्य पाठ। इस ग्रन्थ में छत्तीस अध्याय प्राप्य हैं, परन्तु निर्णयसागर मुद्रणालय से प्रकाशित ग्रन्थ में सैंतीसवें अध्याय का भी समावेश है। पहले अध्याय में नाट्योत्पत्ति, दूसरे में मण्डपविधान तथा अगले तीन अध्यायों में नाट्यारम्भ की पूर्व प्रक्रिया का विवरण है। छठे और सातवें अध्यायों में क्रमशः रस तथा भाव का विशद विवेचन है। आठवें अध्याय में आंगिक अभिनयों का निरूपण किया गया है। नवम अध्याय में हस्तादि उपांगों का अभिनय बतलाया गया है। दशवें अध्याय में आकाशचारी, भौमचारी इत्यादि का वर्णन है। ग्यारहवें अध्याय में मण्डलों के भेद बतलाए गए हैं। बारहवें में गति-प्रचार तथा पात्र के रंग-प्रवेश की विधि का वर्णन किया गया है। तेरहवें में बाह्य एवं आभ्यन्तर स्थानों के विभागों का वर्णन तथा चौदहवें अध्याय में वाचिक अभिनय एवं छन्दों का विधान है। पन्द्रहवें में वृत्तों का सोदाहरण परिचय और सोलहवें में छत्तीस प्रकार के लक्षणों के नाम बतलाये गये हैं। सतरहवें में भाषा के लक्षण और नियम का विवरण है। नाट्य लक्षण तथा उसके भेदों का विस्तृत विवेचन अठारहवें और उन्नीसवें अध्यायों में है। बीसवें अध्याय में वृत्तियों का विवेचन है। इक्कीसवें अध्याय से तेइसवें अध्याय तक आंगिक अभिनय का वर्णन है। चौबीसवें अध्याय में पुरुष एवं उसकी प्रकृति का तथा पच्चीसवें अध्याय में चित्राभिनय का विवेचन किया गया है। छब्बीसवें में अनुरूपा, विरूपा तथा रूपानुरूपिणी इन तीन प्रकार की भूमिकाओं का उल्लेख है। सत्ताइसवें अध्याय में सिद्धियों के अधीन प्रयोग एवं अट्ठाइसवें में वाद्य की चार विधियों के प्रयोग मिलते हैं। उनतीस से चौंतीस तक गीतवाद्यों का विवरण दिया गया है। पैंतीसवें अध्याय में भूमिका की दृष्टि से पात्रों के आकल्प की व्याख्या है। छत्तीसवें अध्याय में नाट्यावतार तथा सैंतीसवें अध्याय में गुह्यतत्त्वों के उल्लेख के माध्यम से नाट्यशास्त्र के माहात्म्य के निदर्शन के साथ ग्रन्थ का उपसंहार किया गया है।

भरत के अतिरिक्त अन्य आचार्यों में प्रमुख रामचन्द्र गुणचन्द्र, धनंजय-धनिक एवं विश्वनाथ हैं। इन आचार्यों ने संस्कृत-साहित्य-धारा का अवगाहन कर सिद्धान्त-प्रयोग की दृष्टि से काव्यगत विशेषताओं का सूक्ष्म विवेचन किया है।

संस्कृत काव्यधारा दो सरणियों में विभक्त है—दृश्य और श्रव्य[८]। दृश्य-काव्य वह है, जिसका आस्वादन मुख्यरूप से चक्षुरिन्द्रिय द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत श्रव्यकाव्य के श्रवण तथा अध्ययन दोनों से आनन्द की उपलब्धि

८. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

'दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्' ६/१

होती है। यों तो रेडियो-रूपक सदृश दृश्यकाव्य श्रवणेन्द्रिय द्वारा भी आस्वाद्य होता है पर चक्षुरिन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होने के कारण जो आनन्द रंगमंच पर अभिनीत दृश्यकाव्य से होता है, वह रेडियो रूपक सदृश दृश्य काव्य से नहीं होता।

दृश्यकाव्य अभिनेय है।[९] यह रंगमंच की वस्तु है। अभिनेय के द्वारा दर्शकों में रसोद्‌बोध उत्पन्न करना ही इसका उद्देश्य है। रंगमंच की साजसज्जा एवं अभिनेताओं के कायिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक अभिनय को देखकर सामाजिक को आनन्द की अनुभूति होती है।

दृश्यकाव्य का नामान्तर रूपक है। रूप का आरोप होने के कारण ही इसे रूपक नाम दिया गया है।[१०] रूपक में अभिनय करनेवाला नट किसी अनुकार्य का रूप धारण करके उसके अनुसार हाव-भाव प्रदर्शित करता है। इस प्रकार एक व्यक्ति के रूप का आरोप दूसरे व्यक्ति में होता है। कहीं-कहीं रूपक के लिए रूप शब्द का प्रयोग भी मिलता है।[११] नाट्यशास्त्र में दशरूप शब्द का प्रयोग दश रूपकभेदों को ध्यान में रखकर किया गया प्रतीत होता है।[१२]

रूपक शब्द का प्रयोग ईसवी शताब्दी पूर्व से ही प्रचलित रहा होगा, क्योंकि नाट्यशास्त्र में इसका प्रयोग दृष्टिगत होता है। नाट्यशास्त्र का समय ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी से तृतीय शताब्दी ईसवी तक के बीच माना गया है।[१३]

---

९. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,
'दृश्यं तत्राभिनेयम्' ६/१

१०. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,
'तद्रूपारोपात्तु रूपकम्'। ६/२

धनञ्जय, दशरूपक
'रूपकं तत्समारोपात्' १/७
(नटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्त्तमानत्वाद्रूपकं मुखचन्द्रादिवत्)
पृ-४

११. धनंजय, दशरूपक,
'रूपं दृश्यतयोच्यते' १/७

१२. भरत, नाट्यशास्त्र
'वर्त्तयिष्याम्यहं विप्राः! दशरूप विकल्पनम्' १८/१

१३. Kane, P.V., History of Sanskrit Poetics, pp 40-47
डॉ० मनमोहन घोष के अनुसार १०० ई० पू० से २०० ई० सन् के बीच नाट्यशास्त्र की रचना हुई होगी।

रूपक का एक अन्य अभिधान नाट्य भी है।[१४] नाट्य अनुकृति है।[१५] मानव में शैशव से ही अनुकृति की प्रवृत्ति होती है। अनुकृति या अनुकरण की प्रवृत्ति आनन्दमूलक है। मन के रंजन में यह प्रवृत्ति सहायक होती है। जहां तक रूपक नाम का प्रश्न है उसकी अनुकरणमूलकता तो स्पष्ट ही है। पाश्चात्त्य दार्शनिक अरस्तू के अनुसार भी नाटक अनुकरणकला है।[१६] अनुकरण से अभिप्राय है साहित्य में जीवन का वस्तुपरक अंकन जिसे हम अपनी भाषा में जीवन का कलात्मक पुनर्निमाण कह सकते हैं।[१७] अरस्तू ने कवि को चित्रकार की ही तरह अनुकर्त्ता माना है।[१८]

आचार्य भरत ने भी नाट्य को लोक स्वभाव का अनुकरण या लोकवृत्त का अनुकरण माना है।[१९] स्वभाव तथा वृत्त शब्दों का प्रयोग यहां व्यापक अर्थ में किया गया है। इसके अन्तर्गत लोकजीवन के समस्त अन्तर्बाह्य पक्षों का समावेश है। भरत ने केवल वेशभूषा आदि बाह्यरूपों का ही नहीं अपितु स्थायी, संचारी आदि मानसिक वृत्तियों की अनुकृति का भी सूक्ष्म विवेचन किया है। नट-नटी द्वारा किसी अवस्था विशेष की अनुकृति को नाट्य कहा जाता है।[२०] यह अनुकरण चार प्रकार के अभिनयों द्वारा अनुकार्य और अनुकर्त्ता की एकता की पूर्णता प्रकट करता है। आचार्यों ने इन चार प्रकार के अभिनयों को वाचिक, सात्त्विक, आंगिक, और आहार्य बताया है। कथोपकथन की अनुकृति वाचिक अभिनय है। भावों

१४. धनंजय, दशरूपक,

'नटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्त्तमानत्वाद्रूपकं
मुखचन्द्रादिवत् इत्येकस्मिन्नर्थे प्रवर्तमानस्य
शब्दत्रयस्य इन्द्रः पुरन्दरः शक्रः
इतिवत्प्रवृत्तिनिमित्तभेदो दर्शितः।' १/७ (वृत्ति)

१५. धनंजय, दशरूपक,

'अवस्थानुकृतिः नाट्यम्' १/७

१६. नगेन्द्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ०-१०

१७. James S., The Making of Literature.

१८, नगेन्द्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ०-६६

१९. भरत, नाट्यशास्त्र,

'लोकवृत्तानुकरणं शास्त्रमेतन्मया कृतम्' १/७८

२०. शिङ्गभूपाल, रसार्णवसुधाकर,

नटस्यातिप्रवीणस्य कर्मत्वान्नाट्यमुच्यते।
यथा मुखादौ पद्मादेरारोपे रूपकप्रथा।
तथैव नायकारोपो नटे रूपकमुच्यते॥ ३/१-२

का प्रदर्शन सात्त्विक अभिनय है। भावप्रदर्शन के लिये हस्त, चरण, नेत्र, भौंह, कटि मुख, मस्तक आदि अंगों की विविध चेष्टाएँ आंगिक अभिनय हैं। देशकाल के अनुरूप वेशभूषा, चालढाल, रहनसहन की अनुकृति आहार्य है। इस अभिनय-चतुष्टय के सहायक हैं—नृत्य, गीत, वाद्य, गति, वृत्ति, प्रवृत्ति, आसन और रंगमंच, जो कि नाट्य के ही अन्तर्गत हैं।[२१] जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका है आचार्य भरत ने नाट्य को अनुकरण पर आधृत माना है।[२२] धनंजय ने इसी का समर्थन करते हुए अवस्था के अनुकरण को ही नाट्य माना है। वृत्तिकार धनिक का भी कथन है कि जहां काव्य में निबद्ध या वर्णित धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त प्रकृति के नायकों तथा विभिन्न प्रकार की नायिकाओं एवं अन्यपात्रों के आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक इन चार प्रकार के अभिनयों के द्वारा अवस्थानुकृति की जाती है, वह नाट्य है।[२३] अवस्थानुकृति से तात्पर्य यह है कि इसमें वेशभूषा, आचार, व्यवहार, चाल-चलन इत्यादि के द्वारा पात्रों की तादात्म्यापत्ति हो, यथा नट राजा उदयन की प्रत्येक प्रवृत्ति की ऐसी अनुकृति करे कि दर्शक उसे उदयन ही समझें। अभिनय के समय अनुकार्य उदयन और सफल अनुकर्त्ता नट में भेद नहीं रह जाता- उसमें परस्पर अभेद प्रतिपत्ति होने लगती है। पाणिनि के अनुसार नट् धातु से नाट्य शब्द निष्पन्न होता है।[२४] भट्टोजिदीक्षित ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तकौमुदी के

---

२१. भरत, नाट्यशास्त्र,

विभावेनाहृतो योऽर्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते।
वागंगसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः॥
वागंगमुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते॥
नानाभिनयसंबद्धान्भावयन्ति रसानिमान्।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः॥ ७/१-३

धनंजय, दशरूपक,

सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्भावभावनम्।
पृथग्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्त्विकः॥ ४/४

२२. भरत, नाट्यशास्त्र,

'लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्'। १/७८

२३. धनंजय, दशरूपक,

काव्योपनिबद्धधीरोदात्ताद्यवस्थाकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्नाट्यम्'। १/७ (अवलोक टीका)

२४. पाणिनि, अष्टाध्यायी,

छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः' ४.३.१२९

तिङन्त प्रकरण में 'णट् नृतौ' ऐसा लिखा है।[२५] इसका तात्पर्य यह निकलता है कि गात्र-विक्षेप और अभिनय दोनों ही अर्थ में नट् धातु का प्रयोग मान्य था। आगे चलकर नृत् धातु का गात्र-विक्षेपण के अर्थ में तथा नट् धातु का अभिनय के अर्थ में प्रयोग होने लगा। पाणिनि का मत ही प्रतिष्ठित समझा जाता है। वेबर ने नट् धातु को नृत् धातु का प्राकृत रूप माना है।[२६] विलियम्स, मांकड आदि उक्त मत के समर्थक हैं।[२७] नाट्य से भिन्न नृत्य है। नाट्य रसाश्रित है तो नृत्य भावाश्रित।[२८] अतः उनमें विषय-भेद है। नाट्य में पात्रों का सर्वांगीण चित्रण करते हुये रस की परिपुष्टि की जाती है, जबकि नृत्य में केवल भावों की अभिव्यंजना रहती है। नृत्य शब्द की व्युत्पत्ति नृत् धातु से हुई है जिसका अर्थ है गात्रविक्षेप। इसमें आंगिक अभिनय की बहुलता है, कथोपकथन आवश्यक होता है, किन्तु नृत्त में केवल गात्रविक्षेपादि ही होता है। कथोपकथन का वहां अभाव रहता है। नृत्य-विशारद को नर्त्तक कहते हैं, नट नहीं। अतः नृत्य नाटकादि रूपकों से सर्वथा भिन्न है। नाट्य या रूपक का उदाहरण जहां शाकुन्तलम् है, वहां नृत्य के उदाहरण के लिए उदयशंकर के भावनृत्य को ले सकते हैं। पुनः नृत्त, नृत्य से भिन्न है, जबकि दोनों में ही गात्र-विक्षेप समान रूप से पाये जाते हैं। नृत्य में अनुकरण पाया जाता है, किन्तु नृत्त में अनुकरण का अभाव रहता है। नृत्त ताल-लय पर आश्रित होता है।[२९] इसमें अंग-विक्षेप पाया जाता है किन्तु किसी भी प्रकार के अभिनय का अभाव रहता है तथा लय के आधार पर ही गति का आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार इन तीनों के भेदों के सम्बन्ध में संक्षेप में कहा जा सकता है कि नृत्त ताल पर आश्रित होता है, जबकि नृत्य भाव पर तथा नाट्य रस पर।

यदि नृत्त, नृत्य और नाट्य-इन तीनों पर गहराई से विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि नृत्त तथा नृत्य, ये नाट्य की ही दो प्रथम भूमिकाएं हैं। रूपक

---

२५. भट्टोजिदीक्षित, **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी**, ७.४.६८
'नट नृत्तौ। इत्थमेव पूर्वमपि पठितम्। तत्रायं विवेकः।
पूर्वं पठितस्य नाट्यमर्थः। यत्कारिषु नटव्यपदेशः।
वाक्यार्थोभिनयो नाट्यम्।' (बालमनोरमा टीका)

२६. Weber, History of Indian, Literature, P.197

२७. Mankad. D.R., Types of Sanskrit Drama, P. 7

२८. धनंजय, **दशरूपक**,
'अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्' १/९

२९. धनंजय, **दशरूपक**,
'नृत्तंताललयाश्रयम्' १/९

सामान्यतया नाटक का पर्यायवाची माना जाता है। दशरूपककार ने रूपक को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि रूप का आरोप करने के कारण नाट्य को रूपक कहते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने दशरूपक के ही लक्षण की आवृत्ति यत्किंचित् परिवर्तन के साथ की है।[३०] नाट्य में अवस्थाओं की अनुकृति को महत्त्व दिया जाता है और रूपक में रूप के आरोप को। वास्तव में अभिनयकला का सर्वांगपूर्ण और सफल रूप हमें रूपक में ही मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि नृत्त, नृत्य ये दोनों नाट्य या रूपक की प्रारम्भिक भूमिकाएं हैं। अभिनयकला का पूर्ण रूप और चरम रूप हमें रूपक या नाट्य में ही मिलता है।

नाट्यकला एक संकुल-कला है जिसमें अन्य कलाओं के संयोग अथवा मिश्रण की प्रधानता रहती है। यह मान्यता भरत के इस कथन पर आधारित है कि नाट्य-कला में अनेक शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा शिल्पों का प्रयोग होता है।[३१] इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि नाट्यकला शास्त्रों, विद्याओं आदि का संयोगमात्र है। भरत ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह सर्वशास्त्रार्थ सम्पन्न है और साथ ही सर्वशिल्प-प्रवर्त्तक भी।[३२] इस प्रकार ऐसा कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है, जिसका समावेश नाट्य में नहीं है। भरत द्वारा नाट्य को दी गई सर्वशिल्प-प्रवर्त्तक की संज्ञा ही यह स्पष्ट करती है कि यह एक स्वतंत्र कला है तथा अन्य शिल्पों का नियामक भी। इसी आशय को स्पष्ट करते हुए एडवर्ड गार्डन ग्रेग ने कहा है कि नाट्यकला ने विजय प्राप्त कर अपना उचित स्थान प्राप्त कर लिया है।[३३] यह स्वतंत्र रूप से सर्जनात्मक कला सिद्ध हो सकेगी और व्याख्यात्मक कौशलमात्र नहीं रह जाएगी।

इस प्रकार नाट्यकला की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार कर लेने पर इसका सर्जनात्मक स्वरूप किन उपादानों पर आधारित होगा, यह प्रश्न विचारणीय है। नाट्य

३०. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६.२
धनञ्जय, दशरूपक,
'दशधैव रसाश्रयम्' १.

३१. भरत, नाट्यशास्त्र
न तच्छ्रुतं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला
नासौ योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते ॥ १.८२

३२. भरत, नाट्यशास्त्र
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकम्। १.१५

३३. Greig, Edward Garden, On the Art of the Theatre.
नाट्यकला में उद्धृत (पृ० ७२)

की रचना से लेकर उसके सफल प्रदर्शन तक के सम्पूर्ण परिवेश को एक साथ ध्यान में रखते हुए यदि उसमें कलात्मक तत्वों का आकलन करें और कला को यदि एक वृत्त मान लें तो उसकी दो सीमा रेखाएं स्वतः दृष्टिगत होती हैं-आन्तर और बाह्य। नाट्यकला एक ओर आन्तर तत्त्व रसाभिव्यंजना का माध्यम है, वहां दूसरी ओर वह दृश्य-विधान आदि बाह्य परिवेश की भी मुखापेक्षिणी है, नाट्यकला की सफल अभिव्यक्ति के उक्त दो उपादानों को अलग कर के देखा परखा नहीं जा सकता। नाटक की दृश्य-योजना यदि प्रकाश आदि वैज्ञानिक साधनों से आकर्षक नहीं बनती तो वह दक्ष अभिनेताओं के द्वारा मंच पर प्रस्तुत किये जाने पर भी सामाजिक को नाटकीयता से अपेक्षित मात्रा में अभिभूत नहीं कर सकती। सामान्य जीवन में व्यक्ति की अन्तरानुभूति के प्रकाशन में बाह्य परिवेश की अपेक्षा आन्तर परिवेश की ही प्रमुखता रहती है। परन्तु मंचस्थ अभिनेता के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की प्रक्रिया में बाह्य-परिवेश को गौण नहीं माना जा सकता। हां, यह सच है कि नाटकीय प्रभाव को उत्पन्न कराने में दृश्य विधान या अन्य साजसज्जा को कितना भी सुरुचिपूर्ण क्यों न बनाया जाए, अभिनेता की दक्षता के अभाव में अपेक्षित नाटकीय प्रभावोत्पादकता सम्भव नहीं है।

जहां तक संस्कृत नाट्य-साहित्य में कलात्मक अभिव्यक्ति में दृश्यविधान का प्रश्न है इसकी योजना चित्रात्मक अथवा यथार्थवादी कभी नहीं रही। कवित्व-पूर्ण वर्णन द्वारा मंचस्थ पात्र देश, काल, स्थान आदि की अवतारणा करता हुआ नाटकीय घटना की सम्पूर्ण स्थिति सामाजिक में उद्‌बुद्ध करा देता है। जब अभिनेता अपनी मानसिक स्थिति को सामाजिक की अनुभूति से तदाकार कराना चाहता है तो अपनी आन्तरिक अनुभूति को प्रभावशाली बनाने के लिए अभिनय का आश्रय लेता है। अभिनय का अर्थ स्पष्ट करते हुए भरत ने लिखा है कि यह अपने प्रयोग के द्वारा नाटकीय मुख्यार्थ की निश्चिति में समर्थ होता है।[३४] अभिनय के माध्यम से विभिन्न प्रकार के अर्थों अर्थात् भावों और रसों का विभावन किया या कराया जाता है अभिनय चार प्रकार के होते हैं—आंगिक, वाचिक, आहार्य

---

३४. भरत, नाट्यशास्त्र,

अभिपूर्वस्तुणीञ्धातुः पुरामुख्यार्थनिर्णये।
यस्मात् प्रयोगं नयति तस्मादभिनयः स्मृतः॥
विभावयति यस्माच्च नानार्थान् हि प्रयोगतः।
शाखांगोपांगसंयुक्तः तस्मादभिनयः स्मृतः॥ ८/६,७
(अभि + णीञ् (प्रापणे) + अच् = अभिनय)

और सात्त्विक।[३५] भरत ने अपने नाट्यशास्त्र के आठवें अध्याय में अभिनय का सांगोपांग विवेचन किया है। अभिनय के माध्यम से अन्तरानुभूति को अभिनेता सामाजिक में सङ्क्रमित करता है। वह अपने भावों और विचारों को अभिनय के द्वारा व्यक्त कर प्रभावशाली बनाता है जिससे प्रेषणीयता में तीव्रता आ सके।[३६]

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि आरंभ से ही भारतीय नाट्यकला को विशुद्ध आदर्शवादी परिवेश में देखा गया है। भरत के अनुसार यह कला लोक-वृत्तान्तप्रदर्शक होकर भी अन्य भारतीय कलाओं की भांति आदर्शवादी ही रही है। यथार्थ का अनुकरण करने की दृष्टि अथवा प्रवृत्ति के प्रति उपेक्षा के कारण ही भारतीय रंगमंच विशुद्ध कलात्मक बना रहा। आदर्शवाद को महत्त्व देने के कारण ही नाटक के नायक का उदात्त-चरित्र होना पहली अनिवार्यता मानी गयी है। भरत के पश्चात् जिस नाट्यशास्त्री ने भी रूपक के तकनीकी विधान पर अपनी लेखनी उठायी है, उनमें से किसी ने भी राजा अथवा ऋषि को छोड़कर प्रमुख नायक के रूप में सामान्य वर्ग से कथा-नायक को ग्रहण नहीं किया है। प्रकरण के रूप में चूंकि एक पृथक् भेद का निर्देश भरत ने किया था, अतः शूद्रक ने साहस का परिचय देते हुए 'मृच्छकटिकम्' प्रकरण की रचना की। देवता, राजा और महात्मा के पूर्ववृत्त पर आधारित वस्तु को ही रूपक में प्रश्रय मिला; क्योंकि ये उदात्त चरित्र वाले हुआ करते हैं। इनके जीवनवृत्त में यदि अनुदात्त अंश का समावेश हो जाता है तो वह ऋषिशाप अथवा दैवकोप के कारण ही। अभिज्ञान-शाकुन्तल जैसी नाट्यकृति में भी दुष्यन्त के चरित्र के अनुदात्त पक्ष को दुर्वासा मुनि के शाप से जोड़ दिया गया है।

भारतीय नाट्य परम्परा में अभिनय के चार अङ्गों आङ्गिक, वाचिक, सात्त्विक तथा आहार्य का विवेचन है। आंगिक अभिनय की तीन अवस्थाएं या प्रक्रिया होती हैं। ये शाखा, अंकुर और नृत्त कहलाती हैं। आंगिक अभिनय को शाखा, सूचना को अंकुर, और अंगहार से नियुक्त तथा करण पर आश्रित प्रक्रिया

३५. भरत, नाट्यशास्त्र,

आंगिको वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्त्विकस्तथा।
ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकल्पितः॥ ८/९

३६. भरत, नाट्यशास्त्र,

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते॥ १/८५

को नृत्त कहा जाता है।[37] आंगिक अभिनय में शिरोभाग की कुल तेरह प्रकार की संचालन विधियां होती हैं। शिर के शनैः शनैः ऊपर और नीचे की ओर संचालन प्रक्रिया को आकम्पित कहा जाता है और इस प्रकार के अभिनय से संकेत, उपदेश, प्रश्न, कोमल आमन्त्रण (सम्बोधन) एवं आज्ञा देने का कार्य लिया जाता है।[38] यदि उक्त संचालन विधि को ही शीघ्रता पूर्वक किया जाए तो वह कम्पित कहलाता है और इन द्रुत संचालन-प्रक्रियाओं द्वारा क्रोध, तर्क करने, विज्ञान तथा प्रतिज्ञान अर्थात् समझने एवं बल देने, धमकाने, कठोर वचनों में प्रश्न करने आदि की अभिव्यक्ति की जाती है। शनैः शनैः शिरश्चालन को धूत और द्रुत शिरश्चालन को विधूत कहा जाता है। धूत नामक अभिनय से अनिच्छा, खेद, विस्मय, विश्वास, पार्श्वदर्शन तथा निषेध की व्यंजना की जाती है। शीत-ग्रस्त होने, भयभीत होने, धमकाये जाने, ज्वर से पीड़ित होने तथा मद्यपान की प्रथम स्थिति में होने की सूचना के लिए विधूत नामक अभिनय का आश्रय लिया जाता है। शिर को दोनों पार्श्वों की ओर क्रमशः झुकाना परिवाहित कहलाता है और उसके माध्यम से प्रदर्शन, आश्चर्य, हर्ष, स्मरण, क्रोध आदि भावों का गोपन होता है तथा श्रृंगारिक प्रचेष्टाएं व्यक्त करायी जाती हैं। इसी प्रकार शिर को एक बार ऊपर उठाने को उद्वाहित कहा जाता है और इसके द्वारा गर्व से ऊपर देखना, आत्म-प्रदर्शन आदि सूचित किया जाता है। शिर को नीचे की ओर एक बार झुकाने को अवधूत कहा जाता है और इस के प्रयोग से संदेश, आवाहन, आलाप, संकेत, आदि व्यंजित किए जाते हैं। गर्दन की ओर शिर का एक बार झुकना अंचित कहलाता है और इसके द्वारा रोग, मूर्च्छा और दुःख प्रकट किया जाता है। इसी प्रक्रिया में यदि चिन्ता-मनन व्यक्त करना हो तो ठोढ़ी पकड़ ली जाती है। इस प्रकार भरत ने तेरह प्रकार की चेष्टाओं द्वारा सिर के अभिनय को स्पष्ट किया है। अभिनय के सूक्ष्म-विवेचन के सम्बन्ध में भरत की दृष्टि कितनी पारदर्शी थी इसका प्रमाण सिरके अभिनय का विवेचन है। इसी प्रकार अन्य अंगों एव उपांगों की चेष्टाओं

---

३७. भरत, नाट्यशास्त्र,

आंगिकस्तु भवेच्छाखा ह्यंकुरः सूचना भवेत्।
अंगहारविनिष्पन्नं नृत्तं तु करणाश्रयम्॥ ८.१५

३८. भरत, नाट्यशास्त्र

संज्ञोपदेशपृच्छासु स्वभावाभाषणे तथा।
निर्देशावाहने चैव भवेदाकम्पितं शिरः॥ ८.२०

द्वारा किए जाने वाले अभिनय का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।[३९]

दृष्टि-भंगिमा से निष्पन्न अभिनय के विवेचन की सूक्ष्मता आश्चर्यकर है। सम्पूर्ण शरीर में नेत्र सर्वाधिक कोमल, संवेदनशील अंग माना जाता है। यह मनोभावों की सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थितियों को प्रकट करने का विशिष्टतम साधन भी है। भरत ने सभी भावों, रसों और संचारियों के अभिनयात्मक प्रदर्शन में प्रयुक्त होनेवाले दृष्टि-निक्षेपों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। कान्ता, भयानका, हास्या, करुणा, अद्भुता, रौद्री, वीरा और बीभत्सा— ये रस-दृष्टियां होती हैं, जिनके द्वारा शृंगार आदि रसों की व्यंजना होती है।[४०] इसी तरह स्थायीभावों के व्यंजक दृष्टि-निक्षेप हैं—स्निग्धा, हृष्टा, दीना, क्रुद्धा, दम्भा, भयान्विता, जुगुप्सिता और विस्मिता।[४१] संचारी भावों से संबंधित नेत्र-चेष्टाएं बीस मानी गई हैं। हर्ष तथा प्रसाद से निष्पन्न दृष्टि-चेष्टा कान्ता है जिसका प्रयोग शृंगार रस में किया जाता है। प्रेमाविष्ट होकर भौंहों को थोड़ा तिरछा कर दृष्टि-संचालन करना कान्ता दृष्टि है। भयानका दृष्टि-चेष्टा अत्यधिक भय को प्रकट करने के निमित्त प्रयुक्त की जाती है और इसमें पलकें भीतर की ओर खिंची हुई निस्तब्ध रहती हैं तथा पुतलियां स्फुरित होती हुई चंचल होती रहती हैं। हास्या दृष्टि वह कहलाती है जिसमें पलकें क्रमशः सिकुड़ती जाती हैं और पुतलियां विभ्रान्त दीखती हैं। इस दृष्टि-निक्षेप का प्रयोग बाजीगरी के प्रदर्शन में किया जाता है। करुणा दृष्टि का प्रयोग करुण रस के अभिनय में किया जाता है। इसमें ऊपरी पलकें झुक जाती हैं और आंसुओं से गीली हो जाती हैं। वेदनाकातर पुतलियों का संचालन मन्थर हो जाता है और दृष्टि नाक की नोक पर जमी रहती है। अद्भुत रस का अभिनय करनेवाली दृष्टि-प्रक्रिया अद्भुता कहलाती है। इसमें पलकों के अग्रभाग आकुंचित हो जाते

३९. भरत, नाट्यशास्त्र,

त्रिविधस्त्वांगिको ज्ञेयः शारीरो मुखजस्तथा
तथा चेष्टाकृतश्चैव शाखांगोपांगसंयुतः ।।
तस्य शिरोहस्तोरः पार्श्वकटिपादतः षडंगानि ।
नेत्रभ्रूनासाधरकपोल चिबुकान्युपांगानि ।। ८/११-१३

४०. भरत, नाट्यशास्त्र,

कान्ता भयानका हास्या करुणा चाद्भुता तथा ।
रौद्री वीरा च बीभत्सा विज्ञेया रसदृष्टयः ।। ८/३८

४१. भरत, नाट्यशास्त्र,

स्निग्धा हृष्टा च दीना च क्रुद्धा दम्भा भयान्विता ।
जुगुप्सिता विस्मिता च स्थायिभावेषु दृष्टयः ।।८/३९

हैं और अक्षिगोलक आश्चर्य से फैलने लगते हैं तथा साथ ही दृष्टि अन्त तक आयताकार बनी रहती है। रौद्री दृष्टि रौद्ररस के लिए उपयुक्त मानी गई है। इसमें दृष्टि क्रूर बनी रहती है और रुक्षता, लालिमा, पलकों तथा पुतलियों की निस्तब्धता और भौंहों की वक्रता इसकी विशेषताएं हैं। वीररस की अभिव्यंजना करनेवाले नेत्राभिनय में वीरा दृष्टि-निक्षेप माना गया है और इस प्रक्रिया में दृष्टि उत्फुल्ल, विकसित तथा क्षुब्ध रहती है और पुतलियां दृष्टि-मध्य में स्थिर रहती हैं। बीभत्स रस के अभिनय में नेत्रप्रान्त पलकों से निकुंचित रहते हैं, पुतलियां उछलती जैसी दीखने लगती हैं और बरौनियां स्थिर और सटी हुई जैसी रहती हैं। इसी प्रकार शान्तरस के अभिनय में प्रयुक्त होने वाली दृष्टि शान्ता कहलाती है और इसमें दृष्टि निमिषमात्र नासाग्र पर स्थिर होकर अधोभाग की ओर संचरण करती है और पलकें अधमुंदी अवस्था में हो जाती हैं।

इसी प्रकार स्थायी भावों के अभिनय में दृष्टि-संचालन की विविध गतियों एवं संचालन प्रक्रियाओं का विवरण भरत ने दिया है। रति नामक स्थायी भाव के अभिनय में स्निग्धा, हास में हृष्टा, शोक-स्थायी भाव में दीना-कातरा; क्रोध में क्रुद्धा, उत्साह नें दृप्ता, भय में भयान्विता, जगुप्सा स्थायी भाव में जुगुप्सिता तथा विस्मय में विस्मिता दृष्टि कहलाती है। इस प्रकार इन सभी अवस्थाओं में अंगों उपांगों सहित दृष्टि की विविध संचालन-प्रक्रियाओं का सूक्ष्म विवेचन भरत ने किया है।

इसी क्रम में भरत ने यह भी बतलाया है किन-किन संचारी भावों के अभिनय में कौन सी दृष्टि क्रियाशील होती है। चिन्ता और स्तम्भ में शून्यादृष्टि, निर्वेद में मलिना, श्रम-स्वेद में श्रान्ता; ललित में लज्जान्विता, अपस्मार, व्याधि और ग्लानि में ग्लाना, शंका की अवस्था में शंकिता, खेद और विषाद में विषण्णा; निद्रा, स्वाप तथा सुख में मुकुला, दुःखद एवं अनचाही वस्तुओं को देखने तथा नेत्र-कष्ट या पीड़ा में कुंचिता, निर्वेद, मानसिक आघात तथा अभिताप में अभितप्ता, असूया, जड़ता, की स्थिति एवं आलस्य में जिह्मा, धृति और प्रसन्नता में ललिता; घ्राण एवं त्वगिन्द्रियजनित आह्लाद में अर्धमुकुला; स्मरण एवं तर्क की अवस्था में वितर्किता; आवेग, संभ्रम और विभ्रम में विभ्रान्ता; चपलता, उन्माद, पीड़ा एवं मृत्यु आदि से उत्पन्न दुःखद स्थिति में विलुप्ता; दूरस्थ वस्तुओं एवं वियोग के दर्शन में आकेकरा; विबोध, गर्व, अमर्ष, उग्रता तथा मति में विकोशाभास और मद्यपान की दशा में त्रस्ता नामक दृष्टि-निक्षेप द्वारा संचारियों का अभिनय किया जाता है। प्रत्येक संचारी के अभिनय में दृष्टि-निक्षेप की अपनी अलग-अलग विशेषताएं होती हैं, जिनका विवरण विस्तारभय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

अभिनय में अपेक्षित शरीर के विभिन्न अंगों तथा उपांगों के संचालन का जितना सूक्ष्म विवेचन किया गया है उससे ज्ञात होता है कि भारतीय अभिनय-कला विकास की चरम स्थिति तक पहुंच चुकी थी। दृष्टि-निक्षेप के विस्तृत वर्णन से ही स्पष्ट है कि चरण, कर, मुख आदि स्थूल अंगों का अभिनयात्मक प्रदर्शन किस व्यापक रूप में रहा होगा। इसी कारण भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में आङ्गिक अभिनय का सविस्तर विवेचन किया है।[४२]

वाचिक अभिनय की महत्ता का विवेचन करने के क्रम में संवादतत्त्व पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है; क्योंकि सामाजिक अभिनेताओं के वार्त्तालाप के माध्यम से नाट्य की कथावस्तु के निर्वाह को ग्रहण करते हैं।

नाट्य का प्रारम्भ संवाद-शैली से माना भी गया है! ऋग्वेद में वर्णित इन्द्र-मरुत्, विश्वामित्रनदी, पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी आदि संवादों में नाट्य के बीज तत्त्व परिलक्षित होते हैं।[४३] इसी प्रकार यूरोप में भी साहित्यिक पुनरुत्थान के युग में चर्च के उपदेशात्मक संलापों के द्वारा नाट्य का आविर्भाव माना गया है।[४४] यही महत्त्व यूनान के धार्मिक उत्सवों के कथोपकथनों का भी है।

यह संवादतत्त्व नाट्य-प्रदर्शन के परिवेश में आकर वाचिक अभिनय कहलाता है। सामान्य जीवन में संलाप या वार्त्तालाप मनुष्य अपने दैनिक व्यवहार के लिए करता है। उसमें और नाटकीय संवाद में अथवा उसके माध्यम से किए जाने वाले वाचिक अभिनय में अन्तर होता है। संवाद हमारे अन्तर के संवेगों, भावनाओं और अनुभूतियों को प्रेरित करता है। इस तरह इसकी समानता बहुत कुछ वीणा के सुमधुर झंकार से है। वीणा के तारों पर ताल-लय युक्त आघातों से निष्पन्न ध्वनियाँ जिस प्रकार हमारे रागात्मक मनोलोक में एक प्रकार के आलोडन की सृष्टि करने लगती हैं, उसी प्रकार उपयुक्त शब्दविन्यास, वाक्यों के सुन्दर संगठन और अभिनेताओं के सधे हुए कंठों से निःसृत वाक्यावली भी हमारे अन्तःकरण में सुषुप्त भावों को रस-रूप में परिणत करा कर उन्हें चर्वणा का विषय बना डालती है। इस प्रकार अभिनेता जब वाचिक अभिनय करता है, तब सामाजिक को यह निश्चय करते विलम्ब नहीं होता कि वह वाचिक अभिनय किस संवेदनात्मक भाव-भूमि का प्रतिफलन है; क्योंकि यह भावभूमि सामाजिक की भावभूमि के समकक्ष ही रहा करती है। शृंगार, करुण, रौद्र आदि की विभिन्न स्थितियों में वाचिक अभिव्यक्ति भी विभिन्न प्रकार की होती है।

---

४२. भरत, नाट्यशास्त्र, (अध्याय ८-९)

४३. ऋग्वेद, १. १६५—१७०; ३.३३, ७.३३; १०.५६; १०.१०

४४. नगेन्द्र, भारतीय नाट्य साहित्य, पृ० २०४

यह वाचिक अभिव्यक्ति ही हमारे अन्तर के स्थायी भावों को उद्बुद्ध कराकर उसी के अनुरूप रस-चर्वणा सम्भव करा देती है। इस प्रकार यह अनुभव सिद्ध है कि वाचिक अभिनय का नाट्यकला में अत्यन्त महत्त्व है। भरत ने नाट्य-शास्त्र में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सुख अथवा दुःख की स्थिति में नाना पुरुषों के क्रिया-कलाप ही रंगमंच पर अभिनेय होते हैं[४५] अर्थात् वाचिक अभिनय के विषय होते हैं। नाट्यकार को सावधान करते हुए भरत ने कहा है कि वह ऐसे ही रूपक की रचना करे जो महारस हो, महाभोग हो, उदात्तवचन हो, महापुरुषों द्वारा आचरित कृतिकलापों के वर्णन से युक्त और जनप्रिय हो, सुश्लिष्ट सन्धियों से युक्त हो, सुखाश्रय हो और मृदु-मधुर शब्दों में रचित हो।[४६]

आचार्यों के अनुसार सात्विक अभिनय का तात्पर्य उस प्रदर्शन या अभिनय से है जो आलंकारिकों के द्वारा परिगणित सात्त्विकभावों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। ये सात्त्विक भाव आठ प्रकार के होते हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।[४७] (क) प्रिय का विनाश, भय, हर्ष, रोग आदि के कारण शारीरिक व्यापारों का स्थगित हो जाना स्तम्भ कहलाता है (ख) रतिश्रम, क्रोध, भय, लज्जा, दुःख श्रम, आतप, आदि के कारण शरीर से निकलने वाले जलकण को स्वेद कहा जाता है (ग) हर्ष, अद्भुत वस्तु का दर्शन, भय आदि से रोमावली का कंटकित हो जाना रोमांच है (घ) मद्य-सेवन, हर्षातिरेक, पीड़ा आदि के कारण कंठ का अवरुद्ध होना स्वरभंग है। (च) वेपथु राग, द्वेष, श्रम आदि के कारण होनेवाला शरीर का कम्पन है (छ) वैवर्ण्य विषाद, मद, क्रोध, आदि के कारण शारीरिक वर्ण-विकार है। (ज) क्रोध, दुःख, अथवा हर्षातिरक के कारण नेत्र से प्रस्रवित जल-कण को

---

४५. भरत, नाट्यशास्त्र,

अवस्था या हि लोकस्य सुखदुःख समुद्भवा।
नानापुरुष-संचारा नाटके साभिधीयते॥ १९.११६

४६. भरत, नाट्यशास्त्र,

महारसं महाभोगमुदात्तवचनान्वितम्।
महापुरुषसंचारं साध्वाचारं जनप्रियम्॥
सुश्लिष्टसंधिसंयोगं सुप्रयोगं सुखाश्रयम्।
मृदुशब्दाभिधानं च कविः कुर्यात् नाटकम्॥ १९.११४,११५

४७. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभंगोऽथवेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥ ३.१४४

अश्रु कहा जाता है। (झ) सुख-दुख, भय आदि के आधिक्य के कारण उत्पन्न ज्ञान-शून्यता, प्रलय इन अष्टविध सात्त्विक भावों का तत्तत् व्यापारों के द्वारा प्रकटीकरण सात्त्विक अभिनय है। सात्त्विकभाव में प्रयुक्त भाव शब्द के अर्थ के सम्बध में आचार्यों में मतभेद है। भाव शब्द का प्रयोग स्थायिभाव, व्यभिचारिभाव और सात्त्विकभाव-इन तीन सन्दर्भों में देखा जाता है। धनंजय के अनुसार राम, दुष्यन्तादि अनुकार्य में स्थित सुख-दुःखादि भाव जो काव्य तथा अभिनय में कवि द्वारा उपनिबद्ध किए जाते हैं, उन (अनुकार्य गत) भावों के द्वारा रसिक या सामाजिक के हृदय का भावित होना ही भाव कहलाता है।[४८] लोक व्यवहार में भी इस रस अथवा गन्ध से सब कुछ भावित-वासित कर दिया गया है, ऐसा कहा जाता है। भरत के अनुसार भाव वह है जो कवि के अन्तर्गत स्थित सुख-दुःखादि भावों को भावित करता है।[४९] एक अन्य आचार्य का मत है कि भाव वह है जो रसों को भावित करता है।[५०] धनिक ने इसका समाधान किया है कि रसों को भावित करना अथवा कविगत सुख-दुःखादि भावों को भावित करना इन दो व्युत्पत्तियों का आश्रय लिया गया है। यहां सात्त्विकभाव में प्रयुक्त भाव शब्द उक्त दो अर्थों से भिन्न अर्थवाला है। रामादि परगत सुख, दुःख आदि की भावना करते समय जब भावक अथवा सामाजिक का अन्तःकरण अत्यन्त अनुकूल हो जाता है तब वह 'सत्त्व' कहलाता है। सत्त्व का अर्थ है मन से उत्पन्न अर्थात् सर्वथा प्रसंग की ओर समाहित हो जाने की स्थिति में हो जाने के साथ ही मन में उत्पन्न भाव।[५१] मन का सत्त्व यही है कि जब यह प्रसन्न अथवा विषण्ण होता है तो आंसू बहने लगते हैं, रोमांच हो आता है, शरीर काँपने लगता है। ये आँसू और रोमांच आदि सत्त्व से उत्पन्न होते हैं और ये रसिकों के अन्तः करण को भी उन्हीं स्थितियों में लाकर वैसी ही अनुभूति से भर देते हैं। अतः इन्हें सात्त्विक भाव कहते हैं। ये अश्रु आदि विकार सात्त्विकभाव कार्य होने से अनुभाव भी

---

४८. धनञ्जय, दशरूपक,

सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्भावभावनम्। ४/४

४९. भरत, नाट्यशास्त्र,

वागंगमुखरागैश्च सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते॥ २२/८

५०. धनञ्जय, दशरूपक, पृ० १८७

रसान् भावयन् भावः।

५१. धनञ्जय, दशरूपक, पृ० १८८

'सत्त्वं, नाम मनः प्रभवं तच्च समाहितमनस्त्वादुत्पद्यते'

कहलाते हैं।[५२] सात्त्विक भावों की विवृति थोड़ी बहुत लगभग सभी नाटिकाओं में उपलब्ध होती है। 'वृषभानुजा' नाटिका के चौथे अंक में नायक श्रीकृष्ण के विरह में नायिका राधा की दशा का वर्णन सखी तमालिका, दूसरी सखी चन्द्रकला से करती हुई कहती है कि आकाश में कौंधती बिजलियों के साथ उमड़ते नये बादलों को देखकर राधा ईर्ष्या से भर जाती है, मयूरों की बोली सुनकर उसे रोमाञ्च हो जाता है, चम्पक फूलों की माला के समान कोमल कान्त उसका (राधा का) शरीर कांप-कांप उठता है, स्वेदकणों से शरीर क्लिन्न हो उठता है। इससे प्रतीत होता है कि वह कोटि कामदेव की सुन्दरता से भूषित श्रीकृष्ण को स्मरण करती रहती है।[५३] यहां प्रथम पद्य में राधा के रोमांच, कम्प, स्वेद, स्मृति तथा दूसरे में वैवर्ण्यरूपी सात्त्विक भावों का वर्णन किया गया है।

जहाँ तक आहार्य अभिनय का प्रश्न है, इसका अभिप्राय वस्त्र, आभूषण आदि उपकरणों के द्वारा पात्रों का सुसज्जित होना है। किसी भी भूमिका को मंच पर पूर्णरूपेण प्रस्तुत करने के लिए आहार्य अभिनय की अपेक्षा होती है। अनुकार्य के जीवन की नाना अवस्थाओं और उसकी प्रकृति अर्थात् व्यक्तित्व को आंगिक, वाचिक और सात्त्विक अभिनयों के द्वारा कोई सुयोग्य नट बिना किसी विशेष यत्न के मंच पर रूपायित कर लेता है, यदि वह पूर्व में ही अर्थात् दर्शकों के समक्ष आने के पहले ही नेपथ्य-वस्त्रादि से सुसज्जित हो।[५४] आहार्याभिनय के महत्त्व पर बल देते हुए भरत का कहना है कि नेपथ्य से सम्बन्धित प्रक्रिया को आहार्याभिनय कहा जाता है और नाट्य की सफलता

---

५२. धनञ्जय, दशरूपक,

पृथग्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्त्विकाः।
सत्त्वादेवसमुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम्॥ ४४.५

५३. मथुरादास, वृषभानुजा,

नव्याम्भोधरमम्बरे सुविलसत्सौदामिनीसंगतं।
सेर्ष्यं पश्यति बर्हिणा च विरुतिं श्रुत्वा सरोमोद्गमम्॥
कम्पं चम्पकदामकोमलरुचौ स्वेदं च धत्ते तनौ।
मन्ये मन्मथकोटिमोहनवपुः कृष्णोऽनया स्मर्यते॥ ४.५

५४. भरत, नाट्यशास्त्र,

नानावस्थाःप्रकृतयः पूर्वनेपथ्यसाधिताः।
अंगादिभिरभिव्यक्तिमन्ते गच्छन्त्ययत्नतः॥ २.१२

की कामना करने वाले को इस कार्य में प्रयत्नशील रहना चाहिए।[55] यहां स्मरण रहना चाहिए कि नेपथ्य शब्द से भरत का आशय पात्रों के शारीरिक परिधान से ही नहीं है, अपितु दृश्य को सजीव बनाने के लिए वस्त्रादि के जितने उपकरण हो सकते हैं उन सभी से है। यह बात अलग है कि भारतीय रंगमंच के दृश्यविधान का आयोजन न कभी अतिचित्रात्मक रहा और न यथार्थ-वादी ही। पात्रों के मुख से काव्यमयी भाषा के प्रयोग के द्वारा अर्थात् वाचिक अभिनय के माध्यम से ही नाटकीय कथावस्तु के किसी विशेष परिवेश का वर्णन कर सामाजिक के मनोलोक में काल या स्थिति विशेष में हुई उन उन घटनाओं के चित्रों को अङ्कित करा दिया जाता था। किन्तु, फिर भी भरत ने जितनी सूक्ष्मता से आहार्य का वर्णन किया है उससे ज्ञात होता है कि यथार्थवादी दृश्य-विधान की एक लम्बी परम्परा प्राचीन भारत में थी और उसकी लड़ी कहां से टूट गई यह अनुसंधान का विषय है। संस्कृत साहित्य के उपलब्ध रूपकों में भास के तेरह रूपक सर्वप्रथम आते हैं। पाणिनि द्वारा उल्लिखत कृशाश्व तथा शिलालिन् आदि से सम्बद्ध कृतियों के अनुपलब्ध रहने से उक्त परम्परा के चिह्न विलुप्त नाटकों के साथ ही अतीत के गर्भ में समा गये अथवा उससे पूर्व ही, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना असम्भव है। अन्यथा उस प्रकार के एक भी लक्ष्य ग्रन्थ के अस्तित्व के अभाव में नाट्यशास्त्र जैसे विशालकाय लक्षण-ग्रन्थ का निर्माण भी असम्भव हो जाता। संस्कृत साहित्य में हमें दो प्रकार की नाट्यविधाएं मिलती है—रूपक[56] और उपरूपक[57]। रूपकों की संख्या के सम्बन्ध में आचार्यों में मतभेद है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अठारहवें अध्याय को दशरूपविकल्पन या दशरूपक विधान कहा गया है। इसी आधार पर धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ का नाम दशरूपक रखा और दशरूपकों के विषय में चर्चा की है।[58] आचार्यों ने रूपक के दश-भेदों' का उल्लेख किया है-नाटक, प्रकरण, अंक, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी

५५. भरत, **नाट्यशास्त्र,**

आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो नेपथ्यजो विधिः।
तत्र कार्यः प्रयत्नस्तु नाट्यस्य शुभमिच्छता॥ २१.३

५६ विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण,**

'रूपकाणि दश, ६/४

५७ विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण,**

'अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः'। ६/५

५८. धनञ्जय, **दशरूपक,**

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति॥१/८

प्रहसन, डिम और ईहामृग ।[५९] किन्तु नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने रूपक के बारह भेद बतलाए हैं । ये उपर्युक्त दश रूपकों में नाटिका और प्रकरणिका को भी जोड़ देते हैं और इन दोनों का परिगणन रूपकों के अन्तर्गत किया है । अतः रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार बारह रूपक इस प्रकार हैं—नाटक, प्रकरण, नाटिका, प्रकरणिका, व्यायोग, समवकार, भाण, प्रहसन, डिम, अंक, ईहामृग और वीथी ।[६०]

वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर रूपक के दश भेद किये जाते हैं ।[६१] रूपक के किसी एक भेद को कथा-वस्तु, नायक, तथा अभिव्यञ्जित रस के आधार पर उसे अन्य भेदों से भिन्न माना जाता है। रूपक के भेदों में नाटक सर्वप्रधान है। इसमें नाट्यशास्त्र में उल्लिखित सभी अभिलक्षण पाये जाते हैं और उसमें सब रसों का समावेश भी किया जा सकता है, तथापि प्रधानता शृंगार अथवा वीर रस की ही होती है। नाट्याचार्यों ने शृंगार-वीर इन दो रसों को नाट्यप्रकृतिक कहा है। नाटक को सब प्रकार के रूपकों का प्रतिनिधि माना गया है । धनंजयकृत दशरूपक में भी नाटक को सब रूपकों का मूल बताया गया है ।[६२]

नाटक की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। आधिकारिक वस्तु का नायक अनेक गुणों से युक्त, धीर, गम्भीर, उदात्त, प्रतापी, कीर्ति का अभिलाषी अति उत्साही, वेदों का रक्षक, राजा अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष होना चाहिए । नाटक के इतिवृत्त रूप शरीर में पांच सन्धिया होती हैं ।[६३]

---

५९. भरत, नाट्यशास्त्र,

नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च ।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः ।।
ईहामृगश्च विज्ञेया दशेमे नाट्यलक्षणे । १८/२-३

विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/३
धनञ्जय, दशरूपक, १/८

६०. रामचन्द्र गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण,

नाटकं प्रकरणं च नाटिका प्रकरण्यथ ।
व्यायोगः समवकारो भाणः प्रहसनं डिमः ।।
अङ्क ईहामृगो वीथी चत्वारः सर्ववृत्तयः ।। १/३-४

६१. धनंजय, दशरूपक

'वस्तुनेता रसस्तेषां भेदकः' १/१०

६२. धनंजय, दशरूपक,

प्रकृतित्वादथान्येषां भूयो रसपरिग्रहात् ।
सम्पूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते ।। ३/१

६३. धनञ्जय, दशरूपक,

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः । १/२४

इसमें भिन्न-भिन्न रसों और भावों का सन्निवेश हुआ करता है। यद्यपि प्रधान रस श्रृंगार और वीर होता है तथापि अन्य रस प्रधान रस के अंग होकर आते हैं और उसके परिपाक में सहायता करते हैं। नाटक कम से कम पांच और अधिक से अधिक दश अंकों का होता है। प्रधान कार्य की सफलता में नायक के अतिरिक्त अन्य पात्रों का भी सहयोग होता है। नायकेतर पात्र प्रासंगिक कथावस्तु के नायक हो सकते हैं। इसकी रचना गोपुच्छ के समान होती है।[६४]

भरतमुनि रूपक के दूसरे भेद प्रकरण का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि प्रकरण भी नाटक की तरह रसाश्रित और पंचसन्धिसमन्वित होता है, किन्तु इसकी कथावस्तु नाटक की तरह प्रख्यात न होकर उत्पाद्य अर्थात् कविकल्पित या लौकिक होती है। इसमें विप्र, सचिव, पुरोहित, अमात्य, सार्थवाह आदि के चरित वर्णित होते हैं। इसमें नायक न तो उदात्त पुरुष होता है और न दिव्य चरित ही। इसके अतिरिक्त दास, विट, श्रेष्ठी, वेश्या और कुलवधू सदृश पात्रों का भी चित्रण होता है।[६५]

तीसरा रूपक-भेद भाण है। नाट्याचार्य ने भाण का लक्षण बताते हुए इसके दो भेद किए हैं—(१) आत्मानुभूतशंसी, (२) परसंश्रयवर्णन। प्रथम प्रकार के भाण में कलानिपुण धूर्त्त या विट किसी धूर्त्त अथवा विट की विविध अवस्थाओं का आत्मानुभव के बल पर वर्णन करता है और दूसरे प्रकार के भाण में वह अन्य व्यक्ति

---

६४. भरत, नाट्यशास्त्र,

काव्यं गोपुच्छाग्रं कर्तव्यं कार्य बन्धमासाद्य। १८/६०

विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्त्तितम्। ६/११

६५. भरत, नाट्यशास्त्र,

यत्र कविरात्मशक्त्या वस्तु शरीरं च नायकं चैव।
औत्पत्तिकं प्रकुरुते प्रकरणमिति तद् बुधैर्ज्ञेयम्॥
यन्नाटके मयोक्तं वस्तु शरीरं च वृत्तिभेदाश्च।
तत्प्रकरणेऽपि योज्यं सलक्षणं सर्वसन्धिषु तु॥
विप्रवणिक्सचिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्।
चरितं यन्नैकविधं ज्ञेयं तत्प्रकरणं नाम॥
नोदात्तनायककृतं न दिव्यचरितं न राजसम्भोगम्।
बाह्यजनसंप्रयुक्तं तज्ज्ञेयं प्रकरणं तज्ज्ञैः॥ १८/९२-९६

विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२२४—२२६

के कृत्यों की सुनी-सुनायी बातों का उद्घाटन करता है।[६६] भाण में एक अंक और एक पात्र होता है। वह आकाशभाषित के सहारे 'किं ब्रवीषि' इस सम्बोधन तथा उक्ति-प्रत्युक्ति आदि के द्वारा वीर रस सूचक शौर्य एवं शृंगार रस-व्यंजक घटनाओं का प्रदर्शन करता है। इसमें भारतीवृत्ति, अंगों के सहित मुख या निर्वहण सन्धि, कल्पित वस्तु और लास्य के सभी अंग होते हैं।[६७]

अंक या उत्सृष्टिकांक में एक ही अंक होता है और साधारण पुरुष नायक होता है। इसमें दिव्य पुरुष नहीं होते हैं। भरत का मत है कि अंक का इतिवृत्त प्राय: प्रख्यात और कभी-कभी अप्रख्यात भी होता है। इसमें स्त्रियों का विलाप प्रचुरता से होता है। फलत: करुण रस की प्रधानता रहती है। जय-पराजय का इसमें वर्णन होता है। युद्ध, घात-प्रतिघात या प्रहार नहीं होता। अपितु वाणी के द्वारा उनका वर्णन मात्र होता है। इसमें केवल मुख तथा निर्वहण सन्धियाँ तथा भारती वृत्ति पाई जाती है।[६८]

व्यायोग का नामकरण अनेक पुरुष-पात्रों के कारण रखा गया है। व्यायोग की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध या पुराण-प्रसिद्ध होती है। इसका नायक धीरोद्धत, राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष होता है। इसमें स्त्री पात्रों की संख्या बहुत कम और पुरुष पात्रों की संख्या प्रचुर हुआ करती है। यह एक अंक का होता है अत: इसमें गर्भ और विमर्श सन्धियां नहीं होतीं। इसमें युद्ध होता है पर वह स्त्री के कारण नहीं। कौशिकी वृत्ति भी नहीं पायी जाती है। हास्य, शृंगार और शान्त रस से भिन्न अन्य रस इसमें पाये जाते हैं।[६९]

---

६६. भरत, नाट्यशास्त्र,

आत्मानुभूतशंसी परसंश्रयवर्णनाविशेषस्तु।
विविधाश्रयो हि भाणो विज्ञेयस्त्वेकहार्यश्च॥
धूर्तविटसंप्रयोज्यो नानावस्थान्तरात्मकश्चैव।
एकाङ्को बहुचेष्टः सततं कार्यो बुधैर्भाणः॥ १८/१५२-१५३

६७. धनञ्जय, दशरूपक, ३/४९-५१

६८. भरत, नाट्यशास्त्र, १८/१३९, १४०, १४१, १४२
तु० विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२५०, २५१, २५२
तु० धनञ्जय, दशरूपक, ३/७०,७१

६९. भरत, नाट्यशास्त्र, १८/१३५
तु० धनञ्जय, दशरूपक, ३/६०, ६१
तु० विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२३१, २३२, २३३

समवकार वह रूपक भेद है जिसका वृत्त देव विषयक अथवा असुर विषयक और पुराणप्रसिद्ध हुआ करता है। इसमें विमर्शसन्धि को छोड़कर अन्य सन्धियों का समावेश अपेक्षित है। इसकी रचना तीन अंकों में हुआ करती है जिनमें पहले अंक में मुख और प्रतिमुख संधि, दूसरे में गर्भसन्धि और तीसरे में निर्वहण सन्धि की योजना आवश्यक होती है। इसमें बारह नायकों का चित्रण हुआ करता है। ये धीरोदात्त, प्रख्यात और दिव्य अथवा अदिव्य होते हैं। इन बारह नायकों में प्रत्येक का प्रयोजन पृथक्-पृथक् हुआ करता है। इसमें वीररस की अंगी रूप में अभिव्यक्ति अपेक्षित है और अन्य रस अंगरूप से उपनिबद्ध होते हैं।[७०]

वीथी में एक अंक होता है और उत्तम अथवा मध्यम पुरुष उसका नायक होता है, पात्र एक या दो होते हैं। भाण के समान आकाशभाषित के द्वारा उक्ति-प्रत्युक्ति होती है। शृंगार रस का बाहुल्य रहता है, इसी कारण स्वभावतः कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती है। इसमें मुख और निर्वहण सन्धियां तथा पांच अर्थ-प्रकृतियां होती हैं और तेरह वीथ्यंगों का भी समावेश होता है।[७१]

प्रहसन भाण के समान ही होता है पर इसमें प्राधान्य हास्यरस का होता है। वीथी के तेरह अंगों में से सभी इसमें आ सकते हैं। इसका इतिवृत्त अधम प्रकृति के नायक से सम्बद्ध होता है और कविकल्पित होता है। आरभटी वृत्ति तथा विष्कंभक और प्रवेशक का इसमें प्रयोग नहीं होता है। प्रहसन तीन प्रकार का होता है —शुद्ध, विकृत और संकर। शुद्ध प्रहसन में पाखंडी, संन्यासी, तपस्वी अथवा पुरोहित सदृश पात्रों की योजना होती है। इसमें चेट, चेटी, विट आदि नीच पात्र भी आते हैं। प्रहसन की प्रभावोत्पादकता कुछ दूर तक वेश-भूषा और बोलने के ढंग पर निर्भर करती है। विकृत प्रहसन में नपुंसक, कंचुकी और तपस्वी कामुकों के वेश में तथा उन्हीं की सी बातें कहते दिखाये जाते हैं। धूर्त्त व्यक्तियों से पूर्ण प्रहसन को संकीर्ण प्रहसन कहते हैं। इसका नायक कृत्रिम प्रशंसा, छल और स्पर्धायुक्त बातें अधिक करता

---

७०. भरत, नाट्यशास्त्र, १८/१३६
धनञ्जय, दशरूपक, ३/६२-६४
विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२३४, २३५

७१. भरत नाट्यशास्त्र, १८/१५५
धनञ्जय, दशरूपक, ३/६८, ६९
विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२५३, २५४

है।[72] भरत ने शुद्ध और संकीर्ण दो ही प्रकार के प्रहसन की परिभाषा दी है।[73]

डिम वह रूपक भेद है जिसका इतिवृत्त इतिहास-प्रसिद्ध होता है। यह माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उन्मत्त जन की चेष्टाओं तथा सूर्य-चन्द्र-ग्रहण आदि से पूर्ण रहता है। इस में देवता, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, महोरग आदि सोलह प्रकार के उद्धत नायक हो सकते हैं। कैशिकी को छोड़ कर शेष तीनों वृत्तियों का इसमें प्रयोग होता है। इसमें हास्य और शृंगार रस को छोड़कर शेष सब रसों का सन्निवेश हो सकता है। इसमें चार अंक होते हैं—और चार ही सन्धियां होती हैं, विमर्श सन्धि नहीं होती है।[74]

ईहामृग में कथानक मिश्रित होता है, अर्थात् अंशतः प्रसिद्ध और अंशतः कवि-कल्पित। इसमें चार अंक, मुख, प्रतिमुख और निर्वहण नामक तीन सन्धियाँ होती हैं। मनुष्य और दिव्यपुरुष में से कोई नायक अथवा प्रतिनायक हो सकता है। ये दोनों इतिहास-प्रसिद्ध तथा धीरोद्धत होते हैं। इस रूपक में दिव्य स्त्री के बलात् अपहरण की इच्छा रखनेवाले नायक या प्रतिनायक की शृंगारमयी चेष्टाएं भी कहीं-कहीं दिखायी जाती हैं। प्रबल उत्तेजना के कारण युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर भी संघर्ष का टल जाना और किसी महात्मा के बध की पूर्ण सम्भावना जाता हो जाने पर भी उसे किसी बहाने बचा लेना, इस रूपक में प्रायः दिखाया है।[75]

दश रूपकों से ही सम्बद्ध अठारह उपरूपक माने गए हैं। उपरूपकों का स्पष्ट उल्लेख प्रारम्भिक नाट्याचार्यों ने कहीं नहीं किया है। उनकी दृष्टि में उपरूपकों का महत्त्व नहीं था। किन्तु भावप्रकाशन और साहित्यदर्पण में उपरूपक का सांगोपांग वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि नृत्य पर आधृत रूपक के इन उपभेदों का प्रचलन विश्वनाथ के काल तक आते-आते पूर्ण रूप से हो चुका

७२. धनञ्जय, दशरूपक, ३/५४-५६
विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२६४-२६६

७३. भरत, नाट्यशास्त्र, १८/१४६

७४. धनञ्जय, दशरूपक, ३/५७-५६
विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२४१—२४४
भरत, नाट्यशास्त्र, १८/१३०—१३३

७५. भरत, नाट्यशास्त्र, १८/१२४-१२८
धनञ्जय, दशरूपक, ३/७२-७५
विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२४६-२४६

था और वे नाट्यविधा की कोटि में परिगणित होने लगे थे। अग्निपुराण में त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीसक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्यक और प्रेक्षणक का उल्लेख किया गया है।[७६] किन्तु न तो उन्हें 'उपरूपक' की संज्ञा ही प्रदान की गई है और न उनकी व्याख्या ही की गई है। धनंजयकृत 'दशरूपक' इस तथ्य का साक्षी है कि उसकी दृष्टि में उपरूपकों का महत्त्व नहीं था। उसमें उपरूपकों का प्रसंग स्पष्टरूप से कहीं नहीं उठाया गया है। यद्यपि दशरूपक में टीकाकार धनिक ने सप्त नृत्यभेदों के रूप में उपरूपकों का परिगणन किया है तथापि न तो उसने लक्षण ही दिये हैं और न तो लक्ष्यग्रन्थों का उल्लेख ही किया है।[७७]

धनिक की वृत्ति से इतना अवश्य स्पष्ट है कि रूपक तो रसाश्रय होने से नाट्य-भेद हैं और उपरूपक भावाश्रय होने के कारण नृत्यभेद हैं। रूपक में चतुर्विध अभिनय की अपेक्षा है और उपरूपक में आंगिक अभिनय का प्राधान्य रहा करता है। इसी प्रकार अभिनवगुप्त ने भी डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, भाणिका, प्रेक्षणक, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक नामक उपरूपकों का उल्लेख तो किया है[७८] किन्तु इनका विवेचन कहीं नहीं किया है। हेमचन्द्र ने अभिनवगुप्त के द्वारा परिगणित नामों के अतिरिक्त श्रीगदित और गोष्ठी का भी उल्लेख कर दिया है।[७९] शारदातनय ने नृत्य के आधार

७६. अग्निपुराण, पृ० ३६९,

व्यायोगभाणवीथ्यंकत्रोटकान्यथ नाटिका।
सट्टकं शिल्पकः कर्ण एक दुर्मल्लिका तथा॥
प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीसकानि च।
काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा॥
उल्लाप्यकं प्रेङ्क्षणं च सप्तविंशतिर्धैव तत्।
सामान्यं च विशेषश्च लक्षणस्य द्वयी गतिः॥१७५॥

७७. धनञ्जय, दशरूपक, (धनिककृत अवलोक टीका)

डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणी प्रस्थानरासकाः।
काव्यं च सप्त नृत्यस्य भेदाः स्युस्तेऽपि भाणवत्॥ १/८

७८. अभिनवगुप्त, अभिनवभारती, पृ० १८१ (भाग १)

७९. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, पृ० ३८१ (अ-८)

गेयं डोम्बिकाभाणप्रस्थान शिङ्गभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्ली-सकरासक गोष्ठी श्रीगदितरागकाव्यादि। (अ० ८)

पर उपरूपक के बीस भेद गिनाये हैं और उनकी यथाविधि व्याख्या भी की है।[८०] उपरूपकों की नामावली इस प्रकार है—तोटक, नाटिका, गोष्ठी, सल्लाप, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षणक, नाट्यरासक, लासक (रासक), उल्लोप्यक, हल्लीस, दुर्मल्लिका, कल्पवल्ली, मल्लिका तथा पारिजातक। शारदातनय ने नृत्यभेदात्मक सट्टक को नाटिका भेद के रूप में माना है।[८१] शारदातनय के पूर्व रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने अपने नाट्यदर्पण में नामों का उल्लेख किया है, जिन्हें उपरूपक नहीं कहकर 'अन्यरूपक' की संज्ञा प्रदान की गई है। यथा सट्टक, श्रीगदित, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, गोष्ठी, हल्लीसक, नर्त्तनक, प्रेक्षणक, रासक, नाट्यरासक, काव्य, भाण और भाणिका।[८२]

इस प्रकार यदि भावप्रकाशन में उल्लिखित बीस उपरूपकों में अग्निपुराण का कर्ण, नाट्यदर्पण का नर्त्तनक, साहित्यदर्पण की विलासिका और अभिनवगुप्त द्वारा संकेतित तीन उपरूपक और जोड़ दिए जाएं तो सम्पूर्ण उपरूपकों की संख्या छब्बीस हो जाएगी।

उपरूपकों की संख्या के विषय में विद्वानों में अत्यन्त मतभेद है। उपरूपकों को एक निश्चित सीमा में नहीं रखा जा सकता। विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर इनकी संख्या को बढ़ाने का प्रयास किया है। नाट्यदर्पणकार ने

---

८०. शारदातनय, **भावप्रकाशन**, पृ० २५५

ते नृत्यभेदाः प्रायेण संख्यया विंशतिर्मताः।
तोटक नाटिका गोष्ठी सल्लापः शिल्पकस्तथा॥
डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणी प्रस्थानमेव च।
काव्यंच प्रेक्षणं नाट्यरासकं रासकं तथा।
उल्लोप्यकं च हल्लीसमथ दुर्मल्लिकाऽपि च।
कल्पवल्ली मल्लिका च पारिजातकमित्यपि॥ ६/२

८१. शारदातनय, **भावप्रकाशन**, पृ० २६८

सट्टकं नाटिकाभेदो नृत्यभेदात्मकं भवेत्। ६/५७

८२. रामचन्द्र गुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, पृ० १९०

अन्यान्यपि रूपकाणि दृश्यन्ते। यदाहुः—
विष्कम्भकप्रवेशकरहितो यस्त्वेकभाषया भवति।
अप्राकृतसंस्कृतया स सट्टको नाटिका॥ ४/५५
श्रीरिव दानवशत्रोर्यस्मिन् कुलांगना पत्युः। ४/५६
सुकुमारतः प्रयोगाद् भाणोऽपि हि भाणिका भवति॥ ४/६३

जितने 'अन्यरूपक' माने हैं, आगे चलकर सभी विद्वानों ने उनको प्रायः मान्यता दे दी है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी नाट्यदर्पणकार के 'अन्यरूपकों' को स्वीकार कर लिया है। आज जो अठारह उपरूपक सर्वमान्य बन गये हैं, उनके नाम एवं लक्षण आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पण में विस्तार के साथ मिलते हैं।[८३] वे ये हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका। साहित्यदर्पणकार ने 'नाटिका' और प्रकरणिका को उपरूपक की कोटि में रखा है, परन्तु रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने तो इनकी गणना रूपक के ही भेदों के रूप में की है।[८४] नाट्यदर्पणकार द्वारा उल्लिखित शम्या को[८५] उपरूपक नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह पूर्णतया नृत्त पर आधारित है।[८६] आंगिक अभिनय के अतिरिक्त इसमें अन्य अभिनयों का समावेश नहीं किया जा सकता।

साहित्यदर्पण में दिये गये उपरूपकों के सांगोपांग विवरण को देखकर कहा जा सकता है कि नृत्य पर आधारित इनके भेदों का विकास विश्वनाथ से पूर्व ही हो चुका था।

उपरूपक के प्रमुख अठारह भेदों का नामोल्लेख पहले किया जा चुका है। उपरूपक के भेदों में नाटिका प्रधान है। भरत ने अपने नाटयशास्त्र में इसे 'नाटी' कहा है।[८७] धनंजय ने नाटिका का उल्लेख करके भी उपरूपक के प्रभेद के रूप में इसकी चर्चा नहीं की है। दूसरी ओर नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र

---

८३. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङखणं रासकं तथा ।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च ।।
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः। ६/४—६

८४. रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण,

नाटकं प्रकरणं च, नाटिका प्रकरण्यथ। १/३

८५. रामचन्द्र गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण,

यस्य पदार्थाभिनयं ललितलयं सदसिनर्तकी कुरुते।
तन्नर्तकं शम्या लास्यच्छलितद्विपद्यादि ।। ४/६१

८६. रामचन्द्र गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, पृ० १९१

किन्नरविषयं लास्यं नृत्तं शम्या।

८७. भरत, नाट्यशास्त्र,

....'नाटी संज्ञाश्रिते काव्ये' १८/१०६

गुणचन्द्र ने नाटिका को रूपक के भेदों में ही परिगणित कर दिया है। नाटिका का विवेचन द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत किया जाएगा। यहां उपरूपक के भेद त्रोटक का विवरण दिया जा रहा है।

त्रोटक उपरूपक में पांच, सात, आठ या नौ अंकों का विधान होता है। देवता और मनुष्य उसके पात्र होते हैं एवं दोनों का संमिश्र वृत्त इसमें वर्णित होता है। इसका प्रधान रस शृंगार होता है। इसके प्रत्येक अंक में विदूषक की उपस्थिति आवश्यक है, अवशिष्ट विशेषताएं नाटक के समान होती है।[८८] कालिदास विरचित 'विक्रमोर्वशीय' त्रोटक के रूप में सुविदित है।

गोष्ठी एक अंक का उपरूपक है। इसमें नौ या दस साधारण श्रेणी के पुरुष तथा पांच या छः स्त्री पात्र होते हैं। इसमें शृंगार का प्राधान्य रहता है और कैशिकी वृत्ति का प्रयोग होता है। इसमें उदात्तवचनों की योजना नहीं होती है। गर्भ और विमर्श सन्धियों को छोड़ कर शेष सन्धियों का निर्वाह रहता है। 'रैवत-मदनिका' गोष्ठी उपरूपक है।[८९]

सट्टक पूर्णरूपेण प्राकृत भाषा में रचा जाता है। प्रवेशक और विष्कम्भक का अभाव और अद्भुत रस का प्राधान्य रहता है। इसके अंकों को जवनिका कहते हैं। अन्य सब विशेषता नाटिका के समान होती हैं।[९०] राजशेखर प्रणीत कर्पूरमंजरी प्रसिद्ध सट्टक है।

नाट्यरासक एक अंक का होता है। इसका नायक उदात्त तथा उपनायक पीठमर्द होता है। शृंगार का समावेश तथा हास्य रस का प्राधान्य रहता है। इसमें नायिका वासकसज्जा होती है। मुख और निर्वहण सन्धियों तथा लास्य के दश अंगों की योजना होती है। कोई कोई विद्वान् इसमें प्रतिमुख सन्धि को छोड़कर चारों सन्धियाँ मानते हैं। दो सन्धियों से समन्वित नाट्यरासक भी मिलता है।[९१] चार सन्धिवाली नाट्यरासक 'विलासवती' तथा दो सन्धि वाली नाट्यरासक 'नर्म्मवती' है।

प्रस्थान दो अंकों का उपरूपक है। इसके नायक भृत्य वर्ग के होते हैं और नायिका दासी श्रेणी की। उपनायक इससे भी हीन श्रेणी का होता है। कैशिकी और भारती वृत्तियों का प्रयोग इसमें होता है। मदिरा-पान के संयोग से उद्दिष्ट अर्थ की सिद्धि होती है।[९२] 'शृंगारतिलक' एक प्रस्थानक उपरूपक है।

---

८८. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२७३
८९. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२७४,७५
९०. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२७६
९१. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२७७, ७८, ७९
९२. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२८०,८१

उल्लाप्य एक ही अंक का होता है। इसका इतिवृत्त देव सम्बन्धी हुआ करता है। इसका नायक उदात्त श्रेणी का होता है और चार नायिकाएं होती हैं। इसमें शृंगार, करुण और हास्य रस का प्राधान्य रहता है। इसकी अभिनय-प्रणाली संग्राम बहुल होती है और शिल्पक के सत्ताइस अंगों का निर्वाह होता है। 'देवीमहादेव' उल्लाप्य उपरूपक है।[९३]

काव्य वह उपरूपक है जिसमें एक अंक होता है। इसमें हास्य रस का प्राधान्य और गीतों का बाहुल्य रहता है। नायक नायिका उदात्त होते हैं और मुख, प्रतिमुख तथा निर्वहण संधियाँ होती हैं।[९४] 'यादवोदय' काव्य उपरूपक है।

प्रेंखण भी एक अङ्क का होता है। इसमें गर्भ और विमर्शसंन्धियाँ नहीं होतीं। सूत्रधार, विष्कंभक और प्रवेशक का अभाव होता है। नेपथ्य से नान्दी और प्ररोचना का पाठ होता है। अभिनय में युद्ध और सम्फेट रहता है। इसमें सभी वृत्तियां होती हैं। 'बालिवध' को प्रेंखण के रूप में लिया जा सकता है।[९५]

रासक भी एक अंक का उपरूपक है। इसमें पांच पात्र होते हैं। मुख और निर्वहण संधियां पायी जाती हैं। नायिका प्रसिद्ध और नायक मूर्ख होता है। कैशिकी और भारती वृत्ति पर्याप्त होती है तथा विभिन्न प्रकार के प्राकृतों का विशेष प्रयोग होता है। इसमें सूत्रधार नहीं पाया जाता है। वीथी के अंगों का समावेश रहता है। कोई कोई इसमें प्रतिमुख सन्धि भी मानते हैं।[९६] 'मेनकाहित' इसका उदाहरण है।

संलापक-उपरूपक का भेद है जिसमें तीन या चार अंक होते हैं। इसका नायक पाखण्डी होता है। शृंगार और करुण रस से भिन्न किसी एक रस की विवृति होती है। कैशिकी और भारती वृत्तियां नहीं होती हैं। नगर का घेराव, विद्रव तथा संग्राम का वर्णन किया जाता है।[९७] इस उपरूपक का उदाहरण 'मायाकापालिक' है।

---

९३. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**, ६/२८२,२८३

९४. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**, ६/२८४,२८५

९५. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**, ६/२८६,२८७

९६. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**, ६/२८८—२९०

९७. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण** ६/२९१,२९२

श्रीगदित-एक अंक का उपरूपक है। इसका इतिवृत्त प्रख्यात होता है तथा नायक धीरोदात्त और नायिका प्रख्यात होती है। गर्भ और विमर्श संधियां इसमें नहीं होतीं, पर भारती वृत्ति का आधिक्य होता है। इसका उदाहरण 'क्रीडारसातल' नामक उपरूपक है। विश्वनाथ के अनुसार किन्हीं नाट्याचार्य के मत में इसमें नायिका लक्ष्मी का रूप धारण करके आती है और कुछ गाती या कुछ सम्भाषण करती है।[९८]

शिल्पक में चार अङ्क और चार वृत्तियाँ पायी जाती हैं। इसका नायक ब्राह्मण होता है तथा उपनायक कोई हीन पुरुष होता है। शान्त और हास्य को छोड़कर अन्य रस होते हैं। इसमें श्मशान आदि का वर्णन रहता है।[९९] इस उपरूपक का उदाहरण 'कनकावती-माधव' है।

विलासिका एक अङ्क का शृंगार रसप्रधान उपरूपक है। इसमें लास्य के दस अंगों की योजना तथा विदूषक, विट, पीठमर्द आदि से सम्बद्ध व्यापार होता है। इसका नायक अधम प्रकृति का पुरुष होता है। गर्भ और विमर्श संधियां इसमें नहीं होतीं। इसमें इतिवृत्त थोड़ा ही रहता है। इसमें वेश-भूषा पर अधिक ध्यान दिया जाता है।[१००]

दुर्मल्लिका चार अंकों का एक उपरूपक है। इसमें गर्भ सन्धि का अभाव तथा कैशिकी और भारती वृत्ति की योजना रहती है। इसके पात्र कला-कुशल हुआ करते हैं। इसका नायक नीच प्रकृति का व्यक्ति हुआ करता है। प्रथम अङ्क का कालमान छः घड़ी है। इसमें विट की क्रीड़ा वर्णित रहती है। द्वितीय अङ्क में विदूषक का विलास दस घड़ी तक रहता है। तीसरे अङ्क में बारह घड़ी तक पीठमर्द के विलास-व्यापार की विवृत्ति होती है। चौथे अङ्क में नागरिक पुरुषों की क्रीड़ा का वर्णन रहता है जिसका कालमान बीस घड़ी का होता है।[१०१] दुर्मल्लिका का उदाहरण 'बिन्दुमती' नामक उपरूपक है।

प्रकरणिका यह नाटिका की तरह ही होती है। पर इसमें नायक व्यापारी (सेठ आदि) होता है। नायिका नायक की सजातीया होती है।[१०२] जिस प्रकार

---

९८. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२९३,२९४,२९५

९९. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२९६—३००

१००. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/३०१,३०२

१०१. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/३०३-३०५

१०२. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/३०६

नाटक से सम्बद्ध उपरूपक नाटिका है वैसे ही प्रकरण से सम्बद्ध उपरूपक प्रकरणिका है।

हल्लीस एक अङ्क का उपरूपक है। इसमें सात, आठ या दस स्त्री-पात्र हुआ करते हैं। नायक उदात्त वचनवाला होता है। कैशिकी वृत्ति तथा मुख और निर्वहण सन्धियां इसमें पायी जाती हैं। गान, ताल और लय का आधिक्य रहता है।[१०३] इसका उदाहरण 'केलिरैवतक' है।

भाणिका में भी एक अङ्क होता है। इसकी नायिका उदात्त और प्रगल्भा होती है और नायक निम्नवंशीय होता है। इसमें सुन्दर नेपथ्य-रचना रहती है। मुख तथा निर्वहण सन्धियाँ एवं भारती और कैशिकी वृत्तियां होती हैं।[१०४] भाण की तरह उपन्यास, विन्यास, विरोध, साध्वस, समर्पण, निवृत्ति और संहार इसके अङ्क होते हैं।

---

१०३. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/३०७

१०४. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/३०८

द्वितीय अध्याय

नाटिका का स्वरूप

नाटिका को रूपक के एक उपभेद के रूप में परिगणित किया गया है । प्रायेण सभी आलंकारिकों ने इसके लक्षण पर थोड़ा बहुत विचार किया है । भरत के काल में ही 'नाटिका' अस्तित्व में आ गई थी जिसका प्रमाण उसके द्वारा दिये गये सम्बद्ध अल्पाधिक विवरण हैं । इस पर आगे विचार किया जायगा कि रूपक की इस विधा के प्रयोगात्मक पक्ष के प्रति नाटककारों में उपेक्षा का भाव क्यों रहा । ऐसा प्रतीत होता है कि नाटिका की पटकथा की स्त्रैण प्रकृति होने के कारण ही इसकी रचना के प्रति नाट्यकार तो उदासीन रहे परन्तु आलंकारिकों ने अपना दायित्व निभाते हुए नाटिका के सिद्धान्त-पक्ष पर भी कुछ न कुछ अवश्य लिखा है । प्रथमतः आलंकारिकों द्वारा निर्दिष्ट नाटिका के लक्षणों पर विचार किया जायगा ।

रूपक के भेदों की गणना करने के पश्चात् उपरूपकों का विचार करते समय भरत ने 'नाटी' शब्द का प्रयोग किया है तथा इसके स्वरूप का संकेत दिया है । नाटक और प्रकरण के सम्बन्ध में विचार करने के पश्चात् इन्होंने कहा है कि इन दोनों के बन्धयोग से अर्थात् नाटक और प्रकरण के तत्वों के योग से एक प्रख्यात तथा दूसरी अप्रख्यात काव्यविधा की सृष्टि प्रयोक्ता लोग करें ।[१] प्रख्यात काव्य विधा के रूप में प्रकरणिका की रचना करने का आग्रह उसने रचनाकारों से किया है । आगे चल कर धनंजय तथा टीकाकार धनिक (दसवीं शताब्दी) ने प्रस्तुत विषय पर विस्तार से विचार किया है । भरत द्वारा प्रयुक्त कारिका के 'अनयोश्चबन्धयोगात्' (टिप्पणी १) पद की विवृत्ति करते हुए धनंजय ने कहा है कि अन्य प्रकार के संकीर्ण उपभेदों की निवृत्ति कराने के लिए नाटिका का लक्षण निर्धारित किया जाता है ।[२] भरत मुनि ने प्रख्यात और अप्रख्यात अर्थात् नाटिका और प्रकरणिका दोनों का परिचय एक नाम 'नाटी' से दिया है ।

---

१. भरत, नाट्यशास्त्र,

अनयोश्चबन्धयोगादन्यो भेदः प्रयोक्तृभिः कार्यः ।
प्रख्यातस्त्वितरोवा नाटीसंज्ञाश्रिते काव्ये ।। १८/१०६

२. धनंजय, दशरूपक,

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र सङ्कीर्णान्यनिवृत्तये ३/४३

टीकाकार धनिक ने धनंजय की उक्त कारिकांश के 'अन्यनिवृत्तये' अंश पर थोड़ा अधिक विचार कर के नाटिका का समर्थन और प्रकरणिका के प्रति अनादर का भाव दिखलाया है।[3] इनका कहना है कि भरत के द्वारा रचित कारिका में प्रकरणिका का न तो नामोल्लेख किया गया है न तो उसके लक्षण के सम्बन्ध में ही कुछ कहा गया है। इसका कारण यह है कि प्रकरण और प्रकरणिका दोनों ही का एक जैसा लक्षण है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। अथच वस्तु, रस और नेता सम्बन्धी अभिलक्षण उभयनिष्ठ होने के कारण प्रकरण ही उपादेय है न कि प्रकरणिका। नाटिका की रचना के प्रति भरत ने अपना आग्रह दिखलाने के लिए ही उसका लक्षण अलग से किया है।[4] अन्यथा नाटक और प्रकरण दोनों शुद्ध रूपकों के लक्षणों के संकर–मिश्रण से उसका भी लक्षण स्वत: सिद्ध हो सकता है। प्रकरण की विशेषता है- इतिवृत्त का कविकल्पित होना और नाटक की विशेषता है इसके नायक का किसी प्रसिद्ध राजवंश का होना। इन दोनों तथा इनसे सम्बद्ध अन्य तत्त्वों के मिश्रण से जब नाटी या नाटिका का लक्षण भरत ने स्थिर कर दिया है, तो पुन: इसके अतिरिक्त, वस्तु आदि से सम्बद्ध भेद के अभाव होने पर भी प्रकरणिका नाम की पृथक् विधा की गणना अनावश्यक प्रतीत होती है। भरत के लक्षण के अनुसार स्त्री पात्रों की बहुलता को तथा चार अंकों में इसके निर्माण को भेदक तत्त्व मान कर यदि नाटिका के अतिरिक्त प्रकरणिका नाम का एक पृथक् भेद अङ्क, पात्र आदि तत्त्वों को आधार मान कर स्थिर किया जाय तो रूपक तथा उपरूपक के भेदों और प्रभेदों का अम्बार लग

---

३. धनंजय, दशरूपक, (धनिकवृत्ति) पृ०१७१ (तृ० प्र०)

इत्यमुं भारतीयं श्लोकम् एकोभेद: प्रख्यातो
नाटिकाख्य इतरस्त्वप्रख्यात: प्रकरणिकासंज्ञो नाटीसंज्ञया
द्वे काव्ये आश्रिते' इति व्याचक्षाणा: प्रकरणिकामपि
मन्यन्ते तदसत्। उद्देशलक्षणयोरनभिधानात्। समानलक्षणत्वे
वा भेदाभावात्, वस्तुरसनायकानां प्रकरणाभेदात् प्रकरणिकाया:,
अतोऽनुद्दिष्टाया नाटिकाया यन्मुनिना लक्षणं कृतं
तत्रायमभिप्राय:—
शुद्ध लक्षणसंकरादेवतल्लक्षणे सिद्धे लक्ष्मणकरणं संकीर्णानां
नाटिकैव कर्त्तव्येति नियमार्थं विज्ञायते ।।

४. भरत, नाट्यशास्त्र,

स्त्रीप्राया चतुरंका ललिताभिनयात्मिका सुविहितांगी।
बहुगीतनृत्यवाद्यरतिसम्भोगात्मिकाचैव ।।
राजोपचारयुक्ता प्रसादनक्रोधदम्भसंयुक्ता।
प्रकरणनाटकनाटीलक्षणमुक्तं समासेन ।। १८/१०७-१०८

जाएगा।[5] अतः नाटी या नाटिका नाम से प्रख्यात एक ही संकीर्ण उपरूपक को मान्यता मिलनी चाहिए, ऐसा धनञ्जय और धनिक दोनों का विचार है। इसे अन्य नाट्याचार्यों ने प्रकारान्तर से स्वीकार भी किया है। उल्लेख्य है कि नाटिका के रूप में ही रचनाएं उपलब्ध होती हैं, प्रकरणिका नाम से पृथक् नाट्यकृति का सर्वथा अभाव ही रहा है।

भरत के अनुसार नाटी (नाटिका) में स्त्री पात्रों की बहुलता रहती है, क्योंकि इसकी कथावस्तु राजा के अन्तःपुर से सम्बद्ध रहती है। कथासूत्र-जाल चार अंकों तक ही व्याप्त रहता है। इसका अंगी रस शृंगार होने के कारण तदनुकूल ललित अभिनय, गीत, नृत्य, वाद्य आदि का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया जाता है। चूंकि नायक को अपनी प्रेयसी कनिष्ठा नायिका की प्राप्ति अनेक बाधाओं का सामना करने के पश्चात् होती है, अतः इसमें सम्भोग शृंगार की अवस्था तक पहुंचने के पहले विप्रलम्भ शृंगार की भी अपेक्षित त्रिवृति रहती है। राजोपचारयुक्त व्यवहार में क्रोध एवं उसकी प्रशान्ति, ईर्ष्या तथा मान आदि दम्भमय कृत्यों का वर्णन किया जाता है। भरत ने 'उक्तं समासेन' ऐसा कहा है। राजोपचार-युक्त व्यवहार तथा दम्भमय कृत्यों के परिवेश में ईर्ष्या आदि अनेक तत्त्व स्वतः समाविष्ट हो जाते हैं। अतः नाटिका में नायक तथा दोनों नायिकाओं के पक्षधर दूत-दूती, विदूषक तथा अन्तःपुर के अन्य कर्मचारियों का भी समावेश विविध पात्रों के रूप में स्वतः सिद्ध हो जाता है। भरत के द्वारा नाटी या नाटिका के संबन्ध में उक्त विवरण ही इसका संकेत देता है कि संकीर्ण उपरूपकों में विशेषतः नाटिका की ही गणना करनी चाहिए।

भरत की तुलना में धनञ्जय और धनिक का लक्षण-निरूपण कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।[6]

---

५. धनञ्जय, दशरूपक,

स्त्रीप्रायचतुरङ्कादिभेदकं यदि चेष्यते।
एकद्वित्र्यंकपात्रादिभेदेनानन्तरूपता ॥ ३/४४-४५

६. धनञ्जय, दशरूपक,

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये।
तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः॥
प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारोऽङ्गी सलक्षणः।
देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा॥
गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतृसंगमः।
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा॥
अन्तःपुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः।
अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम्॥
नेता तत्र प्रवर्त्तेत देवीत्रासेन शंकितः।
कैशिक्यंगैश्चतुर्भिश्च युक्तांकैरिव नाटिका॥ ३/४३-४८

भरत ने नाटिका की परिभाषा लिखते समय समासशैली का अवलम्बन किया है। किन्तु दशरूपककार ने उसे पूर्ण विस्तार के साथ स्पष्ट कर दिया है। इनके अनुसार नाटिका की कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है अर्थात् प्रकरण की तरह इसकी भी कथा कविकल्पित होती है। इसका नायक धीरललित प्रकृति का तथा प्रख्यात वंश में उत्पन्न कोई राजा हुआ करता है। इसका प्रमुख रस शृङ्गार होता है। पात्रों में स्त्रियों की प्रमुखता रहती है। यह चार अंकों में समाप्त होती है। इसमें नायिकाएं दो होती हैं और वह देवी या महारानी भी कहलाती हैं। यह भी किसी राजा की पुत्री ही होती है तथा इसकी प्रकृति प्रगल्भ होती है।[७] स्वभाव की गम्भीरता इसकी विशेषता है। अन्य कनिष्ठा नायिका के साथ अपने पति के प्रेम-व्यापार को लक्ष्य करने के कारण वह उससे मान करती रहती है। अतः वह मानिनी भी कहलाती है। कनिष्ठा नायिका मुग्धा प्रकृति की होती है।[८] यह भी ज्येष्ठा की तरह नृपवंशजा होती है। यह अलौकिक सौंदर्य एवं गुणों से युक्त रहती है। नायक के साथ इस कनिष्ठा नायिका का संगम बहुत बड़ी कठिनाई से होता है क्योंकि ज्येष्ठा के प्रकोप का आतंक दोनों को विवश बनाये रहता है। चूंकि नायक के अन्तःपुर में ही वह निवास करती है अतः वह नायक के दृष्टिपथ तथा श्रुतिपथ में आती रहती है। उसे देखकर या अन्य अनुचरों अनुचरियों के मुख से उसकी प्रशंसा सुनकर नायक का अनुराग उसके प्रति बढ़ता जाता है। प्रेमांकुर की उत्पत्ति एकपक्षीय न होकर उभयपक्षीय होती है। यह प्रेमांकुर क्रमशः पल्लवित और पुष्पित होता हुआ शनैः-शनैः परिपक्व होता जाता है। यद्यपि नायक और कनिष्ठा नायिका दोनों महारानी के भय से आतंकित रहते हैं तथापि उनकी अनुरागचेष्टाएं बढ़ती ही जाती हैं और कभी-कभी सहेलियों के प्रयास से दोनों का मिलन भी प्रच्छन्न रूप से चलता रहता है। संगीत या इसी प्रकार के अन्य मनोरंजन के अवसर पर नायक जब भी कनिष्ठा को निकट में पाता है, महारानी की नजर बचा कर, प्रेम प्रदर्शित करने लगता है। दोनों के इस प्रणय-व्यापार पर देवी का यद्यपि अंकुश रहता है तथापि यह घटने के बजाय बढ़ता ही जाता है। इस प्रकार कथानक के ऐसे निबन्धन से युक्त नाटिका में कैशिकी वृत्ति के नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ नामक चार अङ्गों का प्रयोग तथा तदनुकूल चार अङ्कों की योजना

---

७. धनञ्जय, दशरूपक,

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयितांगके।
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना॥ २/१८

८. धनञ्जय, दशरूपक,

मुग्धानववयः कामा रतौ वामा मृदुःक्रुधि॥ २/१५

की जानी चाहिये।[9] इस प्रकार धनंजय एवं धनिक ने भरत के द्वारा दी गई नाटिका की लघुकाय-परिभाषा को विभिन्न दृष्टियों से विस्तृत किया है और लगभग सभी नाटिकाकारों ने इन आचार्यों की उक्त परिभाषा का अनुसरण किया है।

यहां एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना अपेक्षित है। धनंजय का स्थिति-काल दसवीं शताब्दी माना जाता है जबकि रत्नावली तथा प्रियदर्शिका जैसी विलक्षण नाटिकाओं की रचना हर्ष ने सातवीं शताब्दी में ही कर डाली थी। दशम शताब्दी में हुए धनंजय ने सम्भवतः हर्ष की उक्त दोनों नाटिकाओं को ध्यान में रखकर ही नाटिका की परिभाषा की होगी। इस प्रकार, कवि हर्ष ने, नाट्यशास्त्राचार्यों की श्रेणी में परिगणित न होकर भी नाटिका के स्वरूप को व्यावहारिक रूप में स्थिरता प्रदान कर, किसी भी नाट्यशास्त्राचार्य से बढ़कर काम किया है। यदि तिथि क्रम पर ध्यान न दिया जाय तो ऐसा लगेगा कि उक्त दोनों नाटिकाओं की रचना धनंजय के लक्षणग्रन्थ को ही सामने रखकर हर्ष ने की होगी। यथार्थतः नाटिका के लक्षण के सांगोपांग निरूपण को प्रस्तुत करने में धनंजय हर्ष के ऋणी हैं। अथच इस प्रसंग में इस तथ्य को भी नहीं भुलाया जा सकता कि हर्ष से कम से कम तीन-चार शताब्दी पूर्व रचित कालिदास के मालविकाग्निमित्र रूपक का रचना-बन्ध नाटिका की परिभाषा के अनुरूप हुआ था। परन्तु चार के स्थान पर पांच अङ्कों में रचे जाने के कारण ही मालविकाग्निमित्र की गणना नाटिका की कोटि में नहीं हो सकी है। ऐसा अनुमान करना अनुचित नहीं होगा कि भरत की संक्षिप्त परिभाषा और तदनुसार रचित मालविकाग्निमित्र को ध्यान में रखते हुए हर्ष ने दोनों नाटिकाओं की रचना की होगी।

धनञ्जय के पश्चात् आलंकारिक सागरनन्दी का नाम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'नाटकलक्षणरत्नकोष' में नाटिका के लक्षण[10]

---

९. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

या श्लक्षणनेपथ्य विशेषचित्रा।
स्त्री संकुला पुष्कल नृत्य गीता॥
कामोपभोगप्रभवोपचारा।
सा कैशिकी चारुविलासयुक्ता॥
नर्म्म च नर्म्मस्फूर्जो नर्म्मस्फोटोऽथ नर्म्मगर्भश्च। ६/१४४-१४५

१०. सागरनन्दी, नाटकलक्षण रत्नकोश, पृ० २६०

सभेदा कैशिकी यत्र श्रृंगारद्वयमुज्ज्वलम्।
चतुरंकं सहासंच नाटकं नाटिकां विदुः॥ ३५१॥

आदि का विवेचन किया है। इनका स्थितिकाल एकादश शताब्दी माना जाता है। सागरनन्दी ने ऐसे रूपक को नाटिका नाम से अभिहित किया है। जिसमें कैशिकी वृत्ति के नर्म आदि चार अङ्ग हों, शृंगाररस के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों भेदों का समावेश हो, चार अङ्कों में इतिवृत्त का प्रसार हो एवं हास-परिहास से युक्त घटनाओं का समावेश हो। नाटिका का विशेष विवरण प्रस्तुत करते हुये सागरनन्दी ने लिखा है कि इसकी कथावस्तु उत्पाद्य तथा प्रकरण और नाटक के लक्षणों से मिश्रित होती है[11] तथा इसका नायक कोई राजा होता है। कथा का मुख्य सम्बन्ध अन्तःपुर में विद्यमान संगीतकला में निपुण किसी कन्या से रहता है। पुनः नाटिका में स्त्री पात्रों की बहुलता, चार अङ्कों का समावेश, ललित अङ्ग-विन्यासों से युक्त अभिनय तथा राजा के क्रीड़ाकलाप का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त प्रसाद, क्रोध, दम्भ, मान आदि की विवृति रहती है। नायक तथा नायिकाओं के साथ दूती, महारानी की दासियों आदि के सहयोग से घटनाओं का विस्तार होता चलता है।

द्वादश शताब्दी के प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र ने भी नाटिका के लक्षण पर विचार किया है और भरत द्वारा निर्दिष्ट इसकी परिभाषा का सर्वांशतः अनुसरण किया है।[12] नाटिका को मिश्रकाव्य की श्रेणी में इन्होंने भी माना है तथा इतिवृत्त को प्रकरण की तरह उत्पाद्य तथा नायक को धीरललित प्रकृति का राजा मानते हुए इसमें शृंगार रस की प्रमुखता को स्वीकार किया है। पात्रों में स्त्रियों की संख्या का अधिक होना, मनोरंजक अभिनयों से युक्त होना,

---

११. सागरनन्दी, नाटकलक्षणरत्नकोश, पृ० २६०

प्रकरणनाटक भेदादुत्पाद्य वस्तुविषया नायको यत्र नृपतिः।
अन्तःपुरसंगीतककन्यामधिकृत्य कर्त्तव्या ॥
स्त्रीप्राया चतुरंका ललिताभिनयात्मिका सुविहितांगी।
राजोपचारयुक्ता प्रसादन क्रोध (दम्भ) संयुता चापि।
नायक-दूती-देवी-परिजनवती नाटिकेति विज्ञेया ॥ ३५२-३५३

१२. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, पृ० ३३८

प्रकरणनाटकभेदादुत्पाद्यं वस्तु नायकं नृपतिम्।
अन्तःपुरसंगीतककन्यामधिकृत्य कर्त्तव्या ॥
स्त्रीप्राया चतुरंका ललिताभिनयात्मिका सुविहितांगी।
बहुगीतनृत्यवाद्या रतिसम्भोगात्मिका चैव ॥
राजोपचारयुक्ता प्रसादनक्रोधदम्भसंयुक्ता।
नायकदेवीदूतीसपरिजना नाटिका ज्ञेया ॥

अनेक प्रकार के गीत, नृत्य, वाद्य आदि के प्रयोग से अभिनय को आकर्षक बनाना, नायक तथा नायिका के बीच रति एवं सम्भोग का यथेष्ट अवसर मिलना आदि इसकी विशेषताएं होती हैं।

नाटिका के नायक के नृपवंशज होने के कारण राजकीय व्यवहारों की चर्चा अथवा उनका वर्णन अपेक्षित होता है। कन्या नायिका से राजा के प्रेम करने के कारण महारानी का क्रोध, उसके क्रोध की शान्ति के लिये महाराज के द्वारा किये गये मनुहार आदि व्यापार इसमें अवश्यम्भावी होते हैं। नाटिका के पात्रों में नायक, ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा नायिकाएं, दूती तथा अन्तःपुर से सम्बद्ध अन्य परिजन इसके पात्र होते हैं।

नाटिका के लक्षण का साङ्गोपाङ्ग विवेचन द्वादश शताब्दी के नाट्यशास्त्रकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र द्वारा लिखित 'नाट्यदर्पण' में किया गया है। इन आचार्यों के अनुसार भी नाटिका में दो नायिकाएं होती हैं। प्रथम स्वकीया, जो महारानी हुआ करती है और दूसरी उच्चवंश की लावण्यवती कोई कन्या। इसमें चार अंक होते हैं एवं स्त्री-पात्रों की अधिकता के साथ श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। इसके अनुकूल कैशिकी वृत्ति का प्राधान्य होता है एवं उसके चारों अंगों का समावेश किया जाता है। नाटिका में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होने के कारण गीत, नृत्य, वाद्य एवं हास्य आदि श्रृंगार के अङ्गों की प्रचुरता होती है। अथच श्रृंगार के अङ्गभूत अन्य धर्म का निबन्धन भी बार-बार किया जाता है। श्रृंगाररस के अनुकूल इसका नायक धीरललित प्रकृति का होता है। सर्वत्र राजोचित व्यवहार का प्रदर्शन किया जाता है। स्त्री-पात्रों में देवी, कन्या, दूती, सखी, चेटी आदि रहती हैं। नाटिका की नायिका के रूप में अपरिणीता कन्या एवं परिणीता देवी दोनों को एक साथ ही नायिका माना जाता है। देवी वयस्का, मानिनी, दक्षा एवं चतुरा के रूप में चित्रित की जाती है। कन्या अर्थात् कनिष्ठा नायिका मुग्धा प्रकृति की होती है। जहां तक दोनों नायिकाओं के वैयक्तिक गुणों का प्रश्न है दोनों ही उच्चवंशीया होती हैं। तथा नय, विनय, लज्जा, गाम्भीर्य आदि गुण उनमें समान रूप से विद्यमान रहते हैं। महारानी के द्वारा क्रोध, मान आदि का प्रदर्शन प्रासंगिक अतः क्षणिक हुआ करता है। कन्या के प्रति राजा के अनुराग का ज्ञान होने के पश्चात् देवी राजा के प्रति क्रोध अथवा मान आदि का

प्रदर्शन करती है। राजा महारानी का मानसिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए उसको प्रसन्न करने का प्रयास करता रहता है।[13] अर्थात् नायक राजा ज्येष्ठा नायिका को अप्रसन्न रखकर कनिष्ठा की प्राप्ति के लिये ऐसा एक भी कदम नहीं उठाता है जिसका ज्ञान महारानी को हो जाए। कनिष्ठा की प्राप्ति के लिए जिस कोटि की व्यग्रता नायक में रहती है उतनी ही तीव्र व्यग्रता ज्येष्ठा महारानी को प्रसन्न बनाये रखने के लिए भी उसमें होती है। धीरललित प्रकृति का होने के कारण इसके नायक के व्यक्तित्व के लिए उसका यह गुण अनिवार्य माना गया है। कन्या के प्रति रति के प्रदर्शन योग्य अवसर की प्राप्ति के लिये जहां नायक की ओर से महारानी को धोखे में रखने का प्रयास किया जाता है वहीं दूसरी ओर ज्येष्ठा महारानी की ओर से भी नायक के प्रयास को विफल करने के लिए प्रवंचना के विभिन्न हथकण्डे अपनाये जाते हैं। इसी को स्पष्ट करते हुए दर्पणकार ने कहा है 'सर्वेषामन्योन्यं वंचनम्'[14]। इस प्रकार नाटिका में शृंगार रस के सहायक अङ्गों का बार-बार निबन्धन किया जाता है। इन आचार्यद्वय ने ही पहली बार कन्या और देवी के प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध होने को आधार मानकर नाटिका के चार भेद किये हैं[15] :—(१) देवी अप्रसिद्धा, कन्या प्रसिद्धा, (२) देवी अप्रसिद्धा, कन्या अप्रसिद्धा, (३) देवी प्रसिद्धा, कन्या अप्रसिद्धा, (४) देवी प्रसिद्धा, कन्या प्रसिद्धा। नाटिका के अन्त में ज्येष्ठा नायिका के द्वारा ही कनिष्ठा नायिका के साथ नायक का योग कराया जाता है। नाटिका का फल स्त्री-लाभ पुरःसर राज्य-प्राप्ति है।

---

१३. रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण,

चतुरंका बहुस्त्रीका नृपेशा स्त्री-महीफला।
कल्प्यार्था कैशिकी-मुख्या पूर्वरूपद्वयोत्थिता ॥
अत्र मुख्याकृतो योगः, पर्यन्ते नेतुरन्यया।
प्रेमार्द्रो वर्ततेऽन्यस्यां, नेता मुख्याऽभिशंकितः ॥
देवी दक्षाऽपरा मुग्धा, समा धर्मा द्वयोःपुनः।
क्रोध-प्रसाद-प्रत्यूह-रतिच्छद्मादि भूरिशः ॥ २/५—८

१४. रामचन्द्र गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, पृ० १०७

१५. रामचन्द्र-गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण,

अख्याति-ख्यातितः कन्यादेव्योर्नाटी चतुर्विधा। २/६

त्रयोदश शताब्दी के शारदातनय के अनुसार भी नाटिका का नायक[19] प्रख्यात और धीरललित होता है, रसों में श्रृंगार रस का प्राचुर्य रहता है, कैशिकी वृत्ति का प्राधान्य रहता है। अविमर्श सन्धि को छोड़कर शेष चार सन्धियां—मुख, प्रतिमुख गर्भ और उपसंहृति रहती हैं। इसमें विट का अभाव होता है। इस प्रकार शारदातनय ने नाटिका के अबतक के प्रसिद्ध लक्षणों का परिगणन किया है।

---

१९. शारदातनय, भावप्रकाशन, पृ० २४३

नाटकस्य प्रकरणस्योभयोःसंकरात्मिका।
लक्ष्यते नाटिकाऽप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये॥
प्रख्यातो धीरललितः श्रृंगारोऽङ्गी सलक्षणः।
नायको धीरललितो वृत्तमुत्पाद्य मेव च॥
श्रृंगारोऽङ्गी रसोऽङ्गानि वीररौद्रादयो मताः।
वृत्तिश्च कैशिकी स्वांगैर्नर्मस्पुञ्जादिभिर्युता॥
देव्या प्रधानया नेतुस्तत्सदृश्या च मुग्धया।
सङ्करोऽत्रानुरागोऽपि नवावस्थो भवेत्तयोः॥
देवी भयेन साशंको नेता मुग्धासमागमे।
चत्वारःसन्धयो लोपोऽव्वमर्शस्य भविष्यति॥
न विटःपीठमर्दश्च सहायौ भवतः क्वचित्।
नेतुःस्यान्नर्मसचिवो विरूपस्तु विदूषकः॥
कैश्चिन्नाटकधर्मैस्तदविरोधिमिराश्रितम्।
स्त्रीप्रायपात्रं देशर्तुवर्णनाकल्पशोभितम्॥
रूपकं चतुरंक यन्नाटिकेत्यभिधीयते।
अत्रोत्पाद्येतिवृत्तत्वाच्छृंगारादिरसत्वतः॥
प्रख्यातनृपनेतृत्वात्षट्त्रिंशद्भूषणत्वतः।
तुल्यत्वं नाटकेनापि तथा प्रकरणेन च॥
नाटिकायाः स्मृतं तत्र विशेषोऽयमुदाहृतः।
तदुदाहरणं रत्नावली च प्रियदर्शिका॥ ८/१५४—१५७

'भावप्रकाशन' के पश्चात् चतुर्दश शताब्दी के नाट्यलक्षण ग्रन्थ शिंगभूपाल रचित 'रसार्णवसुधाकर' में नाटिका के सम्बन्ध में विचार किया गया है।[१७] रसार्णवसुधाकर की मान्यता है कि नाटिका एवं 'प्रकरणिका' दोनों नाटक और प्रकरण के तत्त्वों को ही अपना कर स्वरूप ग्रहण करते हैं। अतः इन्हें अलग से रूपक भेद मानने की आवश्यकता नहीं है। नाटिका का इतिवृत्त प्रकरण की प्रकृति का तथा इसका नायक नाटक की प्रकृति का होता है। नाटिका को नाटक-प्रकरण दोनों का भेद मानना चाहिए; क्योंकि प्रसिद्ध राजा के वृत्त को यह नाटक से ग्रहण करती है एवं बुद्धिकल्पित वस्तु को प्रकरण से। शिङ्गभूपाल ने अब तक के आलंकारिकों की यह मान्यता कि नाटिका में विमर्श सन्धि नहीं होती, इसे भेदक तत्त्व के रूप में नहीं माना है, क्योंकि रत्नावली[१८] में विमर्श सन्धि का भी समावेश किया गया है।

इसी प्रकार स्त्री-पात्रों की बहुलता एवं चार अंकों के सन्निवेश को भी शिङ्गभूपाल भेदकतत्त्व नहीं मानते हैं। नाटिका को चार अंकों वाली रचना मानते हुये, इससे कम अंकों वाली प्रकरणिका नाम से सम्भावित रचना को भी इन्होंने उचित नहीं माना है, क्योंकि अंकों की एक, दो, तीन आदि संख्या या पात्र को भेदक तत्त्व मानने पर इनके अनन्त भेद-प्रभेद हो जाने की सम्भावना हो जाती है। लक्षण निरूपण के अन्त में नाटिका के भेदक तत्त्वों में से इसको भी इन्होंने अमान्य कर दिया है कि नाटिका में ज्येष्ठा देवी के अधीन ही कनिष्ठा नायिका और नायक का संयोग होना चाहिये। इन्हें भय है कि इस प्रकार देवी की स्वीकृति के साथ-साथ कहीं उसकी अस्वीकृति की अवस्था को भी आधार मानकर नाटिका

---

१७. शिङ्गभूपाल, रसार्णवसुधाकर, पृ० २८५

नाटिका त्वनयोर्भेदो न पृथक् रूपकं भवेत्।
प्रख्यातं नृपतेर्वृत्तं नाटकादाहृतं यतः॥
बुद्धिकल्पितवस्तुत्वं तथा प्रकरणादपि।
विमर्शसन्धिराहित्यं भेदकं चेन्न तन्मतम्॥
रत्नावल्यादिके लक्ष्यते तत् सन्धेरपि दर्शनात्।
स्त्री प्रायचतुरंकादि भेदकं चेन्न तन्मतम्॥
एकद्वित्र्यंकपात्रादिभेदेनानन्तता यतः।
देवीवशात् संगमेत भेदश्चेत् तन्न युज्यते॥३/२१८—२२

१८. श्रीहर्ष, रत्नावली,

हर्म्याणां हेमशृंगश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः।
कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै
रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरोऽग्निः॥ ४/१४

का कोई पृथक् प्रभेद न खड़ा हो जाये। 'रसार्णवसुधाकर'कार] ने केवल नाटिका पर ही बल देते हुए स्पष्ट लिखा है कि नाटिका ही उपादेय है न कि प्रकरणिका भी। सम्भवत: इसी कारण भरत ने दस प्रकार के रूपकों के नामोल्लेख में प्रकरणिका का समावेश नहीं किया है।[१९]

अष्टादश शताब्दी के आलङ्कारिक विश्वनाथ ने उपरूपक के अठारह भेदों में पहला भेद नाटिका को ही माना है तथा उसके लक्षण पर विस्तृत रूप से विचार किया है।[२०] इनके अनुसार नाटिका का वृत्त अर्थात् कथानक कविकल्पित होता है। इसमें स्त्री पात्र ही विशेष रूप से चित्रित किये जाते हैं। कथानक अंकों में विभाजित रहता है। किसी प्रसिद्ध राजवंश का धीरललित प्रकृति वाला राजा नायक होता है। नाटिका की प्रमुख नायिका नायक के अन्त:पुर से सम्बद्ध रहती है। वह संगीतकला में निपुण होती है। नायिका का भी राजकुलोत्पन्न होना तथा नवानुरागवती होना आवश्यक है। इस में नायिका के प्रति नायक के रतिभाव की अभिव्यक्ति देवी अथवा राजमहिषी के भय से अनुविद्ध रहती है। यहाँ देवी से अभिप्राय राजकुल में उत्पन्न प्रगल्भा प्रकृतिवाली महारानी से है जो पग-पग पर मान करती हुई दीखती है। इसकी अनुकम्पा पर नायक और नायिका का प्रेम-मिलन निर्भर करता है। इसमें कैशिकीवृत्ति का प्राधान्य रहता है और चार सन्धियों के साथ अंशत: विमर्शसन्धि का समावेश किया जाता है।

भरत से लेकर विश्वनाथ तक लगभग सभी आलंकारिकों ने नाटिका पर विचार किया है। इसकी तकनीक का जो संकेत आरम्भ में भरत ने कर दिया था उसी को परवर्त्ती आचार्यों ने पल्लवित किया है। इन आचार्यों द्वारा

---

१९. शिङ्गभूपाल, **रसार्णवसुधाकर**, पृ० २८१

प्रकरणिकानाटिकयोरनुसरणीया हि नाटिकासरणि:।
अतएव भरतमुनिना नाट्यं दशधा निरूपितं पूर्वम्॥ वि० ३

२०. **विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,**

नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरंकिका।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृप:॥
स्यादन्त:पुरसम्बद्धा संगीतव्यापृताथवा।
नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा॥
सम्प्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शंकित:।
देवीभवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा॥
पदे पदे मानवती तद्वश: संगमो द्वयो:।
वृत्ति:स्यात्कैशिकी स्वल्पविमर्ष: सन्धय: पुन:॥ ६/२८१

निर्दिष्ट लक्षणों में कोई उल्लेखनीय अन्तर दृष्टिगत नहीं होता है। संस्कृत-साहित्य में प्रचलित नाटिका के सिद्धान्त प्रयोग की परम्परा का पालन आगे चलकर हिन्दी के आलंकारिकों ने भी किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकृत चन्द्रावली नाटिका संस्कृत नाटिका के अनुकरण पर ही लिखी गई है। उन सारी विशेषताओं का समावेश चन्द्रावली में पाया जाता है जिनका उल्लेख प्राचीन आचार्यों ने नाटिका के लक्षण-निरूपण के क्रम में किया है।

भरत तथा अन्य आचार्यों द्वारा मान्यनाटिका के लक्षणों की कतिपय परवर्त्ती नाटिकाकारों ने उपेक्षा भी की है। प्रस्तुत ग्रन्थ में आलोचित नाटिकाओं में उषारागोदया, वृषभानुजा तथा विवेकचन्द्रोदय जैसी कृतियों के रचयिताओं ने, यदि सच पूछा जाये तो नाटिका के अंकों के परिमाण तथा अंगी रस विषयक लक्षणों के अतिरिक्त लगभग सभी अन्य लक्षणों की उपेक्षा कर दी है।

उषारागोदया नाटिका के कथानक की प्रकृति ही कुछ इस ढंग की है कि इसमें नायक के पूर्वानुराग की स्थितिकाल में अन्तःपुर में कनिष्ठा नायिका की उपस्थिति ही नहीं दिखलायी जा सकी है। नायिका के पिता वाणासुर के साथ हुए युद्ध के पश्चात् ही नायिका नायक के अन्तःपुर में आती है। युद्ध की स्थिति नायक और नायिका के पूर्ण पूर्वानुराग के पश्चात् ही आती है और यह पूर्वानुराग नायक के अन्तःपुर में न होकर नायिका के पितृगृह में ही विकसित होता दिखलाया जाता है। फलस्वरूप इस नाटिका में विप्रलम्भ शृंगार की स्थिति का प्रदर्शन कवि के द्वारा बलात् आरोपित प्रतीत होता है।

वृषभानुजा नाटिका अपने ढंग की एक विलक्षण कृति है। इस नाटिका में भी भक्त कवि मथुरादास ने नाटिका की लक्षण सम्बन्धी रूढ़ियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है। यहां नायिका राधा को एक सम्भ्रान्त कुल की कन्या के रूप में चित्रित करते हुए उसका तथा नायक के प्रणय-व्यापार का रोचक वर्णन किया गया है। प्रणयालाप आदि की विवृति राजकीय अन्तःपुर में नहीं करा कर वृन्दावन में प्रकृति के रमणीय परिवेश में कराई गई है। नायक नायिका के प्रणय-व्यापार पर किसी महादेवी के प्रकोप का आतंक नहीं दिखला कर उसके स्थान पर अभिभावक के मर्यादित अनुशासन को स्थान दिया गया है। नायक नायिका का विवाह वैदिक रीति से नहीं करा कर गान्धर्वविधि से सम्पन्न कराया गया है। वृन्दा नाम की वयस्का को स्त्री पात्रों में समाविष्ट कर तथा उसके द्वारा दोनों पक्ष के अभिभावकों की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् नायक-नायिका का सम्पर्क कराकर नाटिका के प्रणयन में समाज के व्यावहारिक पक्ष को प्रधानता दी है।

इसी प्रकार 'विवेकचन्द्रोदय' नाटक जिसमें नाटिका के अनेक तत्त्वों का समावेश किया गया है, के लेखक शिवकवि ने नाटिका के अनेक रूढ़ अभिलक्षणों की उपेक्षा कर दी है। इसमें न तो ज्येष्ठा या कनिष्ठा नायिका का झमेला रखा गया है और न राज्यान्तःपुर में प्रेमी और प्रेमिका के गुप्त मिलन की व्यवस्था कराने में दूत-दूतियों का मेला लगाया गया है। धर्म तथा अधर्म के दूतों में वाग्युद्ध वाला प्रसंग भी रूपक साहित्य के लिये विलक्षण उपकरण प्रस्तुत करता है। आशय यह है कि नाटिका के तकनीकी प्रयोग में परिवर्तन लाकर परवर्त्ती कतिपय नाटिकाकारों ने जिस साहस का परिचय दिया है वह स्तुत्य है।

तृतीय अध्याय

वस्तु-परिचय

प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य नाटिकाओं की वस्तु का विवेचन किया गया है। जहाँ तक नाटिकाओं के कालक्रम का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में जटिलता को अस्वीकार करना कठिन है। सामान्यतः संस्कृत के कवियों के काल-निर्णय के विषय में निश्चित मत प्रस्तुत करना कठिन है। संस्कृत के अधिकांश कवियों ने आत्मविवरण देने में शिथिलता प्रदर्शित की है।[1] इसी प्रकार नाटिकाओं के कालक्रम का निर्धारण सुकर नहीं है।

सप्तम शताब्दी तक के रूपक साहित्य में नाटिका की रचना का कोई भी संकेत उपलब्ध नहीं होता है। नाटिका की रचना के आरम्भ का श्रेय श्री हर्ष को दिया जाता है तथापि भास और हर्ष के मध्यकाल में नाटिका की रचना नहीं हुई होगी, यह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता, विशेषतः नाट्यशास्त्र में चर्चित नाटिका के लक्षण निरूपण के सन्दर्भ में।

नाटिका के वस्तु विन्यास का जो आदर्श आलंकारिकों ने रूपककारों के लिए उपन्यस्त किया उससे स्पष्ट जान पड़ता है कि इस प्रकार के नाट्यसाहित्य की रचना विशेषतः राजप्रासाद के प्राचीर के अन्तर्गत जीवनयापन करने वालों के मनोरंजन के लिए ही आरम्भ हुई। उच्च वंश की कन्या के साथ राजा का गुप्त प्रेम-व्यापार नाटिका की वस्तु का मूल विषय माना गया है। श्रीहर्ष अथवा उनके परवर्त्ती काल की नाटिकाओं में वस्तुविन्यास का यही क्रम उपलब्ध होता है। धनंजय से विश्वनाथ तक किसी भी आचार्य ने नाटिका के वस्तु-

---

1. Macdonell, A. A., **A History of Sanskrit Literature**, p. 8
   'History is the one weakspot in Indian literature, it is in fact non-existent'

   Whiteney, W.D., **Sanskrit Grammar**, (Introduction xix),
   'All dates given in Indian literary history are pins set up to be bowled down again'

विन्यास को अन्तःपुर की संकुचित सीमा का अतिक्रमण कर विस्तृत जीवन-भूमि से सम्पृक्त करने का क्षीणतम प्रयास भी नहीं किया। फलतः नाटिका साहित्य के स्वरूप-विधान ने ही उसके विकास की गति को अवरुद्ध कर दिया।

नाटिका साहित्य के लेखकों में सातवीं शताब्दी के श्री हर्ष को प्राचीनतम माना जाता है।[२] इनकी दो नाटिकाएं हैं—प्रियदर्शिका तथा रत्नावली। पर इनके कृतित्व के सम्बन्ध में विद्वद्वर्ग में मतभेद है। कीथ ने प्रियदर्शिका, रत्नावली (तथा नागानन्द नाटक) की समीक्षा के आधार पर प्रमाणित किया है कि ये एक ही व्यक्ति की कृतियां हैं।[३] कतिपय आलोचकों ने मम्मट के काव्यप्रकाश के आधार पर बाणभट्ट को[४] (कहीं धावक पाठ भी है) जो हर्ष के आश्रित कवि थे, इन नाटिकाओं का रचयिता माना है। पर बाणभट्ट के हर्षचरित अथवा कादम्बरी की तथा इस नाटिकाद्वय की शैली में पर्याप्त अन्तर है। दामोदरगुप्त रचित 'कुट्टनीमतम्' में रत्नावली नाटिका का रचयिता किसी राजा को माना गया है।[५] अतः कीथ ने बाण को नाटिकाद्वय का लेखक नहीं माना है।[६] सम्भवतः हर्ष ने अन्य किसी राजकवि या पण्डितों की सहायता लेकर इनकी रचना की थी। हर्ष के कृतित्व के सम्बन्ध में इस प्रकार के भ्रम का बीजारोपण आचार्य मम्मट की उक्ति से हुआ है। मम्मट ने काव्य के प्रयोजनों में अर्थ प्राप्ति को भी एक प्रयोजन माना है। मम्मट की इस उक्ति का कुछ टीकाकारों ने यह अर्थ निकाला है कि धावककवि ने हर्षवर्द्धन के नाम से रत्नावली की रचना करके विपुल सम्पत्ति पायी। काव्यप्रकाश की किसी काश्मीरी प्रति में धावक के स्थान पर बाण का नाम मिलता है जिसके आधार पर बाणभट्ट[७] को ही रत्नावली का कर्त्ता मानते हैं। श्रीहर्ष सदृश महादानी नरेश के लिए दरबारी कवियों को अतिशय दान देना असम्भव नहीं जान पड़ता, परन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि उन्होंने दान देकर प्रतिदान के रूप में रूपकों की रचना करवा ली। ईसा की सातवीं शताब्दी में, भागवत में वर्णित रासक्रीड़ा के आधार पर, एक नई नाट्यशैली का उल्लेख चीनी यात्री ईत्सिंग ने किया है। उसने अपनी यात्रा के विवरण में हर्ष को

---

2. Macdonell A.A., A **History of Sanskrit Literature**, p. 305
   Das Gupta, S.N., **History of Sanskrit Literature**, p. 255
३. कीथ, ए०बी०, **संस्कृत नाटक**, पृ० १७३।
४. मम्मट, **काव्य प्रकाश**, पृ० ५
५. दामोदर गुप्त, **कुट्टनीमतम्** पृ० १५६—१५८ (प० ८००—८०८)
६. कीथ, ए० बी०, **संस्कृत नाटक**, पृ० १७३।
7. Krishnamachariar., M. **History of Classical Sanskrit Literature** p. 585

'श्री हर्षदेर्वाणा (धावका) दीनामिव धनम्'

नागानन्द नाटक का रचयिता बताया है।[८] इससे इसका संकेत मिलता है कि हर्ष ने बोधिसत्त्व जीमूतवाहन के आत्मबलिदान की कथा को संगीतबद्ध करके नृत्य-संगीत कलाविद् अभिनेताओं के द्वारा उसका अभिनय करवाया था। कुट्टनीमत में इस प्रकार रत्नावली का निर्माता राजा हर्ष को बताया गया है।[९] बाण ने स्वयं अपने हर्षचरित में हर्ष के काव्य-कौशल का विस्तार से वर्णन किया है।[१०] इस प्रकार इन नाट्यकृतियों को हर्षकृत न मानने के लिए कोई सबल कारण नहीं दिखाई देता।

रचनाक्रम के अनुसार प्रियदर्शिका श्रीहर्ष की प्रथम कृति है, क्योंकि उनकी अन्य दोनों रचनाओं (रत्नावली नाटिका तथा नागानन्द नाटक) की अपेक्षा इसमें नाट्य-कला कम परिष्कृत लक्षित होती है।

प्रियदर्शिका नाटिका का कथानक कौशाम्बी नामक प्राचीन नगरी के राजा वत्सराज उदयन से सम्बद्ध है। महासेन प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता उदयन की प्रधान रानी है। एक दिन उदयन की सभा में एक कंचुकी आता है और अपने को महाराज दृढ़वर्मा का आश्रित बतलाता है। राजा उदयन से वह कंचुकी निवेदन करता है कि आजकल महाराज दृढ़वर्मा संकटों से बुरी तरह आक्रान्त हैं। कलिंग नरेश ने उन्हें बन्दी बना लिया है। दृढ़वर्मा की एक कन्या है जो इस समय असहाय अवस्था में पड़ी है। कृपया आप इसे अपने आश्रय में रख लें। यह सुनकर राजा उदयन उस कन्या का नाम 'आरण्यका' रखकर उसे संगीत आदि कलाओं की शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से अपनी महारानी वासवदत्ता के पास अन्तःपुर में भेज देते हैं। महारानी भी उस कन्या के शिक्षण की समुचित व्यवस्था कर देती है।

---

8. Krishnamachariar, M., **History of Classical Literature** P. 588
पाटन पुस्तकालय में संग्रहीत सम्वत् १८५८ के एक हस्तलेख में श्री हर्ष को नागानन्द का लेखक माना है। देखें पी० आर० ५

९. दामोदर गुप्त, **कुट्टनीमतम्**, पृ० ८००

१०. बाणभट्ट, हर्षचरित, पृ० ११५
सम्भाषणेषु परित्यक्तमपि मधु वर्षन्तम् काव्यकथास्वपीतमप्य मृतमुद्वमन्तम् (द्वि० उ०)

बाणभट्ट, हर्ष चरित, पृ० १२७
'अस्य कवित्वस्य वाचः............
.... न पर्याप्तो विषयतूः।' (द्वि० उ०)

एक दिन राजा उदयन विदूषक के साथ उद्यान में भ्रमण करने के लिए आते हैं। उसी समय महारानी वासवदत्ता के आदेश से जलाशय में कमल पुष्प चयन के लिए आरण्यका का प्रवेश होता है। उसी अवसर पर इन्दीवरिका नाम की महारानी की एक अन्य दासी भी उपस्थित हो जाती है। कमलपुष्प पर मण्डराते भ्रमरों से आरण्यका आतङ्कित हो उठती है। इन्दीवरिका को उपस्थित देख कर आरण्यका भ्रमरों से आत्मरक्षा के निमित्त उसे पुकारती है उसका आर्त्तनाद सुनकर विदूषक और राजा दोनों की दृष्टि आरण्यका पर पड़ती है। विदूषक के सुझाव देने पर राजा आरण्यका की रक्षा करने के लिए वहां पहुंच जाते हैं। सहसा यह जान कर कि मेरी रक्षा के निमित्त उपस्थित व्यक्ति स्वयं राजा ही है, आरण्यका लज्जित हो जाती है। आरण्यका को यह स्मरण हो आता है कि इसी राजा उदयन को मुझे सौंपने की पिता जी की उत्कट अभिलाषा थी। विदूषक के संकेत पर राजा आरण्यका के समीप से हट जाते हैं; क्योंकि अन्त.पुर से एक चेटी वहां पहुंच जाती है। वह आरण्यका को अन्तःपुर में वापस ले जाती है। प्रस्तुत नाटिका के नायक और नायिका का प्रथम दर्शन यहीं जलाशय के परिसर में होता है और दोनों के हृदय में प्रेमांकुर पनपने लगते हैं।

जलाशय वाली घटना के पश्चात् राजा और आरण्यका इन दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण बढ़ता जाता है। फलस्वरूप दोनों उद्विग्न रहने लगते हैं। आरण्यका और राजा दोनों की मनःस्थिति का ज्ञान महारानी वासवदत्ता को हो जाता है और वह जल-भुन उठती है। वह नहीं चाहती कि राजा और आरण्यका को प्रेमालाप का अवसर पुनः मिले। इधर विदूषक की योजना के अनुसार दोनों को एक दूसरे के निकट लाने के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत किया जाता है। एतदर्थ एक नाटक का अभिनय किया जाता है, जिसका सम्बन्ध उदयन और वासवदत्ता के चरित्र से है। इस आयोजित नाटक में मनोरमा को उदयन की भूमिका में मंच पर उतारने का निश्चय किया गया है; किन्तु विदूषक के परामर्श से उदयन ही रङ्गमंच पर स्वयं अवतीर्ण हो जाते हैं। वासवदत्ता की भूमिका आरण्यका करती है। अभिनय इतना स्वाभाविक और सुन्दर होता है कि नायक और नायिका का परस्पर प्रेम प्रदर्शन यथार्थरूप ग्रहण कर लेता है। अभिनय के मध्य में रहस्य को जान लेने पर वासवदत्ता क्रुद्ध होकर अन्तःपुर में चली जाती है।

तदन्तर कुपित वासवदत्ता आरण्यका को बन्दी बनाकर कारागार में डाल देने की आज्ञा देती है। इसी बीच उदयन की सेना दृढ़वर्मा को मुक्त करने के लिए कलिङ्ग पर आक्रमण कर देती है और कलिङ्ग नरेश को परास्त

कर दृढ़वर्मा को बन्धन से छुड़ा लेती है। इसके बाद दृढ़वर्मा का कंचुकी उदयन की सभा में उपस्थित होता है। इसके द्वारा ही उदयन को आरण्यका का यथार्थ परिचय मिलता है। इधर अपनी वर्त्तमान अवस्था से दुःखी आरण्यका विषपान कर आत्महत्या करने को तत्पर है। विषविद्या के ज्ञाता उदयन ही आरण्यका की प्राणरक्षा करते हैं। दृढ़वर्मा के कंचुकी के आगमन के उपरान्त वासवदत्ता को यह भी ज्ञात हो जाता है कि आरण्यका उसकी मौसेरी बहन प्रियदर्शिका है। अन्ततः वासवदत्ता प्रियदर्शिका का विवाह उदयन के साथ कराने का आयोजन करती है। वे दोनों प्रसन्नता से भर जाते हैं।

हर्ष की दूसरी नाट्यकृति रत्नावली एक बहुत ही सफल नाटिका है। इसकी नाट्यकलात्मकता प्रियदर्शिका नाटिका से अधिक परिष्कृत है। नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन इसमें इतना सर्वांगीण हुआ है कि दशरूपक तथा साहित्यदर्पण में इसके अधिक उद्धरण दिये गए हैं।

रत्नावली नाटिका की कथावस्तु सिंहलदेश की राजकुमारी रत्नावली तथा महाराज उदयन की प्रेमकथा पर आधारित है। नाटिका के प्रथम अंक में राजा उदयन के प्रधान मंत्री यौगन्धरायण सिद्ध पुरुषों की वाणी सुनते हैं कि सिंहलदेश की राजकन्या रत्नावली का पति जो व्यक्ति होगा, वह चक्रवर्त्ती सम्राट् बनेगा। प्रभुभक्त मन्त्री यौगन्धरायण उक्त घोषणा पर दृढ़ आस्था और पूर्ण विश्वास रख कर राज्य और राजा की उन्नति के लिए रत्नावली के साथ उदयन का विवाह कराने का संकल्प कर लेता है। इस मनोरथ की पूर्ति के लिए वह राज्य में यह अफवाह फैला देता है कि उदयन की राजमहिषी वासवदत्ता जो अवन्ती देश के राजा प्रद्योत की कन्या थी, आग में जल कर मर गई है। इस अफवाह के फैल जाने के बाद सिंहलनरेश अपनी पुत्री रत्नावली को मन्त्री वसुमति तथा कंचुकी के साथ उदयन के निकट भेज देता है। किन्तु समुद्र यात्रा में अकस्मात् नौका के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से बाभ्रव्य, सिंहल के मन्त्री तथा रत्नावली सभी डूब जाते हैं। एक काष्ठफलक के हाथ लग जाने से रत्नावली दुर्घटना होने पर भी बच जाती है तथा उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण के समीप किसी सामुद्रिक व्यापारी के द्वारा लाई जाती है। सागर से मिलने के कारण यौगन्धरायण रत्नावली का नाम सागरिका रखकर उसे राजमहिषी वासवदत्ता के हाथों में दे देता है। वहां रत्नावली राजमहिषी की परिचारिका के रूप में दिन बिताने लगती है। परम सुन्दरी होने के कारण उसे महारानी वासवदत्ता महाराज उदयन से छिपाकर रखती है। अनन्तर उदयन की राजधानी कौशाम्बी में मदनोत्सव आरम्भ होता है। इसी सुहावने अवसर पर अचानक राजा उदयन और सागरिका का साक्षात्कार हो जाता है। दर्शनमात्र से ही

दोनों के हृदय में प्रेमांकुर प्रस्फुटित होते हैं और दोनों एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं।

द्वितीय अंक में सागरिका अपनी सखी सुसंगता के साथ कदलीगृह में बैठकर मनोविनोद के लिए राजा का चित्र अंकित करती है। विनोदवश सुसंगता राजा के चित्र के पार्श्व में सागरिका का चित्र बना देती है। वहीं दोनों में गुप्त प्रणय की भी कुछ चर्चा होती है। सागरिका विरह-दशा में जो कुछ विलाप-प्रलाप करती है, वहीं पर पिंजड़े में बन्द मेधाविनी नाम की सारिका सब ज्यों का त्यों सुनकर याद कर लेती है। इसी बीच अश्वशाला से एक बन्दर के बन्धन तोड़ कर भागने से चारों ओर कोलाहल मच जाता है। दोनों सखियाँ भयभीत होकर वहां से भाग जाती हैं और बन्दर आकर सारिका का पिंजड़ा खोल देता है। फलस्वरूप मेधाविनी सारिका उड़ जाती है और दोनों की बातें राजा के समक्ष दुहरा देती है। राजा सारिका के माध्यम से दोनों सखियों का आलाप यथावत् सुन लेते हैं। सागरिका और सुसंगता के वहां से जाते समय शीघ्रता के कारण चित्रफलक वहीं छूट गया है। राजा की दृष्टि उस पर पड़ती है और सब बातें समझ में आ जाती हैं। विदूषक और राजा चित्रपट के विषय में बातें कर ही रहे हैं कि तब तक उसे लेने के बहाने दोनों सखियां वहां पुन आ जाती हैं। सुसंगता राजा को सागरिका से मिलाकर स्वयं वहां से चली जाती है। इसी बीच वासवदत्ता राजा उदयन को ढूंढती हुई वहां पहुंच जाती है और उन दोनों को उसी रूप में देख लेती है और साथ ही चित्रफलक पर भी उसकी दृष्टि पड़ जाती है। वह क्रोधित होकर बिगड़ती हुई वहां से लौट पड़ती है।

इधर दोनों का प्रेम भीतर ही भीतर गाढ़ा होने लगता है। राजा सदा इसी चिन्ता में रहने लगता है कि कब तथा किस प्रकार सागरिका से मिल सके। राजा को चिन्तित और दुःखित अवस्था में देखकर विदूषक और सुसंगता उसे सागरिका से मिलाने का एक उपाय ढूंढ लेती हैं। सागरिका वासवदत्ता का और सुसंगता कांचनमाला का छद्मवेश धारण कर राजा से पूर्व निश्चय के अनुसार मिलने आती हैं। किन्तु दुर्भाग्य से असली वासवदत्ता को इन सब बातों की जानकारी हो जाती है और पहले ही वहां आ पहुंचती है और इस प्रकार सारी योजना विफल हो जाती है। असली-नकली का भेद खुल जाता है। अपमानित तथा लज्जित होकर सागरिका लतापाश के द्वारा आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो जाती है; किन्तु राजा उसे बचा लेते हैं। वासवदत्ता अन्त में कोई उपाय न देख कर सागरिका को अन्तःपुर में बन्दी बना लेती है और लोगों में यह बात फैला देती है कि सागरिका को महारानी ने उज्जयिनी भेज दिया है।

इस समाचार से उदयन बहुत दुःखित हो उठता है। उसका विरह-सन्ताप अत्यन्त बढ़ जाता है। इसी समय प्रधान सेनापति रूमण्वान् का भागिनेय विजयवर्मा आकर कोसल-विजय का शुभ समाचार देता है। यह सब देखकर यौगन्धरायण इस आशा से मन ही मन प्रसन्न हो उठता है कि अब मेरी योजना निश्चय ही सफल होने जा रही है। वह दरबार में एक ऐन्द्रजालिक को बुलाता है और सभा में खेल दिखाने की अनुमति राजा से लेता है। ऐन्द्रजालिक खेल दिखाना आरम्भ करता है। इसी बीच अन्तःपुर में आग की लपटें दिखाई देने लगती हैं। वासवदत्ता इस आशंका से भयभीत हो उठती है कि अन्तःपुर में बँधी हुई सागरिका भाग नहीं सकेगी और आग में जल जायगी। अतः अपनी निर्दयता पर पश्चात्ताप करती हुई उसका उद्धार करने के लिए वह महाराज से प्रार्थना करती है। राजा तत्क्षण आग में कूदकर उसे बचा लेते हैं। सागरिका वहां से बचाकर सभा में लाई जाती है। इसी समय सिंहलनरेश अर्थात् सागरिका के पिता के मन्त्री वसुमति तथा कंचुकी बाभ्रव्य सभा में प्रवेश करते हैं और सागरिका को पहचान कर उसका वास्तविक परिचय सभी को देते हैं। अन्त में यौगन्धरायण वहां आकर अपने षड्यन्त्र का रहस्य खोल देता है और राजा से क्षमा याचना करता है। वासवदत्ता भी अपनी भगिनी का परिचय पाते ही उसे गले से लगा लेती है और राजा से उसका विवाह करा देती है। अन्तःपुर की चिरपरिचित वही पुरातन प्रणय कहानी ही रत्नावली और प्रियदर्शिका इन दो नाटिकाओं की कथावस्तु बनी है, फिर भी दोनों ही सामाजिकों के लिए चित्ताकर्षक हैं। नाटकीय फलक पर विभिन्न घटनाओं एवं प्रसंगों का समावेश करते समय भास और कालिदास दोनों ने ही राजकीय अन्तःपुर की प्रणय-कथा को महत्त्व दिया है और अपनी-अपनी रचनाओं में इसको स्थान भी दिया है; किन्तु यथार्थ में हर्ष ही ऐसे प्रथम नाट्यकार हैं जिन्होंने अन्तःपुर की प्रणय-कथा को प्रमुख इतिवृत्त बनाकर उक्त दो नाटिकाओं की रचना की है। हर्ष की इन रचनाओं के प्रति रसज्ञ सामाजिक ही आकर्षित नहीं है अपितु धनंजय और धनिक जैसे आलंकारिकों ने भी रूपक साहित्य में नाटिका के महत्त्व को स्वीकारते हुए इसके लक्षण तथा कथावस्तु आदि पर जमकर विचार किया है। रसिकों एवं आलंकारिकों को समानरूप से आकर्षित करने वाली रचनाओं में हर्ष की रत्नावली सबसे आगे बढ़ी हुई है। धनंजय ने अपने दशरूपक में रत्नावली से जितने उद्धरण दिये हैं, उतने किसी एक ही ग्रन्थ से किसी दूसरे आलंकारिक ने अबतक नहीं दिये हैं। आलंकारिक विश्वनाथ ने भी नाटिका के लक्षण-निरूपण के पश्चात् रत्नावली का नामोल्लेख किया है तथा सन्धियों एवं उनके अंगों के

उदाहरणों के लिए रत्नावली से ही पद्यों को उद्धृत किया है। इस प्रकार हर्ष की इस रचना की लोकप्रियता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

सप्तम शताब्दी अर्थात् हर्ष के युग तक नाट्यकार भरत के नाट्यशास्त्रीय नियमों की ओर अधिक आकर्षित होने लगे थे। यद्यपि संस्कृत नाट्यपरम्परा का अब तक विकास हो चुका था किन्तु भरत के शास्त्रीय संविधानों का पूरा पालन नहीं होता था। हर्ष की रत्नावली ही सर्वप्रथम सफल नाटिका है जिस में शास्त्रीयता का पूरी तरह पालन किया गया है। साथ ही रंगमंच पर अभिनीत होने योग्य सभी विशेषताएँ इसमें पाई जाती हैं। अतः हर्ष को एक क्षमता-सम्पन्न सफल नाट्यकार कहना कोई अत्युक्ति नहीं है।

सप्तम शताब्दी के नाट्यकार श्रीहर्ष के पश्चात् नाटिका की रचना में अन्तराल आ गया। दशम शताब्दी में जाकर उल्लेखनीय नाटिकाकार राजशेखर का नाम आता है। इनके द्वारा रचित नाटिका विद्धशालभंजिका नाम से विख्यात है। राजशेखर का नाम संस्कृत साहित्य में बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। राजशेखर महाराष्ट्र की यायावर नामक क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुए। उनके पिता का नाम दुर्दक और माता का शीलवती था। राजशेखर महाराष्ट्र चूड़ामणि अकालजलद के पौत्र थे। उनके वंश में सुरानन्द, तरल और कबिराज जैसे यशस्वी कवि हुए। उनका विवाह चाह्वान (चौहान) कुल की अवन्तिसुन्दरी नामक एक सुशिक्षिता महिला के साथ हुआ था। धन और यश अर्जित करने के लिये वे कन्नौज चले गये। उन्हें अपनी विद्वत्ता का बड़ा गर्व था तथा अपने को बाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ तथा भवभूति का अवतार बताया है।[११] उन्होंने चार रूपकों कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण और बालभारत की रचना की। इनमें विद्धशालभंजिका नाटिका है और कर्पूरमंजरी चार अंकों में रचित एक सट्टक है। कुछ विद्वानों ने इसे नाटिका का भेद माना है, क्योंकि इसके सभी अभिलक्षण प्रायेण नाटिका के समान ही होते हैं; भिन्नता केवल इतनी ही है कि सट्टक में प्राकृत भाषा का प्रयोग होता है, प्रवेशक, विष्कम्भक का अभाव और अद्भुत रस का प्राधान्य रहता है तथा इसमें अंकों को जवनिका कहा जाता है।

---

११. राजशेखर, बालरामायण,

बभूव वल्मीकभवः कविःपुरा ततःप्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥१.१६

राजशेखर ने स्वयं अपनी कर्पूरमंजरी के प्रारम्भ में सट्टक की चर्चा की है।[१२] वस्तुतः कर्पूरमंजरी चार जवनिकान्तरों में लिखित एक नाटिका ही है। केवल प्राकृत भाषा में निबद्ध होने के कारण इसे सट्टक कहा जाता है।

विश्वनाथ ने सट्टक की परिभाषा देते हुए कहा है कि सट्टक वह उपरूपक है जिसकी रचना, आरम्भ से अन्त तक प्राकृत भाषा में की जाती है। इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक इन दोनों में से किसी की भी आवश्यकता नहीं हुआ करती। इसका प्रधान रस 'अद्भुत' होता है। इसके अंकों का नाम जवनिका होता है। अन्य सभी विशेषताएं नाटिका की तरह ही होती हैं।[१३] राजशेखर की कर्पूरमंजरी उक्त अभिलक्षणों के सर्वांशत अनुपालन के कारण नाटिका न रहकर सट्टक कोटि में आ गयी है। यह शौरसेनी प्राकृत में लिखी गयी है। प्राकृत भाषा में इसकी रचना कर राजशेखर ने एक अभिनव प्रयोग किया है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में यही एकमात्र ऐसी नाट्यकृति है जो आद्योपान्त प्राकृत भाषा में निबद्ध है। यहाँ तक कि भरत के नाट्यशास्त्र में और राजशेखर से पूर्व लिखे गये काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में भी पूर्णतया प्राकृत में रचित किसी अन्य कृति का उल्लेख नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में किसी रूपक के पूर्णतया प्राकृत में ही लिखे जाने का कहीं समर्थन भी परिलक्षित नहीं होता। राजशेखर के परवर्त्ती धनंजय के दशरूपक में भी सट्टक या ऐसे किसी प्राकृत भाषा में लिखे जाने वाले रूपक-भेद का उल्लेख नहीं मिलता है। प्राकृत भाषा में निबद्ध कर्पूरमंजरी राजशेखर की प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है। कहा जाता है कि राजशेखर ने अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दरी के आग्रह पर इस सट्टक की रचना की थी।

कर्पूरमंजरी की प्रथम जवनिका में प्रस्तावना के बाद राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, विदूषक और प्रधान परिचारिका विचक्षणा का प्रवेश वसन्तोत्सव के आयोजन के क्रम में होता है। वसन्त ऋतु के वर्णन को लेकर विदूषक और विचक्षणा में विवाद हो जाता है। फलस्वरूप विदूषक रुष्ट होकर वहाँ से चला जाता है और पुनः भैरवानन्द नामक एक सिद्ध योगी को साथ लेकर वह लौटता है। राजा और रानी के आग्रह से भैरवानन्द सभा में अपने यौगिक चमत्कारों को प्रदर्शित करता है। प्रदर्शन के समय विदूषक के परामर्श से विदर्भ नगर की अनुपम सुन्दरी राजकुमारी

१२. राजशेखर, कर्पूरमंजरी,

स सट्टओत्ति भणइ दूरं जो णाडिआइं अनुहरइ।
किं उण एत्थ पवेसअविक्खं भाईं ण केवलं होंति। १/६

१३. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/२७६

कर्पूरमंजरी को भैरवानन्द अपनी योगशक्ति से सबके सामने प्रकट करता है। शशिप्रभा और वल्लभराज की पुत्री यह राजकुमारी कर्पूरमंजरी रानी विभ्रमलेखा की मौसेरी बहन है उसे देखकर रानी बहुत प्रसन्न होती है और राजा उसके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर उसपर आसक्त हो जाते हैं। रानी भैरवानन्द के सामने अपनी यह इच्छा व्यक्त करती है कि कर्पूरमंजरी को कुछ दिनों के लिये उसी के पास रहने दें। भैरवानन्द इस बात से सहमत हो जाता है। द्वितीय जवनिका के आरम्भ में ही ज्ञात हो जाता है कि राजा और कर्पूरमंजरी दोनों एक दूसरे पर आसक्त हैं। राजा कर्पूरमंजरी की स्मृति में विह्वल हैं और उसके सौन्दर्य की बार-बार प्रशंसा करते हैं। इधर कर्पूरमंजरी भी राजा पर मुग्ध हो उठी है। दासी विचक्षणा राजा को कर्पूरमंजरी द्वारा केतकी के पल्लव पर लिखित एक पत्र को देकर कर्पूरमंजरी की वियोगदशा का वर्णन करती है और विदूषक भी विचक्षणा के सामने कर्पूरमंजरी के वियोग में राजा की दीन अवस्था का वर्णन करता है। राजा को कर्पूरमंजरी के सौन्दर्य का विस्तृत विवरण विदूषक और विचक्षणा से प्राप्त हो जाता है।

इसके बाद हिन्दोलन चतुर्थी के अवसर पर राजा और विदूषक दोनों कदलीगृह में जाते हैं और कर्पूरमंजरी को झूले पर झूलती हुई देखते हैं। देखते ही एकाएक कर्पूरमंजरी लजाकर वहां से चली जाती है। लेकिन विदूषक राजा को कर्पूरमंजरी को दिखलाने के प्रयास में लगा रहता है। कर्पूरमंजरी को छिपकर दिखलाने के लिए विदूषक राजा को साथ में लेकर मरकतकुंज में आता है। राजा तमालवृक्ष की आड़ में छिपकर देखता है कि कर्पूरमंजरी दोहद-पूर्ति में तत्पर है। विचक्षणा के कथनानुसार महारानी द्वारा लगाये हुए तीन वृक्षों की—कुरवक को आलिंगन कर तिलक को कटाक्षपात और अशोक वृक्ष को पादाघात द्वारा—दोहद-पूर्ति करती है। इस दृश्य को राजा और विदूषक बड़े कौतूहल से देखते हैं। सन्ध्याकाल हो जाने पर सभी वहां से चले जाते हैं।

तृतीय जवनिका में रंगमंच पर राजा और विदूषक आते हैं। दोनों एक दूसरे को अपने-अपने स्वप्न का वृत्तान्त सुनाते हैं। राजा को स्वप्न में कर्पूरमंजरी अपनी शय्या पर दिखाई पड़ी थी; किन्तु ज्यों ही वह उसका आंचल पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाता है, वह हाथ छुड़ाकर भाग जाती है और राजा की नींद खुल जाती है। यह सुनते ही विदूषक अपना विचित्र स्वप्न सुनाने लगता है कि वह गंगाजी की धारा में सो गया है और मेघों ने जल के साथ उसे पी लिया है। फिर मेघ के अन्दर छिपा हुआ वह ताम्रपर्णी नदी से मिले हुए समुद्र में गिरता है। मेघ से बरसती बड़ी-बड़ी बूंदों के साथ समुद्र

के सीपी उसे पी लेते हैं। वहां वह अगली मोती बनकर सीपियों के भीतर ही बन्द रहता है। समय आने पर सीपियों से मोती निकाले जाते हैं। एक सेठ उन मोतियों को मोल लेता है और उनमें छेद करवाता है इससे उसे कुछ पीड़ा होती है। उसके बाद सेठ उन मोतियों का हार बनाकर पांचाल देश के राजा के हाथ बेच देता है। राजा उस हार को अपनी रानी के गले में पहनाता है और जब राजा और रानी दोनों आलिंगन में आबद्ध होते हैं तो दोनों के बीच दब जाने से उसकी नींद खुल जाती है। इसके अनन्तर राजा और विदूषक के बीच प्रेम, सौन्दर्य और यौवन सम्बन्धी बातें होने लगती हैं। इसी समय कुरंगिका के साथ विरह-विदग्धा कर्पूरमंजरी भी उधर ही आती है। कर्पूरमंजरी और राजा एक दूसरे को देखकर स्तब्ध रह जाते हैं। संयोग से दीपक बुझ जाता है। सभी परिजन उन्हें एकान्त में छोड़ कर सुरंग की राह बाहर चले जाते हैं। इस अवसर पर राजा और कर्पूरमंजरी अपना प्रेम निवेदन करने लगते हैं। उधर रानी को कर्पूरमञ्जरी के साथ राजा के मिलने के वृत्तान्त का पता चल जाता है। अतः कर्पूरमंजरी डर जाती है और सुरंग के ही रास्ते अपने रक्षागृह में चली जाती है।

चतुर्थ एवं अन्तिम जवनिका के प्रारम्भ में राजा की कामातुर अवस्था का वर्णन है। इधर रानी विभ्रमलेखा कर्पूरमंजरी पर कठोर पहरा लगा चुकी है। राजा और विदूषक ग्रीष्म की प्रखरता का वर्णन कर रहे हैं। इसी बीच रानी की ओर से सारंगिका महाराज को वटसावित्री उत्सव देखने के लिए आमंत्रित करती है। विदूषक और राजा वहां जाते हैं। वहीं पर रानी के आदेशानुसार सारंगिका एक पत्र लेकर राजा के पास आती है। उसमें लिखा है कि आज सायं राजा का विवाह होगा। आश्चर्यचकित होकर राजा सारंगिका से सारी कथा विस्तारपूर्वक पूछते हैं और सारंगिका भी राजा को सारा वृत्तान्त सुनाती है। महारानी गौरी की प्रतिमा बनाकर उसमें भैरवानन्द से प्राण प्रतिष्ठा करवाती है और स्वयं दीक्षा भी ले लेती है। गुरु-दक्षिणा के लिये रानी जब भैरवानन्द से आग्रह करती है तो योगीश्वर दूसरी ही वस्तु की इच्छा प्रकट करते हैं। दक्षिणा के रूप में योगीश्वर लाट देश के राजा चण्डसेन की कन्या घनसारमंजरी से राजा के विवाह की याचना महारानी से करते हैं। दैवज्ञों के अनुसार उस कन्यारत्न से विवाह करने वाले व्यक्ति को चक्रवर्त्ती सम्राट् होना है। महारानी की दृष्टि में वह घनसारमंजरी कोई दूसरी ही राजकुमारी है और इसलिए वह अविलम्ब राजी हो जाती है और दोनों का विवाह भी सम्पन्न हो जाता है। विवाह होने के पश्चात् रानी को मालूम होता है कि यह घनसारमंजरी कर्पूरमंजरी ही है।

प्रस्तुत सट्टक प्राकृत में लिखा गया है : गद्यभाग शौरसेनी में तथा पद्यभाग महाराष्ट्री में। कर्पूरमंजरी को केवल प्राकृत में लिखना एक नवीन चमत्कार के सिवा और कुछ भी नहीं है। यह सच है कि राजशेखर उच्चकोटि के पण्डित तथा बहुज्ञ थे। उन्होंने स्वयं ही अपने को 'सर्वभाषाविचक्षण:'[१४] तथा 'सव्वभाषाचउर'[१५] कहा है। कर्पूरमंजरी के अतिरिक्त उन्होंने एक और सुन्दर नाटिका की रचना की है जो विद्धशालभंजिका के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यह नाटिका मालविकाग्निमित्र, रत्नावली और स्वप्नवासवदत्त के अनुकरण पर लिखी गई है। इसमें विद्याधरमल्ल नामक राजकुमार और मृगांकावली तथा कुवलयमाला नामक दो राजकुमारियों की प्रणयकथा वर्णित है। इसका कथानक अत्यन्त रोचक है। लाट प्रदेश के राजा चन्द्रवर्मा के यहां एक पुत्रीरत्न का जन्म होता है। राजा पुत्र के नहीं होने के कारण बहुत दुखी है। अत: राजा के दूतों ने मन्त्री को पुत्र के ही उत्पन्न होने की सूचना दी है। इधर राजा विद्याधरमल्ल के मन्त्री भागुरायण को इस तथ्य की जानकारी है। वह पुत्री मृगांकावली को मृगांकवर्मन् नामक बालक के वेष में राजा विद्याधरमल्ल की रानी के पास भिजवा देता है। एक दिन राजा विद्याधरमल्ल अपने परम सखा विदूषक से रात में देखे हुए स्वप्न की चर्चा करता है कि आज प्रातःकाल उसने एक सुन्दरी बाला को स्वप्न में देखा है, किन्तु जब वह उसे पकड़ना चाहता है तो वह वहां से अपनी मोतियों की माला छोड़कर भाग जाती है। इधर राजा के कल्याणकामी मन्त्री भागुरायण को ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के अनुसार यह मालूम है कि पुत्रवेशधारी मृगांकवर्मन् (मृगांकावली) के साथ जिसका विवाह होगा वह चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा। अत: मन्त्री भागुरायण की इच्छा है कि किसी प्रकार से मृगांकवर्मन् से राजा का विवाह सम्पन्न हो जाय और इसी प्रयत्न में वह व्यस्त रहने लगता है। इधर संयोगवश राजा चित्रशाला में अपनी स्वप्नदृष्ट प्रेयसी की विद्धशालभंजिका (खुदी हुई मूर्त्ति) देखकर उसके गले में मोतियों का हार डाल देता है।

द्वितीय अंक का आरम्भ दो दासियों—कुरंगिका और तरंगिका के वार्त्तालाप से होता है और इन्हीं लोगों की बातों से पता चलता है कि कुन्तल देश में चण्डमहासेन नामक राजा है। वह राज्यभ्रष्ट होकर वहां आया है। उसकी कन्या कुवलयमाला नर्मदा में स्नान करके निकली ही थी कि महाराज ने उसे

१४. राजशेखर, बालरामायण, १/१०

१५. राजशेखर, कर्पूरमंजरी, पृ० ८ (जव०-१)

देख लिया और वह उनके हृदय में घर कर गई है। इधर महारानी अपनी सपत्नी के आने की आशंका से उस कुवलयमाला को अपने मामा के पुत्र मृगांकवर्मन् के लिए चाहती है। यहां तक कि विवाह उपकरण प्रस्तुत करने के निमित्त इन्हीं दोनों दासियों को नियुक्त भी कर देती है। इधर इसी बीच एक दिन राजा विद्याधर विदूषक के साथ उद्यान में मृगांकवर्मन् को उसके वास्तविक रूप में कन्दुकक्रीडा में रत तथा प्रणयलेख पढ़ते हुए देखते हैं और उसके अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं।

तृतीय अंक में मन्त्री भागुरायण का प्रयास कुछ अंश में सफल दीख पड़ता है। वह विचक्षणा और सुलक्षणा के सहयोग से राजा विद्याधर से मृगांकावली को मिलाता है। विचक्षणा और सुलक्षणा दोनों दासियों को भी मन्त्री भागुरायण से यह ज्ञात हो जाता है कि मृगांकवर्मन् वास्तव में बालिका है जिसका नाम मृगांकावली है। प्रस्तुत अंक में नायक-नायिका का मिलन होता है, प्रेम की बातें होती हैं और वे एक दूसरे पर अतिशय आसक्त हो जाते हैं। महारानी को अभी तक मृगांकवर्मन् के वास्तविक रूप का पता नहीं है।

चतुर्थ अंक में महारानी अपने प्रेम का प्रतिद्वन्द्वी समझकर ईर्ष्यावश तथा हँसी करने के उद्देश्य से मृगांकवर्मन् को बालक ही जान कर उसे स्त्री वेश में लाकर राजा के साथ विवाह करा देती है। फल यह होता है कि राजा की कामना पूरी हो जाती है और रानी स्वयं ही छली जाती है। रानी को बड़ा आघात लगता है। उधर राजा चन्द्रवर्मा का प्रधान दूत आकर सूचित करता है कि मेरे राजा ने पुत्रहीन होने के कारण मृगांकावली को पुत्र उद्घोषित किया था। अब चूंकि उन्हें पुत्र की प्राप्ति हो गयी है, अतः वे अपनी पुत्रवेषधारी कन्या का विवाह राजा के साथ करा देना चाहते हैं। रानी ने उसका विवाह तो परिहास से पहले ही करा दिया था। अतः विवश होकर अन्त में कुवलयमाला का भी विवाह राजा विद्याधर से कराना पड़ता है। संक्षेप में यही विद्धशालभंजिका नाटिका की कथावस्तु है।

राजशेखर की नाटिकाओं के बाद काल-क्रमानुसार 'कर्णसुन्दरी' नाटिका उपलब्ध होती है जो महाकवि विल्हण की रचना है। उनके अन्य दो ग्रन्थ चौरपंचाशिका तथा विक्रमांकदेवचरित हैं। किन्तु ये दोनों नाटिका नहीं हैं। विल्हण कवि का स्थितिकाल एकादश शताब्दी के लगभग माना जाता है। उनका जन्म कश्मीर की तत्कालीन राजधानी प्रवर के पास खोनमुख ग्राम में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। विल्हण के पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागादेवी था। विक्रमादित्य षष्ठ ने उन्हें अपना सभापण्डित बनाकर 'विद्यापति' की

उपाधि से विभूषित किया था। कर्णसुन्दरी नाटिका की रचना अणहिलवाड़ के राजा कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल के सम्मान में और उसकी वृद्धावस्था में कर्णाटराज जयकेशी की पुत्री मियाणल्लदेवी के साथ उसके विवाह का उत्सव मनाने के लिए की गयी थी।

कर्णसुन्दरी नाटिका के प्रथम अंक के आरम्भ में नाटकीय औपचारिकता के पश्चात् सूत्रधार चालुक्यवंशीय राजाओं में चन्द्रमा के समान शोभित होने वाले भीमदेवतनय कर्णराज का विवाह विद्याधरों के राजा की कन्या कर्णसुन्दरी के साथ होने की सूचना देता है। लीलोद्यान में राजा दूर से कर्णसुन्दरी को देख लेते हैं और इसका संकेत वे अपने विदूषक को देते हैं। कर्णसुन्दरी भी राजा को देखकर प्रेमाभिभूत हो जाती है। विदूषक यह सोचकर भयभीत हो उठता है कि यदि राजा के अन्य किसी युवती में प्रेमासक्त होने की सूचना महादेवी को मिल जायगी तो महारानी का कोपभाजन पहले विदूषक को ही बनना पड़ेगा। राजा तो किसी तरह महारानी को मना ही लेंगे, लेकिन वह अवश्य सोचेंगी कि इस प्रेम व्यापार में इस दुष्ट ब्राह्मण का पूरा हाथ होगा। इधर उस परम सुन्दरी के दर्शन से राजा व्याकुल हो उठते हैं और अपने मनोविनोद के लिए उपयुक्त स्थान में जाना चाहते हैं। विदूषक उन्हें मदनोद्यान में चलने का आग्रह इसलिए करता है कि कर्णसुन्दरी के दिखाई पड़ने की सम्भावना उसे वहां अधिक जान पड़ती है। उद्यान में पहुंचकर राजा तरंगशाला में कुछ देर बैठने के लिए विदूषक के साथ जाते हैं तथा वहां दीवाल पर अंकित उर्बशी आदि के चित्र से कुछ देर अपना मनोविनोद करते हैं। चित्र को देखने में निमग्न राजा को विदूषक परामर्श देता है कि वे शीघ्र ही तरंगशाला से दूर हट जायं नहीं तो महादेवी देख लेंगी। इतने में देवी हारलता के साथ उद्यान में प्रवेश करती है। महारानी राजा के द्वारा किये गये स्वप्नप्रलाप की चर्चा के कारण सन्देह करने लगती है कि कहीं महाराज की दृष्टि कर्णसुन्दरी पर न पड़ गई हो। इतने में हारलता की दृष्टि तरंगशाला में भित्तिपर अंकित चित्र के समक्ष भावविह्वल अवस्था में खड़े राजा पर पड़ती है। देवी छिपकर राजा के प्रलाप को सुनती है। महारानी को जिज्ञासा होती है कि ऐसे कातर वचन राजा किस के समक्ष बोल रहे हैं। हारलता बताती है कि देवी को ही चित्र में कुपित अवस्था में पाकर राजा मनुहार कर रहे हैं। महारानी हारलता को आश्वस्त करती हुई कहती है कि मेरे समक्ष अपराध करने पर भी राजा इस प्रकार प्रतिकूल प्रलाप नहीं कर सकते हैं। उधर रानी के मुख से ऐसा सुनकर विदूषक उसके पति-प्रेम की प्रशंसा करता है। इसी बीच महारानी की दृष्टि चित्र में अंकित कर्णसुन्दरी पर जा पड़ती है। उसे यह समझते देर नहीं लगती है कि राजा स्वयं कर्णसुन्दरी का चित्र बनाकर उसके समक्ष अपना अनुराग प्रकट कर रहे हैं। महारानी राजा के

समक्ष उपस्थित होकर राजा के मनोरंजन में विघ्न डालती हुई अपना क्रोध प्रकट करती है और वहां से लौट जाने को प्रस्तुत हो जाती है। देवी को कुपित जान कर राजा उसे मनाने के लिए विदूषक के साथ उसकी ओर बढ़ते हैं।

द्वितीय अंक का आरम्भ प्रातःकाल विदूषक के आगमन के साथ होता है। राजा के आदेशानुसार वह अन्तःपुर की किसी सेविका से यह जानने के लिए प्रयत्नशील है कि कर्णसुन्दरी राजा के प्रति अनुरक्त है अथवा नहीं। इतने में तरंगवती नाम की दासी से उसका साक्षात्कार होता है। दासी राजा के प्रेम में विह्वल कर्णसुन्दरी के लिए शीतोपचार लेकर जा रही है। विदूषक पर दृष्टि पड़ते ही वह उन्हें अपने आंचल से ढँक लेती है और उससे बचने के लिए रास्ता काटकर निकल जाना चाहती है। विदूषक के द्वारा मार्ग रोक लेने पर वह कार्यव्यस्त होने के व्याज से शीघ्र वहां से निकल जाना चाहती है। किन्तु विदूषक कच्चा खिलाड़ी तो है नहीं। विदूषक के दुराग्रह करने पर तरंगवती कर्णसुन्दरी की दशा से उसे अवगत कराती है। साथ ही इसे गुप्त रखने की प्रार्थना भी करती है। विदूषक प्रसन्न होकर राजा के पास लौट पड़ता है। विदूषक के मुख से अपने प्रति कर्णसुन्दरी के प्रेम को जानकर राजा को विश्वास नहीं होता है। फिर भी यह समाचार जानकर राजा प्रसन्न हो जाते हैं। विदूषक यह जानना चाहता है कि राजा ऐसे प्रेम-व्यापार के लिए क्यों पागल हो रहे हैं जबकि ऐसा करने के पश्चात् राजा को रात-रात भर महादेवी के चरणों में गिड़गिड़ाना पड़ता है ? राजा विदूषक को यह कहकर समझाना चाहते हैं कि प्रख्यात कुल में उत्पन्न तथा अपने प्रति प्रेमासक्त देवी से विमुख होने में वे (राजा) सर्वथा असमर्थ हैं। दूसरी ओर उस अपूर्व सुन्दरी कर्णसुन्दरी के बिना भी रहना उनके लिये असम्भव है। विदूषक राजा से यह आदेश चाहता है कि वह उनके प्रेम जनित इस दुःख को देवी से स्पष्ट कहकर उनके हृदय में उनके प्रति करुणा उत्पन्न करे। राजा विदूषक को ऐसा करने से रोकते हैं। इसके बाद विदूषक राजा से उसी तरंगशाला में चलने का आग्रह करता है, जहाँ कर्णसुन्दरी के चित्र से राजा का मनोरंजन हो सकेगा। वहाँ पहुंचकर राजा यह देखकर दुःखी होते हैं कि भित्तिचित्र धो-पोंछकर नष्ट कर दिया गया है। देवी की इस क्रूरता से राजा दुःखी हो उठते हैं। विदूषक के आग्रह करने पर दुःखी राजा लीलोद्यान में चले जाते हैं कि कदाचित् फूल चुनने के निमित्त या लताओं को सींचने के लिए अथवा सरोवर में स्नान करने के उद्देश्य से आई हुई कर्णसुन्दरी के दर्शन हो जायं। राजा अपने भाग्य को कोसते हुए विदूषक का कहना मानकर वैसा ही करते हैं। राजा और विदूषक दोनों की दृष्टि सरोवर में जलक्रीड़ा करती हुई कर्णसुन्दरी पर जा टिकती है। इतने में

सरोवर से निकल कर्णसुन्दरी अपनी सखी के साथ कुंजवन में प्रवेश करती है। राजा दूर से ही कर्णसुन्दरी की विरह-खिन्न अवस्था को जान लेते हैं। राजा कर्णसुन्दरी का आलाप सुनने के लिए लता की ओट में छिप जाते हैं। सखी के साथ कर्णसुन्दरी का आलाप सुनकर राजा इतना समझ जाते हैं कि वह भी इनमें आसक्त है। अवसर देखकर राजा कर्णसुन्दरी के पास पहुंच जाते हैं और उसे मोहग्रस्त अवस्था में पाते हैं। सखी राजा का स्वागत करती है और राजा से निवेदन करती है कि वे अपने हाथों से कर्णसुन्दरी का स्पर्श करें जिससे वह होश में आ जाय । राजा वैसा ही करते हैं। नायिका सचमुच कुछ होश में आती है। सखी उसे बलपूर्वक राजा के निकट ले आती है। राजा नायिका का आलिंगन करना ही चाहते हैं कि विदूषक देवी के वहां आ जाने की सूचना देता है। दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। नायिका सखी के साथ वहां से चल देती है। महारानी हारलता के साथ वहां पहुंचती है और राजा को वहां देख कर उसे आश्चर्य होता है। रानी समझती है कि राजा कार्य के अभाव में वाटिका में मनोरंजन के लिए आये हैं। भेद खुल जाने के भय से त्रस्त राजा को विदूषक आश्वस्त कर देता है और दोनों वहां से चल देते हैं।

तृतीय अंक के प्रवेशक में बकुलावली और मन्दोदरी नामकी दो सखियों के वार्त्तालाप से यह ज्ञात होता है कि महारानी ने राजा और कर्णसुन्दरी के प्रेम-व्यापार को जान लिया है और महारानी की ओर से इन दोनों सखियों को आदेश मिला है कि इनमें से एक कर्णसुन्दरी बनकर और दूसरी उसकी सखी बनकर राजा को मदनोद्यान में धोखा दे। अभी दोनों सखियां इसी की तैयारी में लगी हुई हैं।

तृतीय अंक के आरम्भ में उद्यान में राजा कर्णसुन्दरी के प्रेम में निमग्न दिखलाई पड़ते हैं। विदूषक वहां पहुंचकर राजा के कानों में कुछ कहता है और साथ ही हाथों में प्रेम-पत्र दे देता है। राजा प्रेमपत्र को पढ़ते हैं। विदूषक उनसे संकेत स्थान पर जाने का आग्रह करता है। राजा वहां पहुंच कर स्थान की रमणीयता का वर्णन करते हैं। इसके बाद महारानी कर्णसुन्दरी के वेश में तथा हारलता बकुलावली के वेश में वहां पहुंचती हैं। राजा भ्रमवश महारानी को कर्णसुन्दरी समझ कर प्रेमालाप आरम्भ कर देते हैं। भेद खुल जाने के भय से महारानी अपना मुख दूसरी ओर फेर लेती है। राजा बकुलावली को उपालम्भ देते हैं कि तुम्हारी सखी मुझे दर्शन देने से भी क्यों कतराती है? हारलता राजा को समझाती है कि अधिक स्नेह में प्रेमिका का

ऐसा ही आचरण हुआ करता है। इसके बाद राजा अधीर होकर जैसे ही प्रेमिका का आलिंगन करते हैं महारानी हंसकर उनका स्वागत करती है। राजा लज्जित हो जाते हैं। राजा देवी को खुश करने के लिए उनके पैरों पर गिरना चाहते हैं। किन्तु देवी हारलता के साथ शीघ्रता से निकल भागती है। विदूषक का परामर्श मानकर राजा महारानी का अनुसरण करते हैं।

चतुर्थ अंक में विदूषक अमात्य से उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करता है; क्योंकि उसने कर्णसुन्दरी और महारानी की बहन के लड़के को जो कर्णसुन्दरी की उम्र का है, अपने यहां रख लिया है। अन्ततः कर्णसुन्दरी के साथ विवाह हो जाने पर राजा शीघ्र ही चक्रवर्त्तित्व प्राप्त कर लेंगे। विदूषक को दुःख है कि उसकी गलती के कारण आर्यपुत्र को कर्णसुन्दरी के समान आकृतिवाले रानी के भगिनीपुत्र के साथ विवाह के लिए प्रस्तुत होना पड़ा और इस प्रकार उपहास का पात्र बनना पड़ा है। वह राजा से कहता है कि चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। देवी द्वारा किये गये परिहास का आयोजन राजा के लिये अनुकूल ही होगा। इतने में स्वामी की जय मनाती हुई एक दासी महारानी द्वारा भेजे गये अलंकार आदि वैवाहिक उपकरण लाकर राजा के समक्ष रख देती है। वह इन्हें धारण करने का रानी की ओर से आग्रह करती है। राजा उन्हें धारण कर लेते हैं। राजा पुनः अपने गले से मोती की माला निकाल कर दासी को देते हैं और उसके द्वारा रानी के पास यह संवाद भेज देते हैं कि मैं प्रस्तुत हूं। दासी के चले जाने पर अपना सब आभरण विदूषक को दे डालते हैं। विदूषक राजा को सलाह देता है कि महारानी जिस प्रकार विवाह का आयोजन करें, आप उसी तरह उसे स्वीकार कर लें। नेपथ्य में मंगलवाद्य सुनकर विदूषक कहता है निश्चय ही रानी ठगी गई है, इसलिए हम लोग शीघ्रता करें। इतने में महारानी हारलता के साथ वहाँ उपस्थित होती है। महारानी हाथ जोड़कर राजा से कहती है कि अभी तक मैंने जो कुछ भी आपके प्रतिकूल व्यवहार किया है, उसके दण्डस्वरूप मैं आपको कर्णसुन्दरी समर्पित करती हूं।

इतने में प्रतिहारी आकर अमात्य के आने की सूचना देती है और राजा के आदेश से अमात्य उपयुक्त स्थान पर विराजमान हो जाते हैं। देवी एक चेटी से कर्णसुन्दरी को लाने के लिए कहती है ताकि अमात्य के समक्ष ही उसे (कर्णसुन्दरी को) राजा को सौंप कर वह अपने किये का मार्जन कर सके। कर्णसुन्दरी वहां लायी जाती है और राजा के द्वारा उसका पाणिग्रहण कराया जाता है। देवी अमात्य को धन्यवाद देती है। ठीक उसी समय सेनापति वीरसिंह राजा

के समक्ष उपस्थित होकर गर्जन नगर पर विजय प्राप्त करने की शुभ सूचना देता है और राजा के द्वारा पुरस्कृत किया जाता है।

कर्णसुन्दरी के परवर्ती काल की रचना कवि रुद्रचन्द्रदेव रचित 'उषारागोदया' नाटिका है। कवि रुद्रचन्द्रदेव का स्थितिकाल ११५० ई० से ११६५ ई० तक माना गया है। इनके पिता प्रोल द्वितीय थे। रुद्रदेव वारंगल के एकशिला नामक राज्य के शासक थे। ये स्वयं विद्वान् तो थे ही, विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। इनके राज्य-काल में संस्कृत साहित्य का बहुत प्रसार हुआ। रुद्रचन्द्रदेव की दो रचनाएं उपलब्ध होती हैं—ययातिचरित नाटक और उषारागोदया नाटिका। दोनों का कथानक श्रीमद्भागवत पुराण से लिया गया है। सम्राट् ययाति के चरित्र पर लिखा गया ययातिचरित नाटक है और दूसरी रचना उषारागोदया नाटिका कुमार अनिरुद्ध और वाणदुहिता उषा के प्रणय और परिणय पर लिखी गई है।

नाटिका के प्रथम अंक के आरम्भ में कृष्ण के सखा तथा अमात्य उद्धव शोणितपुर में श्रीकृष्ण और वाणासुर के युद्ध को लेकर चिन्तित दीख पड़ते हैं। उद्धव को यह पता चलता है कि आज नारद मुनि अन्तःपुर में आने वाले हैं। कुमार अनिरुद्ध तथा वाणदुहिता उषा का विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो जाय, इसलिए उद्धव स्वयं चिन्तित हैं।

कुमार अनिरुद्ध अपने मित्र गिरिवर के साथ जब आते दिखलाई पड़ते हैं तो उद्धव अपनी योजना को साकार करने के लिए दत्तमुनि के पास पहुंचते हैं और वसन्त ऋतु के असमय आगमन के लिए प्रार्थना करते हैं। गर्मी के कारण अनिरुद्ध व्याकुल दिखलाई पड़ते हैं और शान्ति के लिए गिरिवर के साथ रक्ताशोक मण्डप में जाते हैं। आकाश में बादलों को देखकर उषा की याद में वे खो जाते हैं। इसी समय महारानी रुक्मवती रूपलेखा नाम की दासी को कुमार के पास भेजकर हिन्दोलोत्सव में सम्मिलित होने का आमंत्रण भेजती हैं। अनिरुद्ध गिरिवर के साथ वहां पहुंचते हैं और स्वयं महारानी के साथ एक झूले में बैठ जाते हैं। कुमार आकाश में बादलों को देखते हैं और उदास होकर उत्सव बन्द कराने का आदेश देते हैं जिससे महारानी रूठकर अन्त.पुर की ओर चली जाती हैं।

उषा और अनिरुद्ध के विवाह के समाचार की जानकारी के लिए महारानी दासी रूपलेखा को भेजती है। सारे नगर में वसन्त के उत्सव की तैयारी हो रही है। महारानी के आदेश से रूपलेखा कुमार को प्रमद वन के वसन्तोत्सव में भाग लेने के लिए आमन्त्रित करती है। व्यथित मन से कुमार उत्सव में

सम्मिलित होते हैं। उसी समय कृष्ण का सारथी दारुक वहाँ पहुंच जाता है। दारुक श्रीकृष्ण की विजय का समाचार सुनाकर पारितोषिक पाता है और वहाँ से चल पड़ता है। इसके बाद युद्ध में श्रीकृष्ण की विजय का समाचार महारानी को सुनाने के लिए कुमार अनिरुद्ध विदूषक के साथ वहां से चल पड़ते हैं। नारद मुनि अपने दो शिष्यों को उषा के निर्विघ्न द्वारका पहुंचने का समाचार जानने के लिए भेजते हैं। उषा प्रमदोद्यान में पहुंच गई है यह पता दोनों शिष्य लगा लेते हैं और तभी पर्वत ऋषि से उनकी भेंट होती है। श्रीकृष्ण की इच्छानुसार उद्धव द्वारा प्रार्थना किए जाने पर मुनिदत्त अपने मन्त्र-प्रभाव से वसन्त ऋतु का आविर्भाव करते हैं। दोनों शिष्य पर्वत ऋषि के साथ नारद को यह समाचार सुनाने के लिए चल पड़ते हैं। उषा चित्रलेखा के साथ प्रमदोद्यान में आती है। उषा के मनोरंजन के लिए चित्रलेखा अनिरुद्ध का चित्रफलक उसे देती है। वह उस पर प्रणय-गाथा लिखते-लिखते व्याकुल हो उठती है। चित्रलेखा के शीतल उपचार करने पर भी उषा मूर्च्छित हो जाती है। उसी समय वाजिशाला में कोलाहल होने लगता है और सहसा उषा की मूर्च्छा भंग हो जाती है। चित्रलेखा उषा को लेकर तमालवृक्षों में छिप जाती है। इसी बीच मित्र गिरिवर के साथ कुमार अनिरुद्ध वहां आ जाते हैं और चित्रफलक तथा फूलों की सेज देख कर कुमार व्याकुल हो उठते हैं। उसी समय चित्रलेखा उषा को कुमार के सामने ले जाती है और दोनों का मिलन कराती है। इतने में कंचुकी महारानी का यह प्रस्ताव लेकर आता है कि उषा और अनिरुद्ध का शुभविवाह होने जा रहा है। चित्रलेखा उषा को लेकर अन्तःपुर में चली जाती है। रूपलेखा के आमन्त्रण पर कुमार विवाह मण्डप में पहुंचते हैं। उसी समय आकाशमार्ग से नारद पहुंचते हैं और रुक्मवती उनका स्वागत करती है। मुनि उसे पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं। इधर चित्रलेखा के साथ उषा भी विवाह मण्डप पर पहुंच जाती है। अन्ततः उषा और अनिरुद्ध का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

'पारिजातमंजरी' या 'विजयश्री' नाम की मात्र दो अंकों की एक अपूर्ण नाटिका है। इसकी रचना चार अंकों में हुई थी किन्तु उसके दो अंक ही प्रशस्ति के रूप में धारानगर में उपलब्ध हुए हैं। यह प्रशस्ति एक कृष्ण शिलाखण्ड पर खुदी हुई है। इस प्रशस्ति के लेखक गौड़देशीय गंगाधर के वंशज कोई मदन हैं। ये विद्वान् होने के साथ ही परमारवंशी राजा अर्जुनदेववर्मन् के राजगुरु भी हैं।

नाटिका के आरम्भ में ही गुर्ज्जरनरेश जयसिंह के साथ कथा के नायक अर्जुनदेववर्मन् का भयंकर युद्ध होता है और नायक की विजय होती है। बिजय की खुशी में देवतागण विजेता राजा के ऊपर आकाश से पुष्पवृष्टि करते हैं। उन्हीं फूलों में एक पारिजातमंजरी भी है जो विजयी राजा के वक्ष पर गिरती है

और गिरने के साथ ही एक अपूर्व सुन्दरी कन्या के रूप में परिवर्तित हो जाती है। उसी समय अर्जुनदेववर्मन् को यह आकाशवाणी सुनाई पड़ती है कि इस सुन्दरी को अपनाकर तुम भी अपने पूर्वज भोजदेव के समान धारानगर में राज्य करोगे। इसी उपलक्ष में राजधानी में वसन्तोत्सव मनाया जाता है और नगर के आबालवृद्ध उसमें भाग लेते हैं। राजा भी अपने राजमहल के सब से ऊपरी छज्जे से उत्सव का दृश्य देखते हैं। उनकी महारानी सर्वकला, विदूषक बिदग्ध और दासी कनकलेखा आदि भी वहां उपस्थित हैं। वसन्तोत्सव के प्रसंग को लेकर इस नाटिका के प्रथम अंक का नाम ही वसन्तोसव रखा गया है। दूसरे अंक का नाम है ताटंकदर्पण। इस अंक में माधवीलता और सहकार वृक्ष का विवाहोत्सव मनाती हुई महारानी के कार्य में सहायता पहुंचाने के लिए विदूषक के साथ राजा प्रमदोद्यान में पहुंचते हैं। इधर लता की ओट से नायिका पारिजातमंजरी और वसन्तलीला दोनों उत्सव को देखती हैं। वसन्तलीला पारिजातमंजरी के सामने से लता को थोड़ा सा हटाकर उसके मुख का बिम्ब महारानी के कर्णाभूषण पर प्रतिबिम्बित होने देती है। अपनी प्रेयसी की प्रतिफलित मुखच्छवि महारानी के कर्णाभूषण में देखकर राजा में उत्पन्न प्रतिक्रिया को लक्ष्य कर महारानी कोपवश वहां से चली जाती है। नायिका पारिजातमंजरी और वसन्तलीला भी वहां से हटकर प्रमदोद्यान के एक भाग में चली जाती हैं। महारानी के चले जाने पर विदूषक के साथ राजा भी वहां पहुंचते हैं। इधर दासी कनकलेखा महारानी का वही कर्णाभूषण हाथ में लेकर राजा के पास पहुंचती है और महारानी की ओर से उन्हें उपालम्भ सुनाती है। राजा पारिजातमंजरी को छिपाने का असफल प्रयास करते हैं। अन्त में महारानी को प्रसन्न करने के लिए नायिका को वहीं छोड़कर राजा अन्तःपुर की ओर चल देते हैं। नायिका दुःखी और निराश होकर वहां से चल पड़ती है और वसन्तलीला उसका पीछा करती है। दो अंकों की इस नाटिका का कथासूत्र यहीं तक बढ़ पाता है।

साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ की चन्द्रकला नाटिका त्रयोदश शताब्दी की कृति है। आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में चन्द्रकला नाटिका का अनेक बार उल्लेख किया है तथा उदाहरण के रूप में इस नाटिका के अनेक पद्य उद्धृत किये हैं।[१६] चन्द्रकला के अतिरिक्त कविराज विश्वनाथ की अन्य अनेक कृतियां रहीं होंगी जो आज उपलब्ध नहीं हैं, पर इनकी एक अप्रकाशित काव्यप्रकाश की टीका वर्त्तमान है। साहित्यदर्पण से पूर्व की रचनाओं में चन्द्रकला नाटिका प्रभावती परिणय (नाटिका) कुवलयाश्वचरित (प्राकृतकाव्य) प्रशस्तिरत्नावली (करम्भकषोडश-

---

१६. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, १/१६ ; **साहित्यदर्पण**, ६/२०१
विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, १/१४ ; **साहित्यदर्पण** ६/१८३

भाषामयी कृति), राघवविलास (महाकाव्य) तथा कंसवध (काव्य) हैं। इनकी इन छः रचनाओं का उल्लेख साहित्यदर्पण में पाया जाता है। विश्वनाथ के पिता का नाम चन्द्रशेखर था जो एक महाकवि और साहित्यशास्त्र के दिग्गज विद्वान् थे। ये उत्कलनरेश नरसिंहदेव की सभा में विद्यमान थे। इनका समय चतुर्दश शती है। चन्द्रकला नाटिका में विश्वनाथ ने चतुर्दशभाषाविलासिनीभुजंग महाकवि कहकर अपने को चौदह भाषाओं का ज्ञाता बतलाया है। इतना ही नहीं, अपने पिता के लिए इन्होंने 'विद्यामहोदधि राजहंस' विशेषण का प्रयोग किया है और उन्हें महापण्डित बतलाया है। इन्होंने अपने पूज्यपिता से ही समग्र-साहित्य विद्या का अध्ययन किया था।[१७]

चन्द्रकला नाटिका के आरम्भ में ही सूत्रधार सूचित करता है कि श्री निश्शंकभानुदेव अपने राजकीय परिजनों के साथ अभिनय देखने के लिए उपस्थित हैं। उसके बाद नटी एक गाथा पढ़ती है जिसका भाव है कि एक ही भ्रमर पूर्व आस्वादित कुन्दलता और नूतन आम्रमंजरी दोनों का रस ग्रहण करता है। सूत्रधार इस कथन का समर्थन कर ही रहा है कि महामंत्री सुबुद्धि वहां उपस्थित हो जाता है। महामंत्री को सेनापति विक्रमाभरण ने एक कन्या रत्न भेंट में दी है। दिव्यवाणी से महामंत्री को यह ज्ञात है कि जो राजा इस कन्या रत्न का पाणिग्रहण करेगा उसे महालक्ष्मी प्रत्यक्ष होकर अभीष्ट वरदान देंगी। इस कन्यारत्न का चन्द्रकला नाम रख महामंत्री राजा चित्ररथदेव के अन्तःपुर में रखवा देते हैं। महामंत्री को आशा है कि कालक्रमानुसार महाराज इस कन्यारत्न पर आसक्त हो ही जायेंगे और इसका पाणिग्रहण करके महालक्ष्मी से अभीष्ट वरदान प्राप्त कर सकेंगे। चन्द्रकला महारानी वसन्तलेखा के संरक्षण में रहने लगती है। कुछ समय के पश्चात् अन्तःपुर की सुनन्दना नामकी एक विश्वस्त परिचारिका महामन्त्री को सूचना देती है कि महाराज चन्द्रकला के रूपलावण्य पर आसक्त होकर उससे मिलने को अधीर हैं। दोनों के परस्पर मिलन की एक योजना बनाई जाती है। निश्चय होता है कि प्रमोदोद्यान में महाराज जब मनोविनोद के लिए पधारें तभी उपयुक्त अवसर देखकर सुनन्दना चन्द्रकला को महाराज के समक्ष उपस्थित कर दे। एक दिन प्रमोदोद्यान में महाराज की उपस्थिति में सुनन्दना चन्द्रकला को लेकर पहुंच जाती है। उस अपूर्व सुन्दरी को देखकर महाराज अतिशय मुग्ध हो उठते हैं। चन्द्रकला को भी

---

१७. विश्नाथ, चन्द्रकला, पृ० ३

सूत्रधार :— ···निजजनकसमाधिगतनिखिलसाहित्यतत्त्वस्य···।

महाराज के सौन्दर्य को भर आंख देखने का अवसर मिलता है और वह भी उन पर आसक्त हो जाती है। ठीक उसी समय महारानी की विश्वस्त दासी रतिकला वहां पहुंच कर उन दोनों के प्रणय-व्यापार में विघ्न डाल देती है। चन्द्रकला झट अपनी सखी सुनन्दना के साथ पास की एक लता में छिप जाती है। दासी रतिकला महाराज से निवेदन करती है कि महारानी अन्तःपुर में आपका दर्शन करना चाहती हैं। महाराज चन्द्रकला को फिर से मिलने का संकेत देते हैं और दासी के साथ अन्तःपुर की ओर चल पड़ते हैं।

दूसरे अंक में पूर्व निश्चय के अनुसार राजा चन्द्रकला से रात्रि-मिलन के लिये अपना सुन्दर वेश बनाकर प्रस्थान करने के लिए तैयार हो ही रहे हैं कि महारानी किसी उपाय से उन्हें रोक लेती है। महारानी उनसे कहती है कि आज केलिवन की वाटिका के समीप कुमुदिनी के विवाह का आयोजन किया गया है। अतः आप से मेरा निवेदन है कि आप मेरे साथ वहां उपस्थित रहें। ठीक इसी समय उद्यान में एक बाघ के घुस आने की खबर फैल जाती है और भयभीत महारानी को अन्तःपुर भेज दिया जाता है। इधर महाराज उस बाघ को मारने के लिए तीर धनुष लेकर तैयार हो जाते हैं। ठीक इसी समय वह बाघ महाराज के मित्र रसालक के रूप में परिणत हो जाता है। रसालक अवसर देखकर महाराज को लेकर उन्हें चन्द्रकला से मिलाने के लिए प्रमोदोद्यान के एकान्त स्थान में ले जाता है।

तृतीय अंक में सुनन्दना चन्द्रकला को लेकर प्रमोदोद्यान में पहुंचती है। महाराज कुछ देर लता की ओट से छिपकर विरहकातर चन्द्रकला को देखते हैं और फिर एकाएक वहां पहुंचकर उसे धीरज बँधाने लगते हैं। इसी समय महारानी के आने की सूचना का संकेत रसालक महाराज को दे देता है। चन्द्रकला घबड़ाकर सुनन्दना के साथ वहां से चटपट चल देती है। घबड़ाहट में उसकी अंगूठी वहीं छूट जाती है। महाराज की दृष्टि अंगूठी पर पड़ती है और वे उसे उठाकर रसालक को सुरक्षित रखने के लिए दे देते हैं। इसके बाद ही महारानी वहां आ जाती है और बाघ को मारने के उपलक्ष में महाराज का अभिनन्दन करती है और वहीं उपस्थित रसालक को उपहार स्वरूप अपना हार दे देती है। रसालक प्रसन्न होकर उस हार को झट से अपने गले में डाल लेता है और साथ ही चन्द्रकला की अंगूठी को भी पहन लेता है। महारानी अंगूठी देखते ही क्रुद्ध हो उठती है और अन्तःपुर की ओर चल पड़ती है। रसालक को अपनी भूल मालूम होती है। इधर क्रुद्ध महारानी चन्द्रकला को सुनन्दना के घर छिपा देती है। इसका पता जब विदूषक को लग जाता है तो वह सुनन्दना

के महल से महाराज के साथ चन्द्रकला के मिलन का आयोजन प्रमोदोद्यान के मणिमण्डप में करता है। किन्तु उससे एक गलती हो जाती है। वह महारानी की विश्वस्त परिचारिका माधविका को उक्त रहस्य का संकेत दे देता है और इस प्रकार महारानी को सूचना शीघ्र ही मिल जाती है। मणिमण्डप में पहुंचकर महाराज चन्द्रकला से मिलते तो हैं लेकिन महारानी भी वहां पहुंचकर लता की ओट में छिपकर उन दोनों के प्रणयालाप को सुन लेती है। क्रोध के आवेग में महारानी चन्द्रकला को बन्दी बनाने तथा सुनन्दना और विदूषक को एक साथ बांध कर ले चलने की आज्ञा दे देती है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने महाराज सभी कुछ देखते रह जाते हैं और फिर दुःखी होकर राज-भवन की ओर चले जाते हैं।

चतुर्थ अंक में महारानी के पिता, जो पाण्ड्यदेश के नरेश हैं, का संदेश लेकर दो बन्दी दरबार में पहुंचते हैं। अनेक वर्षों के बाद पितृगृह के समाचार मिलने के कारण महारानी प्रसन्न हो उठती है और उसी समय विदूषक को कारामुक्त कराकर पुरस्कृत करती है। साथ ही विदूषक द्वारा महाराज से यह निवेदन करती है कि पाण्ड्यदेश से आये हुए बन्दियों से वे मणिमन्दिर में मिलें। मणिमन्दिर में महाराज को बन्दियों के द्वारा अपने श्वसुर पाण्ड्यनरेश का यह संवाद मिलता है कि महारानी की छोटी भगिनी मनोरंजन के लिए बाहर गई थी, पर राह भूल जाने के कारण वह जंगल में किसी शबरराज द्वारा विन्ध्यवासिनी देवी को उपहार देने के निमित्त बन्दी बना ली गयी ताकि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को विन्ध्यवासिनी देवी को बलि चढ़ायी जा सके। किन्तु सेनापति विक्रमाभरण के एक सैनिक ने शबरराज का वध कर राज्यकन्या को सेनापति के हवाले कर दिया और विक्रमाभरण ने उस कन्या को महामन्त्री सुबुद्धि के संरक्षण में भेज दिया था और अब वही सुलक्षणा कन्या महाराज चित्ररथ के आश्रय में रह रही है। पाण्ड्य-राज इस सौभाग्यशालिनी कन्या को अपने जामाता चित्ररथदेव को समर्पित करने का निर्णय कर चुके हैं। महामन्त्री सुबुद्धि भी कहता है कि इस कन्या का जो पाणिग्रहण करेगा उसे महालक्ष्मी प्रसन्न होकर अभिलषित वरदान देंगी।

इसके पश्चात् महारानी चन्द्रकला को वहीं बुला लेती है तथा बन्दीगण उसे तत्क्षण पहचान लेते हैं। महारानी यह सोचकर दुःखी है कि उसने चन्द्रकला बालिका के साथ कठोर व्यवहार किया है। वह विवाह का आयोजन करती है और महाराज के साथ चन्द्रकला का पाणिग्रहण करवाती है। विवाह कार्य समाप्त होते ही महालक्ष्मी प्रकट होती हैं और महाराज तथा अन्य लोगों को वर देकर कृतार्थ कर देती हैं।

चतुर्दश शताब्दी के प्रसिद्ध नाट्यशास्त्राचार्य शिङ्गभूपाल ने कुवलयावली नानक एक नाटिका की भी रचना की है। नाट्यशास्त्र विषयक अपने ग्रन्थ रसार्णवसुधाकर में कवि स्वयं अपना वंशपरिचय देता है। शिंगभूपाल रेचल्लवंशीय अनन्त के पुत्र थे और इनकी माता का नाम अनम्मा था। इनकी वंशावली के आधार पर इनका स्थितिकाल १३१० या चतुर्दश शताब्दी का प्रथम चरण है। हर्ष के बाद राजघराने में उत्पन्न ये दूसरे व्यक्ति हैं जो शासक होने के साथ ही कवि-प्रतिभा से भी सम्पन्न हैं। इनकी राजधानी राजाचल नगरी में है, जहां इनके पूर्वज राजा भी शासन कर चुके हैं। इनके राज्य की सीमा विन्ध्याचल से लेकर श्री शैल पर्वत के मध्यवर्ती भाग तक फैली हुई है।[१८] शिंगभूपाल स्वयं विद्वान् तो हैं ही साथ ही विद्वानों के आश्रयदाता भी हैं। उन्होंने नाट्य तथा संगीत आदि विषयों पर अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें रसार्णवसुधाकर, नाटक-परिभाषा, संगीत-रत्नाकर तथा प्रस्तुत नाटिका कुवलयावली आदि उपलब्ध हैं। कुवलयावली नाटिका को रत्नपांचालिका नाम से भी अभिहित किया जाता है।

कुवलयावली की कथा इस प्रकार है। ब्रह्मा के आग्रह पर पृथ्वी एक बालिका का रूप धारण कर नारद के पास पहुंचती है। नारद उसे अपनी पुत्री मानकर अपने संरक्षण में रख लेते हैं। उस बालिका को लेकर नारद महारानी रुक्मिणी के पास पहुंचते हैं और धरोहर के रूप में उनके पास बालिका को रखकर स्वयं उसके लिए उपयुक्त पति की खोज में चल पड़ते हैं। चलते समय नारद जी रत्नमयी एक अंगूठी बालिका को देते हैं। इस अंगूठी में जड़े रत्नों के प्रभाव से पुरुषों को वह बालिका एक पाषाणमयी प्रतिमामात्र दिखलायी पड़ेगी। इसी कारण उस बालिका का नाम रत्नपांचालिका अथवा कुवलयावली पड़ जाता है।

एक दिन अपनी सहेली चन्द्रलेखा के साथ कुवयावली राजोद्यान में भ्रमण करने के लिए जाती है। संयोगवश श्रीकृष्ण भी सायं-विहार के लिए उस उद्यान में पहुंचते हैं। श्रीकृष्ण को यह देखकर आश्चर्य होता है कि चन्द्रलेखा किस तरह एक पाषाण प्रतिमा से बातें कर रही है। इससे उनके मन में सन्देह होने लगता है। इसी बीच संयोगवश कुवलयावली की अंगुली से वह अंगूठी उद्यान में कहीं गिर पड़ती है। मुद्रिका के उक्त प्रभाव से रहित बालिका पर श्रीकृष्ण की दृष्टि पड़ते ही उन्हें सारे रहस्य का ज्ञान हो जाता है और दोनों एक दूसरे के प्रति आसक्त हो जाते हैं। उसके बाद कुवलयावली चन्द्रलेखा के साथ उद्यान से चली जाती है और श्रीकृष्ण उद्यान में अकेले रह जाते हैं। उस रहस्यमयी बालिका के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण जी सोच ही रहे हैं कि इतने में उन्हें खोई हुई अंगूठी मिल जाती है।

१८. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, पृ० १-२ (भूमिका)

उस अंगूठी पर खुदे हुए अक्षरों को पढ़कर वे रहस्य समझ जाते हैं। उधर कुवलयावली को जब अपनी खोई हुई अंगूठी का ज्ञान होता है तो वह उसी उद्यान में खोजने के लिए पहुंचती है। श्रीकृष्ण जो अबतक उद्यान में ही हैं बालिका को अंगूठी लौटा देते हैं। इसके बाद दोनों के गुप्त प्रेम मिलन का क्रम बंध जाता है। एक दिन सत्यभामा संयोग से दोनों प्रेमियों को मिलते देख लेती है और वह रुक्मिणी से सारा हाल कह सुनाती है। रुक्मिणी अपने कक्ष में कुवलयावली को बन्दी बनाकर रख छोड़ती है।

रुक्मिणी के महल में कुवलयावली के बन्दी किये जाने का समाचार एक दानव को मिलता है तो वह चुपके से कुवलायवली को उठाकर चल देता है। रोती बिलखती कुवलयावली रुक्मिणी से कहती जाती है कि वह श्रीकृष्ण से कहकर दानव के चंगुल से उसका उद्धार करावें। श्रीकृष्ण उस दानव से युद्ध करने के लिए चल पड़ते हैं। श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में नारद जी पहुंचते हैं और बालिका के सम्बन्ध में सारे रहस्य रुक्मिणी को बतलाते हैं। युद्ध में उस दानव को पराजित कर श्रीकृष्ण जब लौटते हैं तब रुक्मिणी नारद और अन्य लोगों के साथ परामर्श कर कुवलायवली का परिणय श्रीकृष्ण के साथ कर देती है।

सोलहवीं शताब्दी के कवि मथुरादास द्वारा रचित एक नाटिका मिलती है जो वृषभानुजा नाम से प्रसिद्ध है। नाटिका के रचयिता मथुरादास का आंशिक परिचय आरम्भ में सूत्रधार के मुख से ज्ञात होता है। वे गंगा-यमुना तीरवर्ती सुवर्णशिखर नामक नगर के रहने वाले हैं और उनका जन्म कायस्थ कुल में हुआ है। कवि मथुरादास कृष्ण के एक बहुत बड़े भक्त हैं। अतः अपनी इस नाटिका में इन्होंने राधा और कृष्ण की प्रेमकथा को ही कथानक का रूप दिया है।

वृन्दा नाम की एक वयस्का ब्रजवासिनी वृषभानु के घर संयोगवश जाती है। वहां रूपलावण्यवती राधा नाम की उनकी बालिका के सौन्दर्य पर वह मुग्ध हो जाती है। उसे देखकर वृन्दा सोचने लगती है कि वृषभानुजा राधा और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की जोड़ी बहुत अच्छी रहेगी। इसी उद्देश्य से वृन्दा नन्द के घर जाती है और उनके वैभवमय प्रासाद को देखकर दंग रह जाती है। फिर नन्द से मिलकर उनके सामने राधा और श्रीकृष्ण के विवाह की बात छेड़ती है। इसी बीच ग्वालबालों के साथ श्रीकृष्ण गौओं को लेकर वृन्दावन की ओर प्रस्थान करते हैं। वृन्दा श्रीकृष्ण की कान्ति देख अति प्रसन्न होकर वहां से चल पड़ती है।

वसन्तऋतु के आगमन के अवसर पर मदनमहोत्सव मनाने के लिए राधा अपनी सहेलियों के साथ उद्यान में जाती है। उधर श्रीकृष्ण अपने प्रियमित्र प्रियालाप के साथ राधा के सम्बन्ध में उत्कठित भाव से बातें करते हैं। इसके पश्चात् माधवीलतामण्डप में कुसुमायुद्ध की पूजा करने में राधा व्यस्त हो जाती है। प्रियालाप श्रीकृष्ण की चर्चा राधा के सम्मुख करती हुई उसकी सहेलियों की बातचीत

सुन लेता है और इसके सम्बन्ध में श्रीकृष्ण को वह सूचित करता है। माता का संवाद पाकर राधा सखियों के साथ वहां से लौट जाती है। श्रीकृष्ण भी व्रज की ओर प्रस्थान करते हैं।

दूसरे अंक में श्रीकृष्ण पुन: गोचारण के लिए बाल-सखा प्रियालाप आदि के साथ निकलते हैं। वहां राधा के आकस्मिक आगमन की आशा में श्रीकृष्ण अधीर हैं। इतने में राधा पहले की भांति ही सहेलियों के साथ कामदेव की पूजा के निमित्त उसी वन में आती है। इसी क्रम में नायक श्रीकृष्ण और नायिका राधा का परस्पर साक्षात्कार होता है। राधा सुलभ लज्जा से भर उठती है; किन्तु भीतर ही भीतर प्रेमोन्माद का अनुभव भी करने लगती है। नेपथ्य से ग्वालबालों के उसी ओर आने का संकेत मिलता है। यह जानकर राधा और चम्पकलता चलना ही चाहती हैं कि राधा को लगता है कि उसके कंठहार का एक नीलमणि उद्यान में कहीं खो गया है। दोनों उसे खोजने लगती हैं। इस विलम्ब से श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। अन्तत: चम्पकलता के यह बताने पर कि वस्तुत: नीलमणि अभी भी राधा के हार में उसके कंठ की शोभा बढ़ा रही है राधा लज्जा से गड़ जाती है। सहेलियों के साथ राधा घर लौट पड़ती है। श्रीकृष्ण सुन्दरी राधा से मिलने के लिये व्यग्र हो प्रियालाप से बातें कर घर लौट जाते हैं।

तीसरे अंक में कामव्यथा से पीड़ित राधा चम्पकलता के साथ दिखलायी पड़ती है। श्रीकृष्ण भी प्रियालाप के साथ उधर ही आते दिखलायी पड़ते हैं। दोनों दल आमने-सामने होते हैं। प्रियालाप और चम्पकलता के बीच विनोदपूर्ण आलाप के साथ-साथ राधा और श्रीकृष्ण एक दूसरे के सामने हो ही रहे हैं कि नागरिका दासी वहां विघ्न के रूप में पहुंच जाती है। प्रियलता के साथ बातचीत करती हुई नागरिका राधा की कामव्यथा को भांप कर सब कुछ समझ जाती है। राधा सखियों के साथ घर लौट जाती है। श्रीकृष्ण दु:खी हो उठते हैं। प्रियालाप उनका मन बहलाने का प्रयास करने लगता है। इतने में श्रीदामा नाम का एक गोप श्रीकृष्ण से मुरली वादन के लिये आग्रह करता है ताकि गोवर्धन पर्वत पर से चरती हुई गायें जो बछड़ों के लिये रंभाती हुई वहां से भाग चली थीं, वापस आ जायं। श्रीकृष्ण वैसा ही करते हैं। फल भी तदनुरूप ही होता है। इधर शीघ्रता में जाती हुई राधा के कान से गिरे हुए नीलकमल को प्रियालाप लाकर श्रीकृष्ण को दे देता है। वे उसे अपने हृदय से लगाकर और अधिक व्यथा का अनुभव करने लगते हैं।

चौथे अंक में चम्पकलता और तमालिका राधा की विरह-व्यथा की चर्चा करती हैं। राधा की माता भी राधा की दशा देख कर अब कुछ-कुछ समझने लगी है। घर आकर कामज्वर से पीड़ित राधा को ये दोनों आश्वासन देती हैं।

पीड़ा की अधिकता से राधा बेहोश हो जाती है और राधा के शरीर का शीतलोपचार होने लगता है। चम्पकलता के आग्रह पर राधा श्री कृष्ण को प्रेमपत्र लिखती है। इधर श्रीकृष्ण प्रियालाप के साथ आते दिखलाई पड़ते हैं। राधा का प्रेम पत्र मिलता है और वे उसे अपनी छाती से लगा लेते हैं। श्रीकृष्ण बांसुरी बजाने लगते हैं और वायुमण्डल गूंज उठता है। इधर रावा की तो और भी विचित्र दशा हो जाती है। वह फिर बेहोश हो जाती है और सखियां उसे संभालती हैं। राधा की चेतना जब लौट आती हैं तब सखियां वहाँ से धीरे-धीरे खिसक जाती हैं। लज्जापरवशा राधा को श्री कृष्ण समझाते हैं और वहीं गान्धर्व विधि द्वारा उसका पाणिग्रहण कर लेते हैं। अन्त में चम्पकलता पुरस्कारस्वरूप श्रीकृष्ण से भरत वाक्य के रूप में यह निवेदन करती है कि हमारी सखी राधा आपकी सहगामिनी बनी रहे और यह देखकर हम लोगों की आंखें धन्य होती रहें।

'मलयजाकल्याणम्' नामक नाटिका अठारहवीं शताब्दी की कृति है। इसके रचयिता श्री वीरराघव हैं जो नरसिंहसूरि के पुत्र हैं।[१९] इन्हीं वीरराघव ने भवभूति के नाटकों की प्रसिद्ध टीकाएं लिखी हैं। उत्तररामचरितम् की 'भवभूतिभावतलस्पर्शिनी' महावीरचरितम् की 'भावप्रद्योतिनी' टीकाएं, 'भक्तिसारोदयकाव्य' तथा मलयजाकल्याणम्—इनकी ये चार रचनाएं उपलब्ध होती हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त वीरराघव ने कुछ अन्य दार्शनिक ग्रन्थों की भी रचना की है। प्रस्तुत मलयजाकल्याणम् नाटिका की कथावस्तु यथारीति कल्पित है तथा तोण्डीरदेश के भूपाल देवराज और मलयराज की दुहिता मलयजा की प्रेमकथा पर आधारित है।

आखेट के लिए मलयदेश में आये हुए तोण्डीराधिपति महाराज देवराज की दृष्टि एक सुन्दरी राजकुमारी पर जा टिकती है। वह अपनी सहेलियों के साथ एक हथिनी पर सवार है। वह मलयराज की कन्या है। अपने प्रदेश में आये हुए रूपवान्, गुणी और तरुण देवराज पर उसकी भी दृष्टि पड़ती है। दोनों के हृदय में परस्पर अनुराग का उदय यहीं से आरम्भ होता है। कुछ क्षणों के पश्चात् दोनों अपने अपने स्थान को लौटते हैं; किन्तु दोनों के भीतर अशान्ति घर कर गयी है। विदूषक महाराज को शान्ति दिलाने के उद्देश्य से भ्रमण के लिये ले जाता है। उधर उद्विग्न राजकुमारी भी सखियों के साथ उद्यान में प्रवेश करती है। लता की ओट से विदूषक महाराज को राजकुमारी को दिखलाता है। सखियों तथा राजकुमारी मलयजा के परस्पर वार्तालाप को सुन कर महाराज को संतोष होता है कि प्रेम की उद्विग्नता दोनों ओर समान ही है।

इसी समय महारानी द्वारा प्रेषित एक दासी वीणा लाकर मलयजा को दे जाती है ताकि वह अपने वीणावादन से प्रियालवृक्ष को पुष्पित कर दे। वह वीणा

१९. वीर राघव, मलयजाकल्याणम् (प्रस्तावना)

बजाती है और प्रियालवृक्ष पुष्पित हो उठता है। महाराज राजकुमारी के इस कार्य से उस पर और भी रीझ उठते हैं। गुप्तरूप से दोनों के मिलन की व्यवस्था की जाती है। किन्तु महारानी को इसका पता चल जाता है और वह आड़े आ जाती है। वह स्वयं मंजरिका दासी का वेष बना कर लतागृह में पहुंच जाती है। वह ध्यान लगाकर दोनों के प्रेमालाप को सुनती है और क्रोध तथा ईर्ष्या से आपे से बाहर हो उठती है। महारानी के कोप से बचने के लिए मलयजा वहां से सरक जाती है। उधर महारानी भी क्रोधावेश में महाराज की उपेक्षा कर वहां से चल पड़ती है। इस घटना से महाराज को काठ मार जाता है और वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो वहीं खड़े रह जाते हैं। एकाएक ऋषि जामदग्न्य वहां उपस्थित होते हैं और महाराज को उस दशा में खड़े देख कर उन्हें आश्वासन देते हैं। साथ ही ऋषि यह भी भविष्यवाणी करते हैं कि अन्ततः महारानी का क्रोध शान्त होगा और वे अनुकूल हो जायेंगी। उधर मलयराज अपनी दुहिता मलयजा का पाणिग्रहण महाराज देवराज के साथ कराने के निमित्त अपने परिजन के साथ परामर्श करते हैं और निश्चय हो जाने पर तदर्थ देवराज से प्रार्थना करते हैं। इसके पश्चात् भार्गव मुनि का आगमन होता है और वे महारानी की उपस्थिति में देवराज और मलयजा के विवाह को सम्पन्न कराते हैं। विवाहोपरान्त ही महाराज को शुभ संवाद मिलता है कि उनके सभी शत्रु पराजित कर दिए गए हैं और अब उनका राज्य निष्कंटक हो चुका है। इस घटना से सभी के बीच आनन्द की लहर दौड़ पड़ती है। महारानी भी प्रसन्न हो कनिष्ठा सपत्नी को अपनी छोटी बहन समझ कर उसका स्नेहालिंगन करती है।

अन्त में 'विवेक-चन्द्रोदय' नाम की एक नाटिका का उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है। इसके लेखक का नाम है शिवकवि। संस्कृत साहित्य में शिवकवि के नाम से अनेक लेखक हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ विवेकचन्द्रोदय की भूमिका अथवा अन्तिम अंश में भी इस कवि के सम्बन्ध में कोई उल्लेख योग्य विवरण नहीं दिया गया है। ग्रन्थ की भूमिका में जहां कवि अपने आश्रयदाता राजाओं का विवरण दिया करते हैं, वहां भी कवि ने कुछ भी नहीं लिखा है। यहां तक कि आश्रयदाता राजा के नाम के स्थान को पद्यों में भी रिक्त ही छोड़ दिया है। विवेकचन्द्रोदय नाटक के अध्ययन से स्पष्ट जान पड़ता है कि इसके लेखक कवि के रूप में जितना प्रशस्य है उतना नाटककार के रूप में नहीं। इस ग्रन्थ में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं जिनका वर्णन करते समय लेखक ने व्यंग्यपूर्ण उक्तियों से उन प्रसंगों को अत्यन्त रोचक एवं मर्मभेदक बना दिया है। जान पड़ता है कि लेखक अनेक राजाओं के सम्पर्क में है और प्रस्तुत ग्रन्थ किसे समर्पित किया जाय अथवा इसमें किसकी प्रशंसा की जाय, इसका निश्चय वह अन्त तक नहीं कर सका है। गद्य और

पद्य दोनों में राजा के नाम के स्थान को रिक्त छोड़ देने का और दूसरा क्या आधार हो सकता है ? हा! भूमिका में सूत्रधार के मुख से इतना मालूम हो जाता है कि वह अज्ञातनामा राजा शास्त्रीय गुणों से सम्पन्न भी था, दिग्विजयी भी था और उसकी तलवार के भय से शत्रुगण चूहे की तरह बिल में कहीं छिप कर समय काटते फिरते थे। अस्तु, विवेकचन्द्रोदय किन्हीं शिवकवि द्वारा रचित एक प्रतीकात्मक कृति है।

प्रथम अंक की प्रस्तावना में सूत्रधार मंच पर आकर कहता है कि आज मुझे आश्रयदाता राजा की आज्ञानुसार एक ऐसे रूपक को अभिनीत करना है जिसमें श्रीकृष्ण चरित्र का तथा साथ ही राजनीतिक सिद्धातों का भी वर्णन हो। सो मैं शिवकविरचित विदेकचन्द्रोदय नाटिका के अभिनय द्वारा उस नृपश्रेष्ठ एवं सज्जन-समूह का मनोरंजन करना चाहता हूं।

इसके बाद मंच पर एक ऐन्द्रजालिक आता है और वह अपने मन्त्रबल से आकाशमार्ग से एक विमान को नीचे उतारता है। आचार्य सिद्धिदेव और उनका शिष्य चारुकण्ठ दोनों विमान से उतरते हैं। शिष्य के अनुरोध पर श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के बिवाह की कथा पर आधृत प्रस्तुत रूपक अभिनीत करने की स्वीकृति आचार्य से मिल जाती है।

दूसरे अंक की कथा श्रीकृष्ण की राजधानी द्वारका से आरम्भ होती है। वृद्धश्रवा नाम का एक वृद्ध ब्राह्मण कुण्डिनीपुर के राजा भीम की कन्या रुक्मिणी का संवाद लेकर श्रीकृष्ण से मिलने जाता है। दूसरी ओर से उद्धव लम्बी तीर्थ-यात्रा से लौटकर द्वारका पहुंचते हैं। द्वारपाल दारुक श्रीकृष्ण के पास इन्हें पहुंचा देता है। श्रीकृष्ण द्वारा पूछे जाने पर यात्रा-वृत्तान्त के वर्णन के प्रसंग में उद्धव अपने एक विचित्र स्वप्न का वर्णन उन्हें सुनाते हैं। यात्रा के क्रम में जब वे विन्ध्य राजा के अतिथि थे तो उद्धव ने एक रात स्वप्न में देखा कि इन्द्र अनेक अनुयायियों के साथ विन्ध्यवासिनी देवी की आराधना में संलग्न है। पूजा से निवृत्त होकर इन्द्र बहां से लौटने की सोच ही रहे हैं कि एक विचित्र बात घटित हो जाती है। वहां कुछ देहधारियों का एक झुण्ड आया है जिसमें से एक उत्तेजित आकृति वाला युवक है। वह अधर्म का दूत दुर्विनय है और क्रुद्ध मनुष्य की आकृति बनाये हुए है। वह सामने खड़े शरीरी धर्म से बड़े जोरदार शब्दों में कड़क कर कह रहा है कि आप त्याग-पत्र दे दें। धर्म अपने दूत विनय को उसे उपयुक्त उत्तर देने के लिए प्रेरित करता है।

तीसरे अंक में कर्म के दूत की ओर से दुर्विनय को दिये गए उपयुक्त उत्तरों का रोचक वर्णन है। अन्त में दुर्विनय पराजित होकर वहाँ से खिसक जाता है और इन्द्र विजयोल्लास में प्रसन्न हो स्वर्ग के लिए प्रस्थान करते हैं।

चौथे अंक में राजा भीम की कन्या रुक्मिणी के श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम का तथा युवराज रुक्म द्वारा उसमें डाले जाने वाले विघ्न का वर्णन उद्धव द्वारकाधीश से करते हैं। इसके पश्चात् रुक्मिणी के दूत वृद्धश्रवा का परिचय देते हुए उन्हें सूचित किया जाता है कि रुक्मिणी की इच्छा के विपरीत उसका भाई रुक्म चेदिराज शिशुपाल को अपनी बहन समर्पित करना चाहता है। एतदर्थ दूसरे ही दिन स्वयंवर का आयोजन होने वाला है। सब कुछ सुनकर श्रीकृष्ण तुरन्त कुण्डिनीपुर के लिए चल पड़ते हैं। स्वयंवर में आये हुये राजाओं से कुण्डिनीपुर का राजभवन खचाखच भरा हुआ है। इसी बीच श्रीकृष्ण वहां पहुंचते हैं और रुक्मिणी को अपने रथ में बिठा कर द्वारका की ओर पवन वेग से चल देते हैं। अतिथि राजाओं के साथ बलभद्र का भयंकर युद्ध होता है। अन्त में सभी को परास्त होना पड़ता है। द्वारका में धुम-धाम से विवाहोत्सव मनाया जाता है। अन्त में जादूगर मंच पर आकर सबकी कल्याणकामना करता है और अदृश्य हो जाता है।

चतुर्थ अध्याय

रसाभिव्यंजना

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाटक आदि दश रूपकों की गणना एवं उनके लक्षणों के सम्बन्ध में अपना मत स्थिर करने के पश्चात् नाटी या नाटिका नामक एक मिश्र रूपक का उल्लेख किया है तथा उसका प्रमुख रस शृंगार को माना है। नवरसों[1] में शृंगार को भारतीय आलंकारिकों ने प्रमुखता दी है तथा काव्य-विधाओं में सर्वाधिक रमणीय रूपक साहित्य में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान माना है। शृंगार को प्राथमिकता देने की भारतीय चिन्तकों की यह प्रवृत्ति मानवीय मनोविज्ञान से प्रेरित है। आलंकारिकों ने जिन नव रसों का उल्लेख किया है उनमें शृंगार ही एक ऐसा रस है जिसमें मानव हृदय को समष्टि रूप में आह्लादित करने की क्षमता है। यद्यपि इन आलंकारिकों ने वीर रस को भी रूपक के अंगी रस के लिए उपयुक्त माना है तथा सामाजिकों को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति इस रस में भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। तथापि यह रस विजेता की सफलता और विजित की असफलता के द्वारा सामाजिकों के हृदय में दो विपरीतधर्मी मनोभावों की सृष्टि किए बिना रह नहीं सकता। कामद और त्रासद में प्रथम को ही प्रश्रय देने का भारतीय नाट्यकारों का आग्रह इसी तथ्य पर आधारित है। वीर रस पर लिखे गये नाटकों की परिणति, धीरोदात्तादि नायक के पक्ष में होकर भी, प्रतिनायक के विपरीत आचरण के कारण वध, बन्धन आदि अरुचिकर प्रसंग सामाजिकों के हृदय में आस्वाद्यत्व की सृष्टि तो करते हैं, किन्तु दोनों प्रकार की अनुभूतियों में अन्तर है। एक यदि सहृदय-हृदय को सर्वांशतः आह्लादित करता है, तो दूसरा उस आह्लाद में व्यवधान होने के कारण सहृदय की अनुभूति को अंशतः क्षीण कर देता है। ऐसी दशा में रसास्वादन ब्रह्मानन्द सहोदर बन कर भी सहृदय-हृदय को समष्टि रूप में आक्रान्त करने की क्षमता से वंचित रह जाता है। वध आदि अशोभनीय प्रक्रिया को मंच पर नहीं दिखला कर भी किसी पात्र द्वारा उसकी जानकारी सामाजिक को हो जाती है। यथार्थ में नायक की सफलता की

---

१. रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण

शृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।
बीभत्साद्भुत-शान्ताश्च, रसाःसद्भिर्नव स्मृताः ॥ ३/१६५

पीठिका प्रतिनायक की असफलता ही है। एक के बिना दूसरे की कल्पना ही असंभव है। रूपक के लिए रसों की शृंखला में वीर रस को दूसरा स्थान मिलने का यही मनोवैज्ञानिक कारण है और इस मर्म को भारतीय मनीषियों ने पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। अथच शत्रु आदि का आलम्बन विभाव के रूप में प्रत्यक्षीकरण उत्साह रूपी स्थायिभाव को उद्वेलित कर जिस रसानुभूति की ओर अग्रसर करता है उसकी प्रक्रिया समष्टिरूप में वांछनीय नहीं कही जा सकती है। वीर रस की अभिव्यक्ति की अथवा उसकी अनुभूति की स्थिति भले ही आस्वाद्य अतः अलौकिक हो सकती है, किन्तु आरम्भ में क्रोधावेश की स्थिति अथवा आलम्बन विभाव की उपस्थिति तो विरक्तिकर ही है। क्रोधावेग होने से अशान्त क्षणों का सामना सामाजिक को करना पड़ता है। सहृदयों का अनुभव ही इसका साक्ष्य है। अतः वीररसानुभूति स्वयं में ब्रह्मास्वादवत् विलक्षण होकर भी अपनी पृष्ठभूमि में तथा आस्वादन के परवर्त्ती क्षणों में उतनी महनीय नहीं समझी जा सकती है।

आलंकारिकों द्वारा शृंगार और वीर रसों के अतिरिक्त हास्य, करुण आदि रसों को उतना महत्व नहीं दिये जाने का कारण उन रसों में सामाजिक को सच्चे अर्थ में आह्लादित करने की क्षमता के अभाव को ही मानना चाहिए। रूपक के दश भेदों में शृंगार रस को प्रमुखता देने का यही कारण प्रतीत होता है।

जहां तक शृंगार रस को मूर्धन्य स्थान पर आसीन करने के औचित्य का प्रश्न है, आचार्यों ने इसे निष्पक्ष होकर स्वीकार किया है।[२] जिसके द्वारा काम का उद्रेक होता है उसे शृंगार कहते हैं।[३] काम का अर्थ है सहज इच्छा। काम का आदि सम्बन्ध ब्रह्म से माना गया है; क्योंकि ब्रह्म के हृदय में ही काम सर्वप्रथम उद्भूत हुआ था—कामस्तु ब्रह्मणो हृदयाज्जातः। ब्रह्म के मन से जो रेतस् अर्थात् बीज उद्भूत हुआ वही सर्वप्रथम काम का प्रथम आविर्भाव था। अर्थात् ब्रह्म की सृष्टि-निर्माण करने की इच्छा से जिस रेतस् का प्रादुर्भाव हुआ वही बीज रूप से काम

---

२. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते ॥ ३/१८८

३. शृङ्ग कामोद्रेकमृच्छतीति ('ऋ' गतौकर्मण्यण्)

कहलाया।[४] इसीसे जागतिक सृष्टि का सूत्रपात हुआ है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि के बीज रूप में प्रतिष्ठित होने के अनन्तर काम का शृंगार के साथ सम्बन्ध स्वतः सिद्ध हो जाता है।

शृंगार का मूर्धन्य स्थान इसलिए भी स्वाभाविक है कि इस रस की अनुभूति उभयपक्षीय होती है अर्थात् नायक और नायिका दोनों का परितोष—चित्तप्रसादन—ही इस रस का परिपाक समझा गया है। शृंगार के अधिष्ठाता विष्णु हैं। विष्णु में व्यापनशीलता ही उनकी उदात्तता एवं उत्कर्ष की परिचायिका है[५]। शृंगार के मूल में स्थित विष्णु की यह व्यापनशीलता ही उसे उभयपक्ष को समानरूप से आह्लादित करने की क्षमता प्रदान करती है।

शृंगार रस को चरम बिन्दु पर प्रतिष्ठापित करने में इस कारण आपत्ति हो सकती है कि संभोग की स्थिति में ही यह रस आस्वाद्य बन सकता है, विप्रलम्भ की स्थिति में नहीं। अतः इनके मत में यह रस भी सभी स्थितियों में आह्लादन की क्षमता से रहित होता है। किन्तु ऐसे आक्षेप का आचार्य हेमचन्द्र ने समुचित उत्तर दिया है 'सम्भोग-विप्रलम्भात्मा शृंगारः'[६] की व्याख्या इन्होंने इस प्रकार की है : 'सम्भोगविप्रलम्भौ आत्मा न त्वात्मानौ यस्य। स तथा तेन शृंगारस्येमौ भेदौ गोत्वस्येव शावलेयबाहुलेयौ'। अपने मन्तव्य को और भी स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—'विप्रलम्भेऽनवच्छिन्न एव सम्भोगमनोरथः, निराशत्वे तु करुण एव स्यात्'। अर्थात् विप्रलम्भ की स्थिति में नायक और नायिका में परस्पर मिलन की सम्भावना उत्कटरूप में विद्यमान रहने के कारण सम्भोग मानसिक स्तर पर अनवच्छिन्न ही रहता है। यदि सम्भावना छिन्न हो जाय तो फिर इसे करुण रस की कोटि में मानना पड़ेगा। इसी प्रकार नाट्य-दर्पण में भी उक्त आशय को स्पष्ट किया गया है कि विप्रलम्भ की स्थिति में

---

४. संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ (१९५७) पृ० ९४९

रेतस्—रीयते (क्षरति), री+असुन्, तुट्

तिलक, बालगङ्गाधर, गीतारहस्य, पृ० २५३

कामस्तदग्रे समवर्त्तताधिमनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥

५. ऋग्वेद

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं
यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कम्भायदुत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥ १.१५४.१

६. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अ० २, पृ० ८३

भी मानसिक सम्भोग अनुस्यूत रहता ही है।[७] इसी प्रकार सम्भोग और विप्रलम्भ रूप में उभय त्मक अवस्थिति ही श्रृंगार की विशेषता है और अपनी इसी विलक्षण प्रकृति के कारण श्रृंगार, रूपकों में ही क्या, काव्य की सभी विधाओं में काम्य माना गया है। श्रृंगार की इसी प्राथमिकता के कारण प्रायेण संस्कृत साहित्य की सभी श्रेणियों के रचयिता ग्रन्थ के आरम्भ में अपने अभीष्ट देव या देवी को स्मरण करते हुए उनकी श्रृंगारिक चेष्टाओं का ही विशेषतः वर्णन करते हैं। अतः इस रस के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भरतमुनि ने नाटिका सदृश नाट्यविधा में एकान्त रूप से श्रृंगार-रस को प्रश्रय दिया है। परिस्थिति और वातावरण के अनुरूप अन्य रसों का भी समावेश नाटिका में माना गया है, किन्तु अङ्गी रस होने का श्रेय श्रृंगार को ही प्राप्त है, वीर आदि अन्य रसों को नहीं। अन्य रसों की विवृति गौणरूप में होती है। "उषारागोदया" में श्रीकृष्ण और वाणासुर के बीच हुए युद्ध का वर्णन सामाजिकों को सुना दिया जाता है। इस प्रकार वीर, भयानक रसों की विवृति होने पर भी उनकी स्थिति गौण है। हास्य, अद्भुत आदि रसों के भी समावेश की सम्भावना नाटिका में रहती है। लगभग सभी नाटिकाओं में नायक के सखा विदूषक के समावेश के कारण शिष्ट हास्य की न्यूनाधिक सम्भावना बनी ही रहती है।

आचार्य भरत का नाटी या नाटिका के लक्षण निरूपण द्वारा नाट्य-रचयिताओं को इसकी रचना की ओर प्रेरित करने का एक उद्देश्य रहा होगा। पात्रों में अधिकांशतः स्त्रियों को सम्मिलित कर उन्हें अभिनय के क्षेत्र में व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कराना तथा मनोरंजन का अवसर प्रदान करना सम्भवतः उन्हें अभीष्ट था। कथानक का प्रायेण राजकीय अन्तःपुर से ही सम्बन्ध रहने के कारण इसे मंचस्थ करने का कार्य भी राजभवन के प्रांगण में ही अपेक्षित माना गया होगा। अतः अभिनय कला राजकीय परिवार के सदस्यों एवं सदस्याओं की अभिरुचि उत्पन्न कराने का यह सर्वोत्तम साधन रहा होगा।

अन्य प्रमुख कारण जो भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण पक्षों में से एक है, वह है नाटिका में आदर्श दाम्पत्य का निर्वाह। अपने पति के कल्याण के लिए वैयक्तिक सुखों का बलिदान कर देने में भारतीय महिलाएं गौरव मानती रही हैं। दूसरी ओर सापत्न्य दुःख की कटुता और तीव्रता की सम्भावना को स्वीकार करते हुए भी अपनी सपत्नी को लाने में स्वयं सहयोग देने की उदारता भारत की ललनाएं ही दिखला सकती हैं। विश्व के किसी भी विकसित देश के

---

७. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, पृ० १४५

विप्रलम्भेऽपि मनसा सम्भोगानुवेधादुभयसंवलितस्वभावः श्रृंगारः।

साहित्य को उठा कर देखा जाय तो कहीं भी दाम्पत्यजीवन के चित्रण में इस तरह की घटना का विवरण नहीं मिलेगा। विवाहिता नारी के लिए सपत्नी का अस्तित्व कितना कष्टदायी हो सकता है, यह कहने कि आवश्यता नहीं। फिर भी नाटिका की ज्येष्ठा नायिका को वैसे कठोर दुःख को भी हंसते-हंसते सह लेने की भूमिका दी गयी है जो भारतीय दाम्पत्य मर्यादा का परिचायक है। इस सम्बन्ध में भरत का दृष्टिकोण कितना आस्थापूर्ण है यह इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने इस प्रकार के प्रसंगों को नाटिका के कथासूत्र से जोड़ दिया है। इस के अतिरिक्त पति के व्यक्तित्व का चित्रण भी भारतीय मर्यादा के अनुकूल ही रखा गया है। ज्येष्ठा की इच्छा और स्वीकृति के बिना कनिष्ठा नायिका का पत्नीरूप में ग्रहण निषिद्ध मानना ही इसका प्रमाण है। चक्रवर्ती राजा बनने की योग्यता और शक्ति से सम्पन्न नायक को भी अपनी पत्नी की स्वीकृति के बिना अन्य नायिका को स्वीकार करना स्पष्ट शब्दों में अवैध घोषित किया गया है।[८] कनिष्ठा की स्वीकृति के पश्चात् भी ज्येष्ठा को पूर्ववत् बने रहने का अधिकार नायक की ओर से प्राप्त होना एक अतिरिक्त विलक्षणता ही समझनी चाहिए। भारतीय दाम्पत्यमर्यादा की ये विशेषताएं हैं।

नाटिका में शृंगार रस की अभिव्यक्ति में जिन उपादानों की अपेक्षा होती है वे हैं स्थायी भाव रति, आलम्बन और उद्दीपन विभाव, तदनुरूप अनुभाव तथा संचारी भाव। इन उपादानों में भाव शब्द का प्रयोग अन्य शब्दों के साथ किया गया है, जैसे स्थायी भाव, संचारी भाव या व्यभिचारी भाव में।

भरत ने भाव की प्रकृति के सम्बन्ध में स्वयं जिज्ञासा की है और स्पष्ट किया है कि अनुभावों के वाचिक, सात्त्विक, आंगिक तथा आहार्य प्रदर्शन द्वारा नाट्य के अर्थ को भावित अर्थात् व्यक्त करने के कारण ही ये भाव कहलाते हैं[९]। भाव का अर्थ है कारण, क्योंकि यह भावित, वासित तथा कृत का समानार्थक है और इसकी मूल धातु 'भावय' (भू+णिच्,) का अर्थ है 'परिव्याप्त' होना। इस

---

८. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

········· तद्वशः संगमो द्वयोः। ६.२८१

९. भरत, नाट्यशास्त्र,

किं भवन्तीति भावाः किं वा भावयन्तीति भाव।
उच्यतेवागंगसत्त्वोपेतान् काव्यार्थान् भावयन्तीति भावाः
णिजन्त भू इति धातोः करणे घञ्।
विभावेनोद्धृतो योर्थस्त्वनुभावैश्च गम्यते।
वागंगसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः।
वागंगमुखरागेण सान्त्वनाभिनयेन च॥ ७/१

प्रकार जब विभाव तथा अनुभाव के अर्थ को सामाजिक के मन में परिव्याप्त कराया जाता है तो इन्हें 'भाव' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। भावों की परिगणना भरत ने इस प्रकार की है : आठ स्थायी भाव, तैंतीस व्यभिचारी भाव और आठ सात्त्विक भाव।[१०] इन तीन प्रकार के भावों में स्थायी भावों की विशिष्टता और प्रमुखता के सम्बन्ध में भरत की मान्यता है कि इन स्थायी भावों का काव्य-जगत् में वही स्थान है जो नरों के बीच नरपति का और शिष्यों के बीच गुरु का हुआ करता है[११]।

नाट्यशास्त्र के षष्ठ अध्याय में भरत ने यह प्रश्न भी उठाया है कि रस से भाव की निर्वृत्ति होती है या भाव से रस की ? उत्तर में वे कहते हैं कि भावों से रस की निष्पत्ति ही सम्भव है[१२]। रसों की उद्भावना भावों के प्रदर्शन से होती हैं भावों के बिना रसों की और रसों के बिना भावों की निर्वृत्ति हो ही नहीं सकती।[१३] अभिनयात्मक प्रदर्शन में पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर ये व्यञ्जित हुआ करते हैं। पुनः वृक्ष और बीज के रूपक के आधार पर इनके सम्बन्धों को स्पष्ट किया गया है कि वृक्ष बीज से उत्पन्न होता है और फल-फूल वृक्ष से। इसी प्रकार भाव सम्पूर्ण रसों के स्रोत हैं।[१४]

---

१०. भरत, नाट्यशास्त्र,

तत्राष्टौ भावा स्थायिनः। त्रयस्त्रिंशत् व्यभिचारिणः।
अष्टौ सात्त्विकाः। एवमेते काव्यरसाभिव्यक्तिहेतवः
एकोनपंचाशद्भावाः प्रत्यवगन्तव्याः ।। ७/७

कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते।
नानाभिनयसंबद्धान् भावयन्तिरसानिमान्।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः ।। ७/२, ३

११. भरत, नाट्यशास्त्र,

यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्व भावानां भावः स्थायी महानिह ।। ७/८

१२. भरत, नाट्यशास्त्र,

एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यन्ते ।। ७.७

१३. भरत, नाट्यशास्त्र,

न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत् ।। ६.३६

१४. भरत, नाट्यशास्त्र,

यथा बीजाद्भवेद्वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसा सर्वे ततो भावा व्यवस्थिताः। ६.३८

'भाव' के सम्बन्ध में भरत का दृष्टिकोण स्पष्टतः अभिनयात्मक प्रदर्शन से सम्बद्ध जान पड़ता है। आगे चलकर 'भाव' का एक और विशिष्ट अर्थ विकास में आया। धनञ्जय ने अनुकार्य के सुख, दुःख, हर्ष, विषाद आदि भावस्थितियों के ज्ञापन को 'भाव' शब्द से अभिहित किया है। अर्थात् सामाजिक के हृदय में आश्रय की आन्तरिक भावस्थितियों का ज्ञापन 'भाव' है।[15]

भाव शब्द के उक्त विवेचनों पर विचार करना अपेक्षित है। भरत ने, जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है, नाट्यशास्त्र में 'भाव' की व्याख्या दो ढंग से की है। पहली यह कि वाचिक, आंगिक और सात्त्विक अभिनयों से काव्य-नाट्यगत अर्थों का भावन-ज्ञापन कराना भाव है[16]। दूसरी यह कि कवि के आन्तरिक भाव को भावित-वासित कराने वाला भाव कहलाता है[17]। इनका आशय यह है कि 'भाव' वह है जो काव्यगत रसों को भावित करता है और 'भाव' वह है जो कवि के आन्तरिक भाव को भावित करता है[18]। 'भाव' के सम्बन्ध में धनञ्जय ने तीसरा दृष्टिकोण अपनाया है। इनका कहना है कि राम, दुष्यन्त आदि अनुकार्य के द्वारा अनुभूत सुख, दुःख आदि का सहृदय सामाजिक में भावन-ज्ञापन होना ही भाव है[19]। इस प्रकार 'भाव' का सम्बन्ध भरत के अनुसार काव्य और कवि से तथा धनञ्जय के अनुसार सामाजिक से। इन तथाकथित विसंगतियों का समाधान वृत्तिकार धनिक ने बहुत ही स्पष्ट रूप से कर दिया है। धनिक के अनुसार प्राचीन दो व्याख्याएं अभिनय तथा काव्य से सम्बद्ध

---

१५. धनञ्जय, दशरूपक,

सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्भाव भावनम्।
पृथग्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्त्विकाः॥
सत्त्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम्। ४/४-५

१६. भरत, नाट्यशास्त्र,

विभावेनोद्धृतो योऽर्थस्त्वनुभावैश्च गम्यते।
वागंगसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः॥ ७.१

१७. भरत, नाट्यशास्त्र,

यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह॥ ७.८

१८. भरत, नाट्यशास्त्र, पृ० ६९

······काव्यार्थान् भावयन्तीति भावाः ······
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते। ७.२

१९. धनञ्जय, दशरूपक,

सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्भावभावनम्। ४.४

हैं, और इस प्रकार 'भाव' अभिनय एवं काव्य के प्रवर्तक हैं। पुनः श्रव्य और दृश्य काव्यों में वर्णित राम आदि अनुकार्यों के हर्ष, विषाद आदि भावों के द्वारा भावकों-सामाजिकों के हृदय का उन्हीं भावों से भावित होना 'भाव' कहलाता है। इस प्रकार भाव की तीनों व्याख्याएं अपनी-अपनी जगह पर ठीक ही हैं; किसी से किसी का विरोध नहीं है। अतः आधार भेद से यह भाव काव्य, कवि और भावक तीनों से अलग-अलग संबद्ध हैं।

ऊपर कहा गया है कि रस-निष्पत्ति के उपादानों की व्याख्या के क्रम में भरत की दृष्टि रंगमंच पर प्रदर्शित किये जाने वाले अभिनय पर भी केन्द्रित है। भरत रसवादी आचार्य हैं और रस को इन्होंने सभी प्रकार के अर्थों का आधार माना है।[२०] इसके अतिरिक्त रस अभिनय के अनुरूप आस्वाद्य है। यह आस्वाद्यत्व उसी प्रकार का है जैसा विभिन्न व्यंजनों के संयोग से बने भोज्य पदार्थों के रसों का आस्वादन सहृदय जन किया करते हैं।[२१] इसी प्रकार विज्ञजन स्थायी भावों का आनन्द विभिन्न भावों के वाचिक, आंगिक और सात्त्विक अभिनय के द्वारा प्राप्त करते हैं।

सभी नाटिकाओं का कथानक एक प्रकार का होने पर भी पात्र की वैयक्तिक विशिष्टता उन्हें एक-दूसरे से पृथक् कर देती है। जैसे हर्ष की प्रियदर्शिका के नायक उदयन आरंभ में जिस मर्यादा का पालन करते हुए नायिका आरण्यका को महारानी वासवदत्ता को सौंपते हैं, उसकी रक्षा करने में वे कुछ काल तक भी अपने को तत्पर नहीं रख पाते। उनकी सारी उदात्तभावना आरण्यका के तारुण्य और लावण्य के एक झोंके से ही विकम्पित हो जाती है। महारानी के कोप के आतंक के कारण आरम्भ से ही प्रमुख नायिका के सात्त्विक तथा व्यभिचारी भाव दमित एंव कुंठित रह जाते हैं। इन नायिकाओं में उत्पन्न होने वाले भाव उस प्रकार प्रस्फुटित नहीं हो पाते हैं जिस प्रकार नायिका शकुन्तला में अभिव्यक्त होते हैं। नाटिका की नायिका नायक को देखकर स्तम्भ, रोमांच आदि सात्त्विक भावों तथा निर्वेद, ग्लानि, हर्ष आदि व्यभिचारी भावों को छिपाने में ही अपना कल्याण समझती है। अतः उसके ये सारे भाव कुंठा के कारण व्यक्त नहीं हो पाते हैं। प्रेम-व्यापार की दिशा में नायिका के प्रत्येक उद्गार

---

२०. भरत, **नाट्यशास्त्र,**

न हि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्त्तते । ६.३२

२१. भरत, **नाट्य शास्त्र,**

यथा बहुद्रव्ययुतैर्व्यञ्जनैर्बहुभिर्युतम् ।
आस्वादयन्ति भुञ्जाना भक्तं भक्तविदो जनाः ॥
भावाभिनयसंबद्धान् स्थायिभावांस्तथा बुधाः ।
आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः ॥ ६.३३,३४

पर महारानी के कोप का अंकुश लटका रहता है। रत्नावली नाटिका के प्रथम अंकके अन्त में मदन-महोत्सव के अवसर पर नायक उदयन को लता की ओट से छिपकर देखती हुई नायिका सागरिका के रागात्मक आवेग पर महारानी के भय के कारण विभिन्न व्यभिचारी भावों के उदय-विलय अत्यन्त शीघ्रता से होते जाते हैं। राजा पर दृष्टि पड़ते ही प्रसन्नता का उदय, पुनः साकाङ्क्ष नेत्रों से उसका अवलोकन, अपने पिता सिंहलनरेश के द्वारा मनोनीत उदयन के साथ अपने (सागरिका के) परिणय की प्रतिश्रुति की विफलता जानकर विषादजन्य दीर्घ निःश्वास; और पुनः उसके इन सारे मनोभावों पर, राजा द्वारा देवी के वहां आगमन का निवेदन सुनकर उसके (देवी के) कोप का आतंक, क्षण भर भी तृप्त मन से नायक को देखने की अपनी अभिलाषा की अपूर्त्ति के कारण अपने दुर्भाग्य पर आक्रोश और ग्लानि तथा अन्त में राजा को ललचायी आखों से एक बार पुनः देखती हुई वहां से दबे पांव प्रस्थान करने की विवशता आदि जितने भी व्यापार देखे जाते हैं उन पर महारानी के कोप के आतंक की छाया स्पष्ट दीखती है।

विल्हणकृत 'कर्णसुन्दरी' नाटिका में तरंगवती दासी नायिका कर्णसुन्दरी के विरहताप का वर्णन विदूषक से करती है। राजा से मिलने की व्यग्रता इतनी तीव्र है कि उसकी चंचल आखें चन्द्र पर भी स्थिर नहीं रह पाती हैं। कमलों की कोमल सेज पर भी वह छटपटाती रहती है, कुचस्थली पर प्रलिप्त चन्दन भी ताप के कारण रजकण में परिवर्तित हो गया है।[२२] इतने सारे व्यभिचारी भावों की स्थिति में भी नायिका आतंक से ग्रस्त है। उसके रागात्मक मनोभावों पर कुंठा का आधिपत्य है। जहां तक नाटिका के प्रमुख नायक के मनोभावों का प्रश्न है, वहां भी वही कुंठा, वही विवशता पायी जाती है, जैसी की नायिका के रागात्मक मनोभावों में। महाराजा होकर भी अपने अन्तःपुर के भीतर अन्य नायिका के साथ प्रेम-व्यापार में उसके सामने वही विवशता रहती है जैसी कि नायिका के सामने। इस प्रकार परिणति के पहले क्षण तक मानसिक द्वन्द्वों के बीच से ही नायिका एंव नायक को गुजरना पड़ता है। उनमें सात्त्विक या व्यभिचारी भावों का पूर्ण प्रस्फुटन नहीं हो पाता है। इस प्रकार

---

२२. विल्हण, कर्णसुन्दरी,

यत्तारा रमणोऽपिनिर्वृत्तिपदं नास्याश्चलच्चक्षुषो
र्यद्गात्रं शतपत्रपत्रशयनेऽप्युत्फालमुद्वेल्लति।
शीतं यच्च कुचस्थलीमलयजं धूली कदम्बायते
किं वान्यत्तदनंगमंगलमयी भंगी कुरंगीदृशः ॥ २/१

भावात्मक तत्त्व नाटिका के पात्रों में होते हुए भी, नाटक के पात्रों के ऐसे तत्त्वों से विलक्षण प्रकार के हैं।

नाटिका के शृंगारिक परिवेश में तदनुकूल विभिन्न भावों का सामंजस्य ही इनकी सफलता की कसौटी हुआ करती है। नाटिका की कथावस्तु के तन्तुओं को परस्पर जोड़ने का कार्य ये ही भावात्मक तत्त्व किया करते हैं। सम्भ्रान्त राजन्यकुल की युवती कन्या का किसी अन्य राजा के अन्तःपुर में दैववश उपस्थित होना, राजममहिषी के ही संरक्षण में उसे राजा के द्वारा सौंपा जाना, उस कन्या के तारुण्य, रूप एवं लावण्य पर राजा की लोलुप दृष्टि का पड़ना, राजा और रानी दोनों की ओर से दूत एवं दूती को अपने-अपने मन के अनुकूल कार्य कराने के लिए नियुक्त करना, नायक एवं नायिका के परस्पर मिलने की उत्कंठा, एकान्त मिलन की तीव्रता में राजमहिषी के कोप का अंकुश होना, इन्हीं द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों से गुजरती हुई कथावस्तु का परिणति के उस बिन्दु पर पहुंचना जहां राजमहिषी स्वयं नायिका एवं नायक को परिणय-सूत्र में बांधकर प्रसन्नता का अनुभव करती है, भावात्मक परिवेश के ही अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार नायक, नागिका और महारानी इन तीन प्रमुख पात्रों के त्रिकोणात्मक भावतत्त्वों का संघर्ष दिखाकर पुनः उनमें संतुलन बैठाना ही नाटिका की कथावस्तु का भावात्मक पक्ष है।

यों तो नाटिकाओं की कथावस्तु कुछ इस प्रकार की होती है कि यदि पात्रों के नाम हटा दिये जायं तो सभी नाटिकाओं की कथावस्तु समान प्रतीत होगी। तथापि देश, काल और परिस्थितियों के पार्थक्य से इनके पात्रों के भावात्मक परिधि में प्रवेश करते ही, इनके व्यक्तित्त्व का विश्लेषण उसी दृष्टिकोण से करना सम्भव है। 'मालविकाग्निमित्र' की इरावती के भावात्मक आवेग वे ही नहीं हैं जो बड़ी महारानी धारिणी के हैं। सापत्न्य का आंतक अपने आप में दोनों के लिए समान ही है। फिर भी धारिणी की प्रतिक्रिया और इरावती की प्रतिक्रिया में दिन और रात का अन्तर है। एक ही प्रकार की परिस्थिति दोनों महारानियों की है, किन्तु धारिणी की प्रतिक्रिया परिव्राजिका कौशिकी के शब्दों में ठीक उस बड़ी नदी के समान है जो अपने प्रेमी समुद्र से मिलने के लिए जाते समय अन्य छोटी-छोटी नदियों को भी प्रेम-मिलन का अवसर देने के लिए अपने साथ लिए चलती हैं।[२३] इसके विपरीत छोटी महारानी इरावती की प्रतिक्रिया का वर्णन राजा अपने मित्र विदूषक से करता हुआ कहता है कि यह चण्डी हाथ में स्वर्णमेखला लिए उस मेघ समूह के समान लग रही

---

२३. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**,

परिव्राजिका— प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाःसाध्व्यः।
अन्यसरितामपि जलं समुद्रगाःप्रापयन्त्युदधिम्॥५/१९

है जो विन्ध्य पर्वत पर बिजली गिराकर अब उसे चूर-चूर करने पर तुली हुई है।[२४] भारतीय मर्यादा का जो आदर्शवादी रूप कवि की लेखनी के सामने उपस्थित है उसका निर्वाह यदि धारिणी की प्रतिक्रिया है, तो स्वाभाविकता और यथार्थ की दृष्टि से जो कुछ भी उचित है उसका आकलन इरावती की प्रतिक्रिया में है। इस प्रकार लगभग सभी नाटिकाओं की बड़ी महारानियों के भावात्मक आवेग तभी तक उबलते जान पड़ते हैं जब तक अपने पति के चक्रवर्त्तित्व का आकर्षण उनके समक्ष उपस्थित नहीं हो जाता। अन्यथा सभी ज्येष्ठाएं कालिदास की धारिणी के व्यक्तित्व की समता करती प्रतीत होने लगती हैं।

इस प्रकार नाटिका की कथावस्तु के सारे तत्त्व विप्रलम्भशृंगार[२५] की पूर्व-रागावस्था की उत्कंठा, व्यग्रता और महादेवी के प्रकोप की आतंककारी विभीषिका से आक्रान्त रहते हैं। पूर्वराग की अवस्था को स्पष्ट करते हुए विश्वनाथ कहते हैं कि परस्पर वचन आदि के श्रवण से अथवा दर्शन से अनुरागाविष्ट नायक तथा नायिका की वह अवस्था विशेष है जिसमें दोनों एक दूसरे को प्राप्त नहीं कर पाते।[२६] दूत या दूती के मुख से अपने प्रेमी या प्रेमिका के संबंध में सुनकर, ऐन्द्रजालिक की प्रेरणा से, साक्षात् दर्शन से अथवा चित्र या स्वप्न में देखकर ये पूर्वराग को अवस्था तक पहुंचते हैं।[२७] अन्तःपुर में ही नायिका के उपस्थित रहने से नाटिका में वर्णित पूर्वराग कुछ विलक्षण रहा करता है। इसमें आरम्भ में भले ही चित्र अथवा स्वप्न में परस्पर दर्शन

---

२४. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**,

राजा—वाष्पासारा हेमकांचीगुणेन
श्रोणीबिम्बाद प्युपेक्षाच्युतेन।
चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता सा
विद्युद्दाम्नामेघराजीव विन्ध्यम्॥ ...३/२१

२५. भोजदेव, **सरस्वतीकण्ठाभरण**,

भावो यदा रतिर्नाम प्रकर्षमधिगच्छति।
नाधिगच्छति चाभीष्टं विप्रलम्भस्तदोच्यते॥ ५/४५

२६. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथःसंरूढरागयोः।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागःस उच्यते॥ ३/१९२

२७. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

श्रवणन्तु भवेत्तत्र दूतवन्दिसखीमुखात्।
इन्द्रजाले च चित्रे च साक्षात् स्वप्ने च दर्शनम्॥ ३/१९३

हो, किन्तु पूर्वराग की अवधि में भी ऐसे क्षण आ जाते हैं जबकि गुप्त रूप से नायक-नायिका का मिलन भी हो जाया करता है और जिसमें दूत-दूतियों का विशेष हाथ रहता है।

यहां विप्रलंभ शृंगार के संबंध में विभिन्न आचार्यों के विवरण के परिप्रेक्ष्य में नाटिका में विवृत शृंगार पर कुछ विचार करना अपेक्षित जान पड़ता है। मिलन अथवा समागम से पूर्व हृदय में जिस अनुराग का आविर्भाव होता है उसे पूर्वराग या पूर्वानुराग कहा गया है। यह चार कारणों से होता है: प्रत्यक्ष दर्शन, चित्रदर्शन, श्रवण एंव स्वप्न दर्शन से। यह पूर्वानुराग तीन प्रकार का होता है[२८]—नीली राग, जो नील रंग के समान आकर्षण रहित होकर भी जल आदि से नष्ट नहीं होता है। कुसुम्भ राग, जिस रंग में बाहरी चमक भी हो लेकिन नष्ट हो जाने वाला हो और तीसरा मंजिष्ठा राग जिसमें चमक और स्थायित्व दोनों हो।[२९]

साहित्यदर्पणकार से भी पहले भोजने पूर्वानुराग, मान, प्रवास, तथा करुणा—इस प्रकार विप्रलम्भ के चार भेद किए हैं।[३०] मम्मट ने विप्रलम्भ के पांच भेद बताये हैं:[३१] अभिलाषहेतुक, विरहहेतुक, ईर्ष्याहेतुक, प्रवासहेतुक तथा शापहेतुक। किन्तु नाटिका की नायिका धनंजय के द्वारा बताये गये शृंगार रस के तीन[३२] भेदों—

---

२८. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

नीली कुसुम्भं मंजिष्ठा पूर्वरागोऽपि च त्रिधा ।। ३.१९८

२९. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

न चातिशोभते यन्नापैति प्रेम मनोगतम्
तं नीलीरागमाख्यान्ति यथा श्रीरामसीतयोः ।।
कुसुम्भरागं तं प्राहुर्यदपैति च शोभते ।
मंजिष्ठारागमाहुस्तं यन्नापैत्यतिशोभते ।।३/१९९,२००,२०१

३०. भोजदेव, **सरस्वतीकण्ठाभरण**,

पूर्वानुरागो मानश्च प्रवासः करुणश्च सः ।
पुरुषस्त्रीप्रकाण्डेषु चतुःकाण्डः प्रकाशते ।। ५/४६

३१. मम्मट, **काव्यप्रकाश** अं-४, पृ. ८५,

अपरस्तु अभिलाष-विरहेर्ष्या-प्रवास-शापहेतुक इति पंचविधः ।।

३२. धनञ्जय, **दशरूपक**,

अयोगो विप्रयोगश्च सम्भोगश्चेति स त्रिधा ।। ४/५०

अयोग, विप्रयोग तथा सम्भोग में से अयोग शृंगार का आलम्बन है न कि विप्रयोग का धनंजय के उक्त तीन भेद तथा उनका नामकरण अधिक वैज्ञानिक और तथ्यपरक जान पड़ता है। इन्होंने विप्रलम्भ के बदले विप्रयोग शब्द का प्रयोग किया है जो अधिक समीचीन जान पड़ता है। इन्होंने विप्रलम्भ का प्रयोग इसलिए नहीं किया है कि इसमें सामान्यत: नायक और नायिका दोनों सम्मिलित होने के पश्चात् किसी कारणवश वियुक्त हो गये रहते हैं। नाटिका की नायिका की अवस्था इस प्रकार के विप्रलम्भ से कुछ विलक्षण प्रकार की अर्थात् अयोगात्मक प्रकार की होती है। अयोग की परिभाषा देते हुए धनंजय का कहना है[33] कि, अयोग शृंगार वह अवस्था है जहां पारस्परिक अनुराग रहते हुए भी परतन्त्रतावश (महादेवी आदि के भय से) अथवा दैव के कारण, नायक एवं नायिका का योग नहीं हो पाता है। नाटिका की परिभाषा उक्त प्रकार के अयोग शृंगार की ओर संकेत करती है। धनंजय ने इस अयोग शृंगार के दश प्रकार की अवस्थाओं का भी निर्देश किया है—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, संज्वर, जड़ता और मरण। इन दश प्रकार की अवस्थाओं में से प्रथम पांच अवस्थाएं लगभग सभी नाटिकाओं की कनिष्ठा नायिका में किसी न किसी रूप में देखी जाती हैं। अन्तिम पांच तीव्र अवस्थाएं हैं। इनका नाटिका की उक्त नायिका में दृष्टिगत नहीं होने का महादेवी के कोप अथवा राज्यान्त:पुर के भीतर का वातावरण ही प्रमुख कारण हो सकता है।

नायिका के अभिलाष की उत्कटता के सुन्दर उदाहरण हर्षकृत रत्नावली नाटिका में मिलते हैं। नायिका सागरिका अपने ही हृदय से कहती है कि जिस (नायक उदयन) के देखने से तुम्हारा सन्ताप घटने के बजाय बढ़ता ही जाता है, उसे ही बार-बार देखने की अभिलाषा तुम्हें क्यों हो रही है?[34] प्रियदर्शिका नाटिका की नायिका अपने तथा महाराज के परस्पर मिलन की आन्तरिक अभिलाषा को राजहंस की अभिलाषा के माध्यम से व्यक्त करती।[35] वृष-

---

३३. धनञ्जय, दशरूपक,

तत्राऽयोगोनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयोः। ४/५८
पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः॥ ४/५१

३४. श्रीहर्ष, रत्नावली अं-२, पृ. ५७

'''येनैवदृष्टेन त ईदृशः संतापो ननुवर्धते तमेव
पुनरपि प्रेक्षितुमभिलषसीत्यहो ते मूढता।

३५. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका,

आरण्यका-धनबन्धनसंरुद्धं गगनं दृष्ट्वा मानसमेतुम्
अभिलषति राजहंसो दयितां गृहीत्वात्मनो वसतिम्॥ ३/८

भानुजा नाटिका की नायिका राधा अपनी सखी से श्रीकृष्ण के साथ अपने दुर्लभ समागम के सम्बन्ध में कहती है।[३६] चिन्तारूप अयोग शृंगार का उदाहरण प्रियदर्शिका की नायिका आरण्यका की उक्ति में मिलता है जब वह अपनी सखी मनोरमा से कहती है कि महारानी वासवदत्ता के गुण-रूप की शृंखला में जकड़े हुए महाराज उदयन क्यों उसे (आरण्यका को) अपनायेंगे।[३७]

इसी प्रकार बिल्हणकृत 'कर्णसुन्दरी' नाटिका के द्वितीय अंक में नायिका अपने प्रेमी नायक की प्राप्ति के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त करती है।[३८]

स्मृतिरूप अयोग शृंगार का उदाहरण नायिका पारिजातमंजरी के नायक-विषयक इस कथन में है कि मेघ के बीच क्षणमात्र के लिए चन्द्र को देख प्रसन्न होती हुई चकोरी जैसे पुनः बादल के बीच उसके छिप जाने से दुःखी हो जाती है उसी प्रकार मैं भी एक बार तुम्हारा दर्शन कर और पुनः उससे वंचित होकर दुःखी हो रही हूं।[३९]

---

३६. मथुरादास, **वृषभानुजा**,

मन्ये स दुर्लभजनो मम नेत्रवीथीं जन्मान्तरे सुमुखि चित्रपटान्तरे वा।
एष्यत्यनेकरमणीहृदि संप्रविष्टो जातं निराशमथ तस्यकृते मनो मे ॥ ४/१९

३७. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ. ४५,

आरण्यका-- देवीगुणनिगलनिबद्धे खलु तस्मिन् जने कुत एतत्।

३८. बिल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

नायिका—को जानाति कदा भविष्यति फलं चन्द्रार्धचूडामणि
प्राणेशाचरणप्रसादतरोर्भक्त्यासिक्तस्यापि।
मुह्यन्ती मदनानिलेन बहुलं साहं हताशा पुन-
रिदानीमेव तत्र चरामि परमं यद्यदवस्थान्तरम् ॥ २/२७

३९. मदन, **पारिजातमञ्जरी**,

नायिका—चन्द्रस्येव तव मेघान्तरे क्षणदर्शनेन या सस्मिता।
सीदामि सा चकोरीव पुनरपि त्वय्यन्तर्यति ॥२/५४

पञ्चम अध्याय

दृश्य-विधान एवं परिवेश

भारतीय नाट्यकारों का प्रमुख उद्देश्य अभिनयात्मक रचना के द्वारा सामाजिकों में तदनुकूल रसानुभूति कराना ही रहा है। रस के पूर्ण परिपाक की अवस्था तक पहुंचने के लिए जिन वाह्य साधनों या उपकरणों की आवश्यकता होती है उनमें दृश्य-विधान का प्रमुख स्थान रहता है। पाठकों या दर्शकों की मानसिक स्थिति को बाह्य-जगत् के विभिन्न चिन्तनों से मोड़ कर उसे रस-बोध की चरमानन्द की अवस्था की ओर उन्मुख करने का कार्य सर्वप्रथम दृश्य-विधान ही करता है। युद्धभूमि के दृश्यों से सज्जित रंगमंच पर शृंगारिक अभिनय करने वाली नायिका अथवा नायक सामाजिक के भीतर रसबोध की पुष्टि नहीं कर सकता और न वह स्वयं अभिनय के साथ न्याय ही कर सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में दृश्य-विधान का जो महत्त्व है उसके अनुरूप दृश्यानुकूल सभी साधनों को जुटाकर रंगमंच को सज्जित करना एक कठिन कार्य है सम्भवतः इसी कारण नाट्याचार्यों ने अभिनय के साथ उपयुक्त दृश्य-सज्जा के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कोई संकेत नहीं दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जवनिका पर चित्रित कोई प्राकृतिक अथवा मानवीय क्रिया-कलाप से संबद्ध दृश्य ही स्थायी रूप से अभिनेताओं के द्वारा किये जाने वाले विभिन्न अभिनयों की पृष्ठभूमि का कार्य करता रहा होगा। प्रसंग को स्वाभाविक बनाने का जो कार्य दृश्य-विधान द्वारा होना चाहिए था, उसकी पूर्ति वाचिक अथवा आंगिक अभिनय के द्वारा अभिनेताओं के दायित्व में ही सम्मिलित मान ली जाती थी, किन्तु यह दायित्व-भार अकेले अभिनेता पर ही नहीं था। सामाजिक को भी उन दृश्यों की परिकल्पना करनी पड़ती थी जिनका प्रस्तुतीकरण, वाचिक अभिनय के द्वारा, अभिनेता रंगमंच पर करता होगा। श्रीहर्ष की नाटिका 'प्रियदर्शिका' के दूसरे अंक में सरोवर से कमल के फूलों को चुनती हुई नायिका को सम्भावित भ्रमर-दंश का आतंक होता है। सरोवर में खड़ी, कमलों की ओर अपने हाथ को बढ़ाती हुई नायिका, वाचिक और आंगिक दोनों प्रकार के अभिनय द्वारा प्रेक्षकों की कल्पना को जगाती है कि ये दुष्ट भ्रमर कमलिनी को छाड़कर उसकी ओर चले आ रहे हैं और तंग कर रहे हैं। इस दृश्य को वह अपने अभिनय

से तथा उत्तरीय के द्वारा अपने मुख के प्रच्छादन की क्रिया से व्यक्त करती है ।[1] भयजनित स्वेद तथा रोमांच आदि सात्त्विक भावों के द्वारा नायिका को ही दुष्ट भ्रमरों की उपस्थिति को व्यक्त करना पड़ता है । इस प्रकार अभिनय-कला में निपुण कोई अभिनेत्री ही अपने उद्वेगकारी अनुभावों के द्वारा प्रेक्षकों में इस धारणा की प्रतिष्ठा कर सकती है कि वह किसी सरोवर में खड़ी है तथा दुष्ट मधुकरश्रेणी उसे त्रस्त कर रही है ।

प्रियदर्शिका नाटिका के दूसरे अंक के अन्त में विदूषक राजा को सूचित करता है कि सूर्य अस्त हो रहा है; अतः हम लोग अन्तःपुर की ओर चलें ।[2] प्राकृतिक दृश्य होने के कारण सूर्यास्त की दृश्य-परियोजना आंगिक अभिनय के द्वारा रंगमंच पर असंभव मान कर, उदयन को पद्य-पाठ के वाचिक अभिनय के माध्यम से प्रेक्षकों को सूर्यास्त सूचित करना पड़ता है ।[3] नायक के सामने से नायिका प्रियदर्शिका के चले जाने पर नायक की जो स्थिति होती है वही स्थिति सूर्य के अस्ताचल पर चले जाने के पश्चात् प्रकृति-जगत् की हो जाती है । इस प्रकार के दृश्य-विधान के कार्य को तत्कालीन रंगमंच पर असम्भव जान कर ही कवि हर्ष ने उस अभाव की पूर्ति के लिए उक्त पद्य में उदयन की मानसिक स्थिति के चित्रण में उपमानों की लड़ी पिरोयी है ।

उस युग में प्रसंगानुकूल किसी दृश्य को रंगमंच पर सर्वांशतः दिखाना कठिन था । अभिनय को सजीव बनाने के उद्देश्य से रंगमंचीय किसी दृश्य को उपस्थापित करना वैज्ञानिक उपकरणों अर्थात् प्रकाश-ध्वनि एवं अन्य कृत्रिम परिवेश के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है । विकसित यांत्रिक साधनों का भरपूर प्रयोग होने के कारण

---

१. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका** अं. २, पृ. ३४,

आरण्यका—(भ्रमरसंबाधंनाटयन्ती) (उत्तरीयेण
मुखं पिधाय सभयम्)···

२. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका** पृ. ३९,

विदूषकः—अस्तमयाभिलाषी भगवान् सहस्ररश्मिः ।
तदेह्यभ्यन्तरमेव प्रविशावः ।।

३. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**,

राजा—हत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता ।
....
संजाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ।। २.१०

आधुनिक रंगमंच ही प्रसंगानुकूल किसी दृश्य-योजना को यथावत् रूप में उपस्थित कर पाता है।

संस्कृत नाटकों या नाटिकाओं के **दृश्य**विधान का सम्बन्ध नाटकीय कथावस्तु के विभाजन से रहता है। कथावस्तु अंकों में विभाजित रहा करती है। प्रत्येक अंक में कथावस्तु के जिस अंश का अभिनय प्रस्तुत किया जाता है, तदनुकूल दृश्य-योजना की भी अपेक्षा की जाती है। कथावस्तु का विभाजन अर्थप्रकृति, अवस्था तथा सन्धि के रूप में करने के पश्चात् दशरूपककार ने पुनः इसका द्विविध विभाजन बतलाया है—सूच्य और दृश्य-श्रव्य।[४] कथावस्तु का कुछ भाग सूचना देकर ही दर्शकों को समझाया जाता है, उन्हें रंगमंच पर प्रदर्शित नहीं किया जाता है। दूसरे प्रकार में दृश्य और श्रव्य दोनों को रखा गया है। सूच्य में कथावस्तु के उन अंशों को रखा गया है जो रसबोध से रहित हैं या जो अनुचित दृश्यवाले होते हैं जैसे युद्ध, राजपतन, मृत्यु, नगर का घेराव, आलिङ्गन, स्नान आदि।[५] ऐसे दृश्यों की सूचना किसी पात्र की उक्तियों द्वारा ही दे दी जाती है। कथावस्तु के जिन अंशों के प्रदर्शन से नाटकीय व्यापार में रस एवं भाव की प्रभावोत्पादकता उत्पन्न की जा सकती है, वे दृश्य-श्रव्य होते हैं।[६]

सागरनन्दी के अनुसार वस्तु या इतिवृत्त अंक और प्रवेशक से युक्त रहता है। अंक कथावस्तु का परिच्छेदक होता है। अतः अंकों का विभाजन नाट्य की अवस्थाओं पर विचार करते हुए अथवा बिन्दु आदि के विस्तार पर ध्यान रखते हुए करना

---

४. धनञ्जय, **दशरूपक**,

द्वेधा विभागः कर्त्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।
सूच्यमेव भवेत् किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्॥ १.५६

५. सागरनन्दी, **नाटकलक्षणरत्नकोश**,

युद्धं राज्यभ्रंशो मरणं नगरोपरोधनंचैव।
न प्रत्यक्षाणि सन्ति प्रवेशकैः संविधेयानि॥ ४१

६. धनञ्जय, **दशरूपक**,

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः॥ १.५६

चाहिए ।[७] अंकों की संख्या दस तक हो सकती है । ये रंगमंच की आवश्यकता के अनुरूप होते हैं । अंक अनेक विधानों अर्थात् प्रयोगों से युक्त तथा भाव और रस से समन्वित रहते हैं ।[८] अंक में क्रोध, प्रसाद, शोक, शाप, विद्रोह, विवाह और आश्चर्य कारी घटनाओं का संयोजन रहता है ।

अंकों के उपर्युक्त विभाजन को तथा उनमें घटित होने वाले व्यापार को ध्यान में रखते हुए दृश्योजना के सम्बन्ध में नाटककारों को स्वयं निश्चय करना पड़ता है कि कौन दृश्य कितना बड़ा हो; क्योंकि दृश्य की परिभाषा के सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है । दृश्य के परिमाण में सर्वदा दर्शकों की अभिरुचि को ध्यान में रखना अपेक्षित होता है । एक ही दृश्य को लगातार बहुत देर तक देखते रहने से दर्शक की रसानुभूति आहत हो सकती है । अतः दृश्य को थोड़े-थोड़े अन्तराल पर बदलते रहना चाहिए । दृश्य को स्वाभाविक बनाने के लिये यह भी अपेक्षित है कि सारा का सारा दृश्य दो पात्रों के वार्त्तालाप से ही भरा हुआ न हो । पात्रों की गति, उनका आवेग,[९] उनके क्रिया-कलाप आदि सभी व्यापार एक समुचित अवधि तक ही प्रदर्शित किये जायँ तथा सभी स्वाभाविक और आवश्यक हों । नाट्यकार को इसका बराबर ध्यान रखना चाहिए कि आहार्य, वाचिक, आंगिक या सात्त्विक अभिनय के माध्यम से दृश्य को आकर्षण बनाया जाय ; क्योंकि दृश्य-विधान ही वह साधन या प्रक्रिया है जिसके माध्यम से दर्शकों को रसानुभूति की दिशा में अग्रसर कराया जाता है ।

नाट्य चूंकि दृश्य भी है, अतः इसके रचनाकार का यह महत्त्वपूर्ण दायित्व हो जाता है कि वह ऐसी कृति प्रस्तुत करे जो रंगमंच पर प्रदर्शित भी हो सके । अधिक से अधिक दस अंकों में समाप्त होने वाले नाटक तथा चार अंकों में ही समाप्य नाटिका के प्रदर्शन के लिये भिन्न प्रकार के रंगमंच की व्यवस्था का संकेत

---

७. सागरनन्दी, **नाटकलक्षणरत्नकोश**, पृ. २४.

तच्चांकप्रवेशकाख्यम् इति
अंकः व्याख्यानग्रन्थस्यपरिच्छेदयिता ।
स च सन्ध्यंगवशादस्यैव नाटकस्यावस्थां
प्रसमीक्ष्य बिन्द्वादीनां विस्तरात् वा कर्त्तव्यः ।

८. सागरनन्दी, **नाटकलक्षणरत्नकोश**, पृ. २५.

नानाविधानयुक्तो भावैश्च रसैश्च गूढो भवेत्।

९. भारतेन्दु, **सत्यहरिश्चन्द्र**, अंक 4,

शैव्या विलाप

किसी नाट्यशास्त्र के रचयिता ने नहीं किया है। फिर भी अनुमान किया जा सकता है कि सामान्य प्रेक्षकों के निमित्त प्रदर्शित किए जाने वाले नाटकों एवं राजा के अन्तःपुर की परिमित राजकीय दर्शकमण्डली के लिए अभिनीत होनेवाली नाटिकाओं के रंगमंच के आकार-प्रकार में अवश्य ही कुछ अन्तर रहा होगा। नाटिकाओं के प्रदर्शन के निमित्त अन्तःपुर में लघुमंच की व्यवस्था रही होगी। राजकीय परिवार के मनोरंजन के निमित्त निर्मित इन मंचों की साज-सज्जा निश्चय ही व्यय-साध्य उपकरणों से अलंकृत होती होगी। हर्षकृत प्रियदर्शिका नाटिका में प्रेक्षागृह की सजावट का वर्णन साकृत्यायनी साश्चर्य मुग्ध भाव से करती है।[१०]

प्रेक्षा-गृह देवताओं के विमान के समान शोभित हो रहा है। इसके स्वर्ण-निर्मित स्तम्भों पर रत्न खचित है। बड़े-बड़े मोतियों के हार लटक रहे हैं। अपने सौन्दर्य से अप्सराओं को भी मात करने वाली युवतियां उसमें बैठी हुई हैं। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि अभिनयोपयुक्त वस्त्राभूषण की व्यवस्था पृथक् रूप से रहती होगी। किसी विशेष प्रकार के अभिनय के निमित्त निर्मित कभी-कभी महाराज या महारानी के द्वारा व्यवहृत आभूषणों से भी नायक अथवा नायिका की वेश-भूषा सज्जित की जाती होगी। वासवदत्ता अपने शरीर से आभूषणों को उतारकर आरण्यका को देती हुई कहती है कि इन्हीं अलंकारों को नेपथ्य-गृह में जाकर धारण कर लो। वह उदयन के द्वारा व्यवहृत बहुमूल्य आभूषणों को धारण करने के लिए दासी मनोरमा को कहती है ताकि वह महाराज की भूमिका करते समय ठीक उन्हीं के समान दीख सके।[११]

---

१०. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका,**

सांकृत्यायनी—अहो प्रेक्षणीयता प्रेक्षागृहस्य।
आभाति रत्नशत-शोभितशातकुम्भ-
स्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदामरम्यम्।
अध्यासितं युवतिभिर्विजिताप्सरोभिः
प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत्॥ ३/२

११. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अंक-३ पृ. ५३.

वासवदत्ता—आरण्यके, एतैरेव मदंगपिनद्धै राभरणै-
र्नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं प्रसाधय।
मनोरमे त्वमपि नलगिरिग्रपणहरितुष्टेन
तातेनार्यपुत्राय दत्तान्याभरणानीन्दीवरिका
—सकाशाद्गृहीत्वा नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं
मण्डय येन सुसदृशी दृश्यसे महाराजस्य।

यहां यह ध्यान देने की बात है कि नाटिकाओं की कथावस्तु के विभाजन में अंकों की संख्या का निर्धारण नाट्यशास्त्रियों ने मंच पर इनके प्रदर्शन को ध्यान में रख कर ही किया है। अन्तःपुर में ऐसे प्रेक्षकों की सम्भावना नहीं की जा सकती थी जो रात-रात भर जग कर पूरे अभिनय को धैर्य के साथ देख सकें। अतः इन नाटिकाओं का कलेवर चार अंकों में नियमतः आबद्ध करने का विधान किया गया। एक ही रूपक को थोड़ा-थोड़ा कर के कई दिनों में मंचायित करने का भी संकेत हर्ष की प्रियदर्शिका में मिलता है। दासी मनोरमा नायिका आरण्यका से कहती है कि हम लोगों को पूर्व प्रदर्शित नाटक के शेष अंश का अभिनय आज करना है। अतः आओ, प्रेक्षागृह की ओर चलें।[१२]

नाटिकाओं के शृंगार प्रधान इतिवृत्त के अनुकूल अशोकवृक्ष की पूजा एवं दोहदपूर्ति, वसन्तोत्सव, हिन्दोल आदि के अवसर पर राज्यान्तःपुर में मनोरंजन का सुन्दर अवसर उपस्थित हो जाया करता होगा। इस प्रकार के अवसरों पर राज-परिवार के सदस्यों के मनोरंजन के लिए संगीत, नृत्य, लघुरूपक आदि की व्यवस्था उद्यान में अवश्य की जाती रही होगी। ऐसे प्रदर्शनों के निमित्त किस प्रकार के मंच की व्यवस्था की जाती थी, इसका संकेत न तो किसी नाटिका में मिलता है और न नाट्यशास्त्रियों ने ही इसका उल्लेख किया है।

नाट्य में वर्णित परिवेश पर विचार करते समय रचनाकार, रचना का कथ्य और उसका रूप, पात्र और उनके क्रियाकलाप आदि का आकलन अपेक्षित हो जाता है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार परिवेश किसी व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है, उसी प्रकार व्यक्ति भी परिवेश को प्रभावित ही नहीं करता अपितु उसे अपने अनुकूल बना भी सकता है। परिवेश और व्यक्ति का यह संघर्ष काव्य ही नहीं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित होता है। व्यक्ति परिवेश को अपने व्यक्तित्व के लिये एक कसौटी मानकर उसे अपने अनुकूल बनाने में मर-मिटने के लिए प्रस्तुत हो जाता है।

इस प्रकार परिवेश के परिप्रेक्ष्य में नाट्य-कृतियों का यदि परीक्षण किया जाए तो तात्कालिक सामाजिक, राजनैतिक परिस्थिति तथा जनरुचि की प्रभाविता पर भी विचार करना अपेक्षित हो जाता है। इसका संकेत कर दिया गया है कि नाटिका

---

१२. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका, अं-३ पृ० ५१.

मनोरमा—नर्तितव्यमस्भामिस्तस्यैव नाटकस्य नर्तितशेषम्।

तदेहि प्रेक्षागृहमेव गच्छावः॥

की रचना राज-परिवार के मनोरंजन के निमित्त की जाती थी। प्रत्येक नाटिका के नायक के, जो राजा ही होता है, विलासप्रिय जीवन को चित्रित करना ही नाटिकाकार का उद्देश्य रहा होगा। यद्यपि शृंगारिक वातावरण को परिपुष्ट करने का पूर्वाग्रह लेकर लिखी गयी इन नाटिकाओं में सामाजिक या राजनैतिक परिवेश का परीक्षण विशेष अर्थ नहीं रखता है; तथापि चार अंकों में अनुस्यूत कथावस्तु में अन्तःपुर के विलासमय शृंगारिक परिवेश के अतिरिक्त भी अनेक प्रसंग आकर जुड़ जाते हैं। हर्षकृत दोनों नाटिकाओं में इसका स्पष्ट संकेत मिलता है कि किसी भी राजा को अपने पड़ोस के शक्तिशाली राजा के द्वारा अकस्मात् आक्रमण का आतंक बराबर बना रहता था। प्रियदर्शिका नाटिका के प्रथम अंक में मन्त्री रुमण्वान् उदयन के सेनापति विजयसेन के लिए 'जितविन्ध्यकेतु' विशेषण का प्रयोग गौरव के साथ करता है।[१३] विजयसेन स्वयं उक्त युद्ध-प्रसंग का सविस्तर वर्णन राजा उदयन से करता है।[१४] नाट्यकार प्रस्तुत नाटिका में उदयन के विलासी जीवन के चित्रण के आरम्भ में ही पाठकों का ध्यान उसकी धीरोदात्त प्रकृति की ओर आकर्षित करता है और उससे दिवंगत शत्रु विन्ध्यकेतु के लिए मित्र जैसी सहानुभूति प्रकट करवाता है।[१५] आरण्यका के रूप में प्रियदर्शिका को अपने मृत शत्रु की कन्या समझकर राजा

---

१३. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं० १, पृ० १२,

रुमण्वान्—(सस्मितमुपविश्य) एष खलु
जितविन्ध्यकेतु विजयसेनः प्रणमति।

१४. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**,

पादातं पत्तिरेव प्रथमतरमुरःपेषमात्रेण पिष्ट्वा
दूरन्नीत्वा शरौघैर्हरिणकुलमिव त्रस्तमश्वीयमाशाः।
सर्वत्रोत्सृष्टसर्वप्रहरणनिवहस्तूर्णमुत्खाय खड्गं,
पश्चात्कर्तुं प्रवृत्तः करिकरकदलीकाननच्छेदलीलाम्॥ १.९
एवं बलत्रितयमाकुलमेक एव
कुर्वन्कृपाणकिरणच्छुरितांसकूटः।
शस्त्रप्रहारशतजर्जरितोरुवक्षाः
श्रान्तश्चिराद्विनिहतो युधि विन्ध्यकेतुः॥ १.१०

१५. श्रीहर्ष **प्रियदर्शिका**, पृ० १६.

राजा—रुमण्वन्, सत्पुरुषोचितं मार्गमनुगच्छतो यत्सत्यं
व्रीडिता इव वयं विन्ध्यकेतोर्मरणेन।

उसके प्रति अपना वात्सल्यमय उद्गार प्रकट करते हुए महारानी वासवदत्ता को उसे (प्रियदर्शिका) अपनी भगिनी की तरह लालन-पालन करने तथा शिक्षा देने का भार सौंपता है। उदयन को धीरललित नायक के रूप में अगले अंकों में चित्रित करने के पूर्व उसकी धीरोदात्त प्रकृति का चित्रण कवि पूरे प्रथम अंक में विस्तार से कर डालता है। इसी प्रकार, रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अंक में, कोशलाधिपति को युद्ध में मार कर सेनापति रुमण्वान् ने जैसा पराक्रम दिखाया है, उसका वर्णन, विजयवर्मा उदयन से करता है।[१६] इस पर उदयन अपने दिवंगत शत्रु कोशलाधिपति के वीरोचित पराक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।[१७]

इस प्रकार प्रियदर्शिका एवं रत्नावली दोनों नाटिकाओं की कथावस्तु में ऐसे प्रसंगों का समावेश किया गया है जिनसे उदयन के व्यक्तित्व के उदात्त पक्ष का भी उद्घाटन हो जाता है। अवश्य ही कवि के अन्तर्मन में, इन नाटिकाओं की रचना की पृष्ठभूमि में, यह विचार आया होगा कि नाटिका के शृंगारिक वातावरण में नायक के व्यक्तित्व के जिस पक्ष का चित्रण होने जा रहा है, वह आलोचकों की दृष्टि में खटकेगा। रत्नावली नाटिका में नायिका को अपनी वासना की तृप्ति के लिए सुलभ बनाने की व्यग्रता में उदयन अपने अन्तःपुर की एक दासी सुसंगता का हाथ पकड़कर गिड़गिड़ाता है।[१८]

---

१६. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, पृ० १७१.

योद्धुं निर्गत्य विन्ध्याद्भवदभिमुखस्तत्क्षणं दिग्विभागा-
न्विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापीडबन्धेन रुन्धन्।
वेगाद्बाणान्विमुंचन्समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिर्निपत्य
प्रत्यैच्छद्वाञ्छिताप्तिर्द्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान्क्षणेन ॥ ४/५

१७. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं० ४, पृ० १७२

राजा—साधुकोसलाधिपते साधु। मृत्युरपि ते श्लाध्यो यस्य
शत्रवोऽप्येवं एवं पुरुषकारं वर्णयन्ति।

१८. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, पृ० ९५

राजा—(सुसंगतां हस्ते गृहीत्वा) सुसंगते, क्रीडामात्रमेवैतत्।
अकारणे त्वया देवी न खेदयितव्या। इदं ते पारितोषिकम्।
(कर्णाभरणं प्रयच्छति)

इन प्रसंगों के आकलन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति के क्रिया-कलापों पर वातावरण या परिस्थिति का प्रभाव कितना प्रबल हुआ करता है। उदयन का पराक्रमी व्यक्तित्व अन्तःपुर के शृंगारिक परिवेश में कितना संकुचित हो जाता है इसका उदाहरण उक्त दोनों नाटिकाओं में देखा जा सकता है।

इसी प्रकार, अन्य नाटिकाओं के नायकों के चरित को भी वीरोचित पराक्रम दिखाने योग्य प्रसंगों से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध कर के ही शृंगारिक परिवेश में लाने का प्रयास किया गया है। एकादश शताब्दी में रचित बिल्हणकृत 'कर्णसुन्दरी' नाटिका की प्रस्तावना के आरम्भ में एक प्रणिधि मंच पर आकर अमात्य सम्पत्कर की तीक्ष्ण बुद्धि[१९], राजभक्ति और पराक्रम का वर्णन करता है और इन्हें चक्रवर्ती[२०] बनाने के लिए अमात्य के द्वारा किये गये संकल्प का भी उल्लेख करता है। द्वादश शताब्दी की रचना 'उषारागोदया' में परम्परागत नाटिकाओं जैसी कथा का यद्यपि अभाव है फिर भी नायक अनिरुद्ध के पिता श्रीकृष्ण और नायिका के पिता महाबली बाणासुर के बीच हुए युद्ध का विस्तृत वर्णन

---

१९. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

वात्सल्यं न वहत्यपत्यविषये व्याक्षिप्यते न क्षणं
दाक्षिण्येन समीहिते नववधूवर्गेऽपि धीराशयः।
निष्णातः कुटिले नयाध्वनि चरन्नाचारपूतः प्रभो-
र्दुःसाध्यानपि साधयत्यभिमतानर्थान्सुसाध्यानिव ॥ १/१४

अपि च। अस्याश्चर्यभयस्य मन्त्रगतयः स्वैरन्तरंगैरपि।
ज्ञायन्ते न विधेरिवातिकुटिला वैदग्ध्यसीमाभुवः ॥
श्रूयन्ते प्रतिभूभृतां वसतयस्त्वङ्गत्तुरंगावली—
विश्वोत्खेलखुराग्रखण्डितमणिक्षोणीतलाःकेवलम् ॥ १/१५

किंच शेषे प्रज्ञाविशेषःस्फुरति यदि किमुच्छद्मना पद्मनाभः
संरम्भात्तेन तेन स्वयमसुरवधव्यग्रभावं दधार।
वाचामीशोऽपि सत्यं यदि विपुलमतिः श्रूयते वज्रिणःकिं
दैत्यावस्कन्दबन्दिग्रहणपरिभवश्यामला शक्रलक्ष्मीः ॥ १/१६

२०. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-१, पृ० ५,

...तेनैवंविधेन व्यतिकरेण मां प्रति भर्तुश्चक्रवर्तित्वमभि-
हितमासीत्।

मिलता है।[२१] त्रयोदश शताब्दी की अपूर्ण नाटिका 'पारिजातमंजरी' के नायक अर्जुनवर्मदेव के विशालवक्ष की तुलना पुरन्दरपुर[२२] के द्वारकपाट से की गयी है। गुर्जराधिपति जयसिंह के साथ हुए युद्ध में अर्जुनदेव की चतुरंगिणी सेना[२३] का कोलाहल एक साथ उद्वेलित सातों समुद्रों के गर्जन के समान प्रतीत होता है। इस प्रकार लगभग सभी नाटिकाओं के नायक महावीर, पराक्रमी और चक्रवर्ती होने योग्य गुणों से अलंकृत कर चित्रित किये गये हैं।

परिवेश और परिस्थिति सम्बन्धी पृष्ठभूमि पर विचार किया जाय तो इतना कहना पड़ेगा कि नाटिकाओं के रचयिता पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं। यह पूर्वाग्रह है नाटिका का अपना विलक्षण वातावरण जिसमें सभी कुछ रूढ़ हैं, परम्परामुक्त है। विवाहित ज्येष्ठा महारानी के अथवा अन्य रानियों के अन्तःपुर में रहते हुए नायक का अन्य कन्या से प्रेम-व्यापार करने के पीछे चक्रवर्त्तित्व के प्रलोभन को प्रमुख कारण बतलाना नाटिका की कथावस्तु का वह रूढ़ अंश है जिसके द्वारा नायकों को रति-लम्पट के प्रवाद से बचाने का प्रयास किया गया है।

इन रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में यदि सामाजिक या राजनीतिक वातावरण या परिस्थितियों का आकलन किया जाय तो विसंगतियों का अम्बार लग जायगा। उदाहरण के लिए एकादश शताब्दी की रचना 'कर्णसुन्दरी' नाटिका के चतुर्थ अंक में एक ओर जहां गर्जनाधिपति के साथ हुए संग्राम में नायक महाराज की विशाल सेना के पराक्रम का वर्णन करता हुआ वीरसेन कहता है कि[२४] आपकी सेनाओं के हाथियों

---

२१. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, पृ० २७,

कुमारः—(सहर्षम्) आयुष्मन् ! विस्तारेण श्रोतुमिच्छामि
सन्नाहवृत्तान्तम्।

दारुकिः—देव ! इतो भवानतिकरानुपातेनैव भगवता निरुद्धं
लोहितपुरं पुररोधामर्षितेन बहल-द्विरदपदातिस्यन्दन
—प्रस्यन्दमानया चतुरतरंग-परिरिंगमाणया
चतुरंगयानुगतेन बाणनिकरान्निकिरतातिवारितमग्रसैन्यम्।

२२. मदन, **पारिजातमञ्जरी**, अं०१ पृ० ३,

२३. मदन, **पारिजातमञ्जरी**, अं०१ पृ०२,

२४. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

गायन्तीषु सुरांगनासु मधुरं सौगन्ध्यवत्तन्मुख-
श्वासोल्लासिनि षट्पदावलिरवे वेणुध्वनिस्पर्धिनि।
धीरं वैरिकबन्धताण्डवविधौ संग्रामरंगे लसत्सेनानां
गजगर्जितेन मुरजध्वानानुकारो धृतः ॥४/१२

का गर्जन सुरांगनाओं के द्वारा गाये गए मधुर संगीत के साथ बजने वाले मृदंग की ध्वनि का अनुकरण कर रहा है, वहीं दूसरी ओर इसी अंक में यही पराक्रमी महाराज महारानी के द्वारा आयोजित विवाह-मण्डप पर अपनी धर्मपत्नी के अभिभावकत्व में ही किशोरी वेशधारी एक किशोर के साथ परिणय के लिए मंगलसूत्र पहन कर बैठे हुए है। दर्शकों-पाठकों को कठिनाई से विश्वास हो सकता है कि ऐसी भी सामाजिक स्थिति कभी रही होगी जहां सम्पूर्ण मही-मण्डल[२५] पर एकच्छत्र शासन करने वाले महाराज के साथ उसी की महारानी ऐसा परिहास कर सकी होगी और उसमें दासियों की भी भूमिका रही होगी।

परिहास के नाम पर अनेक छिछले और निम्नस्तरीय प्रसंग इन नाटिकाओं में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। ऐसा लगता है कि इन रचनाओं का सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से जुड़ा हुआ है। केवल साहित्यिक चमत्कार और कवित्व-प्रदर्शन के लिए कल्पित ऐसे-ऐसे प्रसंगों को कथानक में घुसेड़ना उचित नहीं है। सुसंस्कृत एवं शिष्ट समाज में मनोरंजन और परिहास का भी एक स्तर होता है। समाज या व्यक्ति के जीवन में जिस प्रकार के प्रसंगों का घटित होना सम्भव हो उनका ही उल्लेख साहित्यिक कृतियों में होना उचित है।

नाटिकाओं की कथावस्तु में उक्त प्रकार के परिहास को स्थान देनेवाले नाट्यकारों के पक्ष में यदि सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाय तो कहा जा सकता है कि पुरुषवर्ग में प्रचलित बहु-विवाह-प्रथा को प्रोत्साहन देने की प्रवृत्ति के प्रति नारीवर्ग का यह एक प्रकार विद्रोह है। विवाहित पुरुष अपनी सर्वगुण-सम्पन्ना पत्नी के रहते किसी अन्य सुन्दरी कन्या पर दृष्टि पड़ते ही उसे अपनी वासना-तुष्टि का साधन बनाने के लिए विवाह करने को व्यग्र हो उठता है। प्रभुत्व-सम्पन्न किसी राजा या महाराज के लिए तो यह कार्य और भी सुलभ रहा होगा। राजाओं के अन्तःपुर में अनेक रानियों के रहने का उल्लेख भारतीय साहित्य में मिलता है। 'अभिज्ञानशाकु-

---

२५. विल्हण, कर्णसुन्दरी,

दृष्टं देव्या किमपि भुवनाश्चर्यतत्त्वं महत्त्वं
लब्धा लक्ष्मीरिव मनसिजक्ष्माभुवः पक्ष्मलाक्षी।
एकच्छत्रं समजनि महीमण्डलं तत्प्रियं मे
किं स्यादस्मात्परमपि वरं यत्तु याचे भवतः॥ ४/२३

न्तल' में कालिदास ने राजा की अनेक रानियों के होने का स्पष्ट उल्लेख किया है[२६]। भासकृत 'प्रतिमा' नाटक में राजा दशरथ की तीन रानियों का उल्लेख है। 'मालविकाग्निमित्र' के अनुसार धारिणी और इरावती दो रानियां अग्निमित्र के अन्तःपुर में थीं। शकुन्तला के पति-गृह के लिये प्रस्थान करते समय महर्षि कण्व ने दुष्यन्त के नाम जो सन्देश भेजा है, उसमें राजा से शकुन्तला का संरक्षण अन्तःपुर की रानियों के समान ही करने का आग्रह किया है[२७]। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार तो महाराज दशरथ के अन्तःपुर में तीन प्रधान महारानियों के अतिरिक्त और भी बहुत सी स्त्रियां थीं।[२८]

नाटिकाओं का संसार ही शृंगारिक तत्त्वों से बना हुआ है—ऐसा संसार जहां निकट भविष्य में चक्रवर्ती होने वाला कोई सम्राट् अन्तःपुर में सुन्दरी कन्या के मोहजाल में फंसने के लिए कभी किसी दासी के सामने गिड़गिड़ाता है तो कभी पेटू विदूषक के इशारे पर नाचता है। यदि ऐसे व्यसनी महाराज को बुद्धू बनाने के लिए उसी की महारानी वैसा मखौल उसके साथ करती है तो यह सर्वथा क्षम्य है। अतः परिवेश और परिस्थिति के सम्बन्ध में विचार करते समय पाठकों को यह ध्यान में रखना होगा कि नाटिकाओं के रचयिताओं की कल्पना की उड़ान भरने की जो विशेष छूट नाट्यशास्त्रकारों की ओर से मिली थी, उसका उन्होंने भरपूर उपयोग किया है।

---

२६. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, पृ० ३२७, अं० ३,

बहुवल्लभा राजानःश्रूयन्ते ।
यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न
भवति तथा निर्वर्तय ।

२७. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेह-प्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ ४/१७

२८. वाल्मीकि, **रामायण**,

बहूनां स्त्रीसहस्राणां बहूनां चोपजीविनाम् ।
परिवादोऽपवादो वा राघवे नोपपद्यते ॥ २/१२/२७

षष्ठ अध्याय

पात्र-परिचय

नाटिका के नायिकादि पात्रों के विवेचन के पूर्व आलंकारिकों द्वारा निर्दिष्ट नायिका के भेद-प्रभेद का आकलन आवश्यक है। भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक के वस्तु, नेता और रस—ये तीन विभेदक तत्त्व माने गये हैं। रूपक के दूसरे भेदक तत्त्व नेता के अन्तर्गत नायक-नायिका का सम्पूर्ण परिवार आ जाता है।

नायिका सामान्य अर्थ में नायक की पत्नी या प्रिया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार नायिका रूपक का प्रधान स्त्री-पात्र एव शृगार रस का आलम्बन है। यद्यपि रूपक में नायक का महत्त्व है तथापि नायिका का भी स्थान कम नहीं है, विशेषकर शृंगाररसप्रधान रूपक में। नाट्याचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नायिका के चार भेदों का उल्लेख किया है—दिव्या, नृपपत्नी, कुल-स्त्री और गणिका।[1] रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाट्यशास्त्र के आधार पर ही नायिकाओं के चार भेद बताये हैं—कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया एवं पण्यकामिनी।[2] कुलजा नायिका ब्राह्मण या वणिक् तथा उदात्त प्रकृति की होती है। दिव्या नायिका दिव्यकुलोद्भवा होती है। इसी प्रकार क्षत्रिया सद्वंशोद्भूता क्षत्रियकुल की ललना होती है और प्रायः नृपपत्नी ही हुआ करती है। प्रकृति से दिव्या और क्षत्रिया नायिकाएं भी रा, ललिता और उदात्ता तीन प्रकार की होती हैं। पण्यकामिनी अर्थात् वेश्या नायिका ललितोदात्ता होती है। नायिकाओं के

---

१. भरत, नाट्यशास्त्र,

दिव्या च नृपपत्नी च कुलस्त्री गणिका तथा।
एतास्तु नायिका ज्ञेया नानाप्रकृतिलक्षणाः ।। २४/७

२. रामचन्द्र-गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण,

नायिका कुलजा दिव्या, क्षत्रिया पण्यकामिनी।
अन्तिमा ललितोदात्ता, पूर्वोदात्ता त्रिधा परे ।। ४/१९

वर्गीकरण के क्रम में धनंजय और विश्वनाथ ने नायिका के तीन प्रकार बतलाये हैं—स्वकीया, अन्या (परकीया) तथा साधारण स्त्री ।[3]

स्वकीया नायिका शीलवती, लज्जावती,[४] गृहकर्मपरा,[५] पतिव्रता होती है। अन्यस्त्री परकीया होती है । अन्यस्त्री की कोटि की नायिका दो प्रकार की हो सकती है, कन्या तथा परिणीता[६] । कन्या अजातोपयमा, लज्जावती और नवयौवना होती है ।वह पिता आदि के अधीन रहती है[७] । अन्योढा या परिणीता यात्रा आदि की इच्छुक हुआ करती है, दूसरों के प्रति प्रेमभाव रखती है और उसे किसी की संगति, वार्त्तालाप आदि में जरा भी संकोच नहीं होता[८] । रूपकादि में प्रधान रस की विवृति में परोढा का वर्णन वर्जित है; किन्तु वैष्णव सम्प्रदाय की मान्यताओं के पोषक नाट्यकारों ने अपनी नाट्यकृतियों में परोढा नायिका को शृङ्गाररस के आलम्बन के रूप में चित्रित किया है । रूपगोस्वामी की नाट्यकृतियाँ ललितमाधव तथा विदग्धमाधव की राधा इसी कोटि की नायिका है । इसके विपरीत कन्या के प्रति अनुराग के सांगोपांग वर्णन को रूपकों में पर्याप्त स्थान मिला है ; यथा मालतीमाधव, रत्नावली, प्रियदर्शिका

---

3. धनञ्जय, **दशरूपक**,

स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा । २/१५

तु० विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

अथ नायिका त्रिविधा स्वाऽन्या साधारणी स्त्रीति । ३/६८

४. धनञ्जय, **दशरूपक**,

स्वीया शीलार्जवादियुक् । २/१५

५. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया ।। ३/६९

६. धनञ्जय, **दशरूपक**,

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित् ।
कन्यानुरागमिच्छातः कुयदिङ्गाङ्गिसंश्रयम् ।। २/२०

तु० विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा । ३/८१

७. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना । ३/८३

८. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

यात्रादिनिरतान्योढा कुलटा गलितत्रपा । ३/८२

आदि में। तीसरी श्रेणी की नायिका साधारण स्त्री गणिका[९] होती है जो शिक्षित कलाचतुर, धीर, प्रगल्भा तथा धूर्त होती है।[१०]

रामचन्द्र-गुणचन्द्र, धनंजय, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में स्वीया नायिका के पुनः तीन भेद बतलाये हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा नायिका उसे कहते है जिसमें सद्यः यौवन का प्रस्फुटन तथा कामभाव का उदय हुआ है। उसे रतिलीला में झिझक होती है, उसका प्रणयकोप कोमलता से युक्त होता है और वह लज्जाशीलता के कारण प्रेम-प्रकाशन में संकोच अनुभव करती है। ऐसी नायिका को, उसके मृदु स्वभाव के कारण, प्रसन्न करना नायक के लिए सरल होता है।[११]

स्वीया नायिका का दूसरा भेद 'मध्या' है। मध्यम आयु, मध्यमकाम और मध्यममानवाली नायिका 'मध्या' होती है। सुरतानन्द से कुछ परिचित होती है। साहित्यदर्पण के अनुसार मध्या नायिका उसे कहते हैं जो वैविध्यपूर्ण रतिलीलाओं में निपुण हो चुकी होती है जिसमें काम-पिपासा बढ़ती दीखती है और जिसे प्रणयालाप में कोई विशेष हिचक नहीं हुआ करती है।[१२] नायक के प्रतिकूल आचरण करने पर

---

९. धनञ्जय, **दशरूपक**,

साधारणस्त्री गणिका कला प्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्। २/२१

१०. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

धीरा कलाप्रगल्भास्याद्वेश्या सामान्यनायिका। ३/८४

११. रामचन्द्र-गुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**,

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति त्रिविधाः स्युरिमाः पुनः॥
मुग्धा वामा रते स्वल्पमानारोहद्-वयःस्मरा। ४/२१

तु० विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा॥ ३/७१

तु० विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुःक्रुधि। २/१६

१२. रामचन्द्र-गुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**,

मध्या मध्यवयःकाममाना मूर्च्छान्त-मोहना। ४/२२

तु० धनञ्जय, **दशरूपक**,

मध्योद्यद्यौवनानंगा मोहान्तसुरतक्षमाः। २/१६

तु० विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता॥ ३/७२

वह मान प्रकट करती है। ऐसी अवस्था में उसके तीन भेद हो जाते हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा। 'धीरा' मध्या वक्रोक्ति के द्वारा नायक के हृदय को दुःखित करती है। 'अधीरा' मध्या आंखों में आंसू भर कर नायक को कठोर वचन कहती है। 'धीराधीरा' मध्या रुदन के साथ ही कठोर वचनों का प्रयोग करती है।[13]

प्रगल्भा नायिका में यौवन, क्रोध और काम अत्यन्त दीप्त रहा करते हैं। प्रिय के द्वारा स्पर्श किये जाने पर ही अचेतन सी हो जाती है।[14] मध्या नायिका के समान इसके भी तीन भेद हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा। नायक के अपराध करने पर धीरा प्रगल्भा अपना कोप दो तरह से प्रकट करती है। एक तो आवश्यकता से अधिक नायक को समादृत करके उसे लज्जित करती है एवं सुरत-क्रिया में उदासीनता प्रकट करती है। 'अधीरा' प्रगल्भा क्रोध में आकर नायक को ताड़ित भी करती है। 'धीराधीरा' प्रगल्भा कठोर वचन का प्रयोग करती है।[15]

---

१३. धनञ्जय, दशरूपक,

धीरा सोत्प्रासवक्रोक्त्या, मध्या साश्रुकृतागसम्।
खेदयेद्दयितं कोपादधीरा परुषाक्षरम्॥ २/१७

१४. रामचन्द्र-गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण,

प्रगल्भेद्धवयो-मन्यु-कामा स्पर्शेऽप्यचेतना। ४.२२

तु० धनञ्जय, दशरूपक,

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयितांगके।
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना॥ २.१८

तु० विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका॥ ३.७३

१५. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,

ते धीरा चाप्यधीरा च धीराधीरेति षड्विधा। ३.७४

तु० धनञ्जय, दशरूपक,

सावहित्थादरोदास्ते रतौ, धीरेतरा क्रुधा।
सन्तर्ज्य ताडयेत् मध्या मध्याधीरेव तं वदेत्॥ २.१९

मध्या और प्रगल्भा नायिकाओं के प्रत्येक भेद को ज्येष्ठा और कनिष्ठा उपभेदों में विभाजित किया जाता है। इस प्रकार मध्या और प्रगल्भा के भेदों की संख्या बारह हो जाती है।

इन तीन प्रकार की स्वीया, परकीया और सामान्या नायिकाओं का वर्गीकरण व्यवहार और दशाभेद के अनुसार किया जा सकता है। ये नायिकाकाएं अवस्था भेद से तथा नायक के साथ नायिका के सम्बन्धानुसार आठ तरह की होती है[१६] : (१) वासकसज्जा, (२) विरहोत्कण्ठिता, (३) स्वाधीनपतिका, (४) कलहान्तरिता, (५) खण्डिता, (६) विप्रलब्धा, (७) प्रोषितभर्तृका एवं (८) अभिसारिका।

वासकसज्जा नायिका अपने प्रियतम से मिलने के लिए अपने घर में ही सज-धजकर बैठी रहती है।[१७]

विरहोत्कण्ठिता नायिका का नायक उसके पास आने का निश्चय करके भी दैववश नहीं आ पाता है और इधर वह नायिका अपने प्रिय के नहीं आने के दु:ख से सतत व्याकुल रहा करती है।[१८]

स्वाधीनभर्तृका नायिका का प्रिय अनेकविध प्रणय-क्रीडाओं की लालसा लिये सदा उसके समीप बना रहता है।[१९]

कलहान्तरिता नायिका अतिशय क्रोध के वश होकर क्षमा मांगने के लिए झुके

---

१६. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

तत्र वासकसज्जा वा विरहोत्कण्ठितापि वा।
स्वाधीनपतिका वापि कलहान्तरितापि वा॥
खण्डिता विप्रलब्धा वा तथा प्रोषितभर्तृका।
अभिसारिका चैव इत्यष्टौ नायिका: स्मृता:॥ २२.१९७-९८

१७. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

कुरुते मण्डनं यस्या: सज्जिते वासवेश्मनि।
सा तु वासकसज्जा स्याद्विदितप्रियसंगमा॥ २/९७

१८. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

आगन्तुं कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति यत्प्रिय:।
तदनागमदु:खार्त्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा॥ ३/९८

१९. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम्।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात् स्वाधीनभर्त्तृका॥ ३/८७

हुए प्रिय का भी तिरस्कार कर देती है तथा अनन्तर अपने व्यवहार के विषय में पश्चात्ताप भी करती है।[20]

जब नायिका को, अपने नायक का किसी दूसरी नायिका से सहवास का ज्ञान हो जाये तथा इस अपराध के कारण वह ईर्ष्या से कलुषित हो उठे, तो वह खण्डिता (नायिका) कहलाती है।[21] संकेत स्थान में समय पर प्रिय के उपस्थित न होने पर विप्रलब्धा नायिका अपने आपको अत्यधिक अपमानित समझती है।[22]

प्रोषितभर्तृका को स्वामी के कार्यवश दूर देश चले जाने पर विरहावस्था झेलनी पड़ती है।[23]

अभिसारिका नायिका कामपीड़ित अवस्था में अपने प्रिय के पास दूती आदि को भेजती है अथवा स्वयं ही चली जाती है : 'अभिसारयति अथवा स्वयमेव अभिसरति' इस आधार पर अभिसारिका दो प्रकार की होती है।[24] पुनः श्वेत परिधान धारण करने पर शुल्काभिसारिका तथा कृष्ण वस्त्र से आछन्न होने पर कृष्णामिसारिका कहा जाता है। प्रायः सभी नाटिकाओं में दो प्रकार की नायिकाएं पायी जाती हैं प्रथम अनूठा-कन्या जो किसी राजन्य या उच्चकुल की होती है, कनिष्ठ होती है तथा दूसरी ज्येष्ठा नायिका स्वीया एवं प्रगल्भ प्रकृति की होने से 'स्वीया प्रगल्भा' कहलाती है। विभिन्न नाटिकाओं की नायिकाओं का विवेचन करने के पूर्व कुछ प्रमुख नाटकों की नायिकाओं के सम्बन्ध में विचार करना अपेक्षित जान पड़ता है।

---

२०. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या।
पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा॥ ३/६४

२१. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्य सम्भोगचिह्नितः।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता॥ ३/८८

२२. विश्वनाथ **साहित्यदर्पण**,

प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्या नायाति संनिधिम्।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता॥ ३/६५

२३. विश्वनाथ **साहित्यदर्पण**,

नानाकार्य्यवशाद्यस्या दूरदेशं गतः पतिः।
सा मनोभवदुःखार्त्ता भवेत् प्रोषितभर्त्तृका॥

२४. रामचन्द्र-गुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**,

सरन्ती सारयन्ती वा रिरंसुरभिसारिका॥ ४/२६

नाट्य मानव जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करने का विशिष्ट माध्यम है। यों तो सभी काव्य-विधाएं जीवन की प्रतिच्छवि प्रस्तुत करती हैं, फिर भी नाट्य अपने तकनीकी उपादानों के कारण अधिक प्रभावोत्पादक होता है। नाट्यकार की सफलता इसी पर निर्भर है कि सामाजिक सहानुभूति के क्रम में कितनी सहजता से पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अतः नाट्य में तद्गत पात्रों के व्यक्तित्व को, जिनके माध्यम से सामाजिक रस की मधुमती भूमिका तक पहुंच पाता है विशेष महत्त्व दिया जाता है।

नाट्य में मानव-जीवन की सफल संपूर्ण अभिव्यक्ति तभी सम्भव हो सकती है, जब पुरुष पात्रों के साथ ही नारी पात्रों का भी समुचित समावेश किया जाय। वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक के भारतीय साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालने से ऐसा प्रतीत होता है कि नारीवर्ग के प्रति समाज में सदा से दो प्रकार का दृष्टिकोण रहा है। एक दृष्टिकोण उन लोगों का रहा है जो नारी को समाज की विभूति मानते हैं। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'[२५], यह उद्घोष जिनने किया वे अवश्य ही नारी के महत्त्व को पहचानने वाले रहे हैं। दूसरा ऐसे लोगों का रहा है जो स्वयं तो नारी-जाति के प्रति हीन भावना से ग्रसित हैं ही, साथ ही वराहमिहिर, आपस्तम्ब, मनु आदि प्राचीन स्मृतिकारों के द्वारा नारी के संबन्ध में कहे गये आस्थापूर्ण वाक्यों को भी तोड़-मरोड़ कर नारी को हीनता के गर्त्त में डाल देने में ही अपनी बुद्धि का चमत्कार मानते हैं। संस्कृत साहित्य के स्वर्णिम युग में रचित अधिकांश नाटकों में नारीवर्ग के प्रति प्रथम दृष्टिकोण की ही प्रमुखता है। महाकवि भास और कालिदास इस दृष्टि से सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने नारीवर्ग को उचित महत्त्व प्रदान करते हुए सामाजिक जीवन में उसके सन्तुलित योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

भास ने अपने नाटकों की आधारभूत कथावस्तु को तीन स्रोतों रामायण, महाभारत और बृहत्कथा से ग्रहण किया है। इन पर आधारित भास की लगभग सभी नाट्य-कृतियों में नारी-पात्र को उसके विशिष्ट रूप में ही उपस्थापित किया गया है।

भास के समय के सम्बन्ध में अभी भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है फिर भी अधिकांश विद्वान्[२६] इन्हें ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी और ईस्वी पश्चात् दूसरी

---

२५. मनुस्मृति, ३/५६

२६. उपाध्याय बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ-४२७,
तु० गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ-५२९,
तु० कीथ, ए० बी०, संस्कृत नाटक, पृ० ८६,

शताब्दी के मध्य काल में मानते हैं। यह सम्भवतः एक ऐसा युग था जिसमें 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' की भावना समाज के संस्कार में घुली-मिली पायी जाती थी। भास की रचनाओं में चित्रित जिन नारी पात्रों के प्रति समादर एवं सहानुभूति पूर्ण भावना प्रकट होती है उन्हीं नारी पात्रों को, परवर्त्ती काल के रूपकों में अन्यथा चित्रित किया गया है। सातवीं शताब्दी के श्रीहर्ष की वासवदत्ता वही नहीं है जो भास की इससे स्पष्ट है कि कवि को प्रेरणा और दिशा-निर्देश मसाज से ही प्राप्त होते हैं। राम-कथा पर आधारित 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटकों में सीता और राम इन दोनों में जो सामंजस्य और संतुलन दिखलाई पड़ता है उससे संकेत मिलता है कि भास के युग में नारी जाति के प्रति समाज का दृष्टिकोण सम्मान-पूर्ण था। उक्त दोनों रूपकों में राम और सीता के परस्पर या अन्य पात्रों के साथ हुए अनेक संवाद हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि समाज में पुरुष और नारी दोनों की समान और आस्थापूर्ण स्थिति थी। नारी और पुरुष दोनों एक दूसरे के प्रति सहिष्णु और उदार होते थे। घर में या वन में राम और सीता के बीच जो सौहार्द और आत्मीयता है उसका आभास नीचे वर्णित प्रसंगों से मिलता है।

प्रतिमा नाटक के प्रथम अंक में, वनवास के लिए प्रस्थान करने से कुछ ही क्षण पूर्व, जब सीता के कानों तक यह दुःखद समाचार पहुंच भी नहीं पाया था, सीता अपने बहुमूल्य राजकीय परिधान एवं आभूषणों को उतार कर परिहासवश वल्कल धारण कर लेती है। राम सीता के इस कार्य को अमंगलजनक बतलाते हुए निषेध करते हैं और स्वयं उन्हें धारण करने लगते हैं। किन्तु राम के द्वारा बल्कल धारण को जब सीता[२७] अशुभ बतलाती है तो राम उत्तर देते हैं कि मेरी अर्धांगिनी होकर जब तुमने पहले ही वल्कल धारण कर लिया तो समझ लो कि मैंने भी उसे धारण कर लिया था।[२८]

उक्त नाटक के प्रथम अंक में ही, वनवास के मूल कारण महारानी कैकेयी के

---

२७. भास **प्रतिमानाटक**, अं० १, पृ० २५.

सीता—मा खलु मा खलु आर्यपुत्रः अमंगलं भणतु।

२८. भास, **प्रतिमानाटक**, अं० १ पृ० १०,

रामः—मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया॥

लिए कटु शब्दों का प्रयोग करते हुए कंचुकी[२६] और वनगमन के लिए प्रस्तुत होते हुए राम, इन दोनों के जो परस्पर संवाद हैं उनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय नारी-वर्ग के प्रति पुरुष-वर्ग में किस कोटि की सहिष्णुता विद्यमान थी। कञ्चुकी के ऐसा कहने पर कि अपने पुत्र भरत को राज्य दिलाने के लिए ही उसने आपका राज्याभिषेक रोका है, राम कहते हैं कि विवाह के अवसर पर प्रतिश्रुत राज्य यदि अपने पुत्र भरत के लिए उन्होंने मांगा है तो इसमें उनका (माता कैकयी का) लोभ आपकी दृष्टि में सिद्ध हो सकता है, मेरी दृष्टि में तो पूर्व प्रतिज्ञात राज्य भरत को नहीं देकर स्वयं राजा वन जाना ही लोभ का परिचायक है।[30] राम इससे अधिक माता की निन्दा नहीं सुनना चाहते।[31] राम की दृष्टि में कैकयी इतना कुछ करने पर भी वही है जो पहले थी। इन्द्र के समान पराक्रमी जिसका पति हो और राम जैसा पुत्र हो, भला वह किस फल के लोभ में कोई अकार्य करेगी।[32] राम का यह उदार कथन उनका व्यक्तिगत दृष्टिकोण मात्र नहीं, अपितु स्त्री वर्ग के प्रति सहिष्णु समाज के अस्तित्व का द्योतक है। इसी नाटक के षष्ठ अंक में भास ने कैकेयी के उस कलंक का मार्जन करते हुए ऋषि के शाप को उसका कारण बतलाया है।[33] कैकेयी सुमन्त्र के मुख से भरत को कहलाती है कि मैं तो सिर्फ चौदह

---

२६. भास, **प्रतिमानाटक**, अं० १, पृ०-३०.

कंचुकी—कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम्।
तस्या एव वचनात् भवदभिषेको निवृत्तः।

३०. भास, **प्रतिमानाटक**,

रामः—शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थं यदि याच्यते।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम्॥ १/१५

३१. भास, **प्रतिमानाटक**, पृ० ३२.

रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि।

३२. भास, **प्रतिमानाटक**, पृ० २९.

रामः—यस्याः शक्रसमो भर्त्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति॥

३३. भास, **प्रतिमानाटक**, पृ० १६५.

कैकेयी—जात ! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो
वनं प्रेषितः।
खलु राज्यलोभेन।
अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति।

दिनों के लिए ही वनवास मांगने वाली थी लेकिन मानसिक उद्वेग के कारण मुंह से चतुर्दश वर्ष निकल गया।[34] भास के इसी नाटक के पांचवें अंक में वनवासी जीवन बिताते हुए राम को पिता दशरथ की मृत्यु का दुःखद संवाद मिलता है। राम पिता की प्रतिष्ठा और मर्यादा के अनुकूल श्राद्ध करना चाहते हैं। किन्तु वनवास में सर्वथा अभाव-ग्रस्त परिस्थितियों के कारण वे विवश हो जाते हैं। सीता प्रबुद्ध अर्धांगिनी बन कर राम की समस्या का समाधान ढूंढ़ निकालती है। वह कहती है कि पिताजी की प्रतिष्ठा के अनुकूल श्राद्ध तो भरत करेंगे ही। आप अपनी अवस्था के अनुरूप जल और फल-मूलों से ही उनका श्राद्ध सम्पन्न कर लें। पिताजी की आत्मा को ये फल-मूल ही प्रियतर लगेंगे।[35] सीता और राम का उक्त वार्त्तालाप सामञ्जस्यपूर्ण दाम्पत्य का सुन्दर उदाहरण है। यथार्थ में यह सामंजस्य ही सामाजिक सन्तुलन की पृष्ठभूमि है।

भास के रूपकों में स्वप्नवासवदत्त विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि नाट्यकार ने इस नाटक की नायिका वासवदत्ता को जिस गरिमामय धरातल पर प्रतिष्ठित किया है, वैसा परवर्ती नाटकों में दृष्टिगत नहीं होता। नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण का परिचय वासवदत्ता के अतिरिक्त और किस माध्यम से दिया जा सकता हैं? अपने पति के अथवा उनकी प्रजा के कल्याण के लिए स्वयं को निर्वासित कर देना आत्मत्याग का चरमोत्कर्ष है। मन्त्री यौगन्धरायण के सत्परामर्श को मानकर, कठपुतली की तरह उसके संकेत पर, वासवदत्ता इसलिए चलती है कि उसी में उदयन का कल्याण निहित हैं। वासवदत्ता यह अच्छी तरह जानती है कि वह अपनी होनेवाली सपत्नी, मगध की राजकुमारी पद्मावती के संरक्षण में जा रही है। मन्त्रणा करते समय महामन्त्री ने अवश्य वासवदत्ता से स्पष्ट कह दिया होगा कि उसके कितने बड़े बलिदान की भूमिका तैयार की जा रही है। वासवदत्ता की उदारता और त्याग भारतीय साहित्य में अतुलनीय है। इस कठिन स्थिति में एक प्रेमस्निग्धा सहधर्मिणी के व्याकुल हृदय के जो कुछ भी उद्गार सम्भव हैं, उन्हें वासवदत्ता

---

३४. भास, प्रतिमानाटक, पृ० १६५.

जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया
चतुर्दशवर्षाणीत्युक्तम् ।

३५. भास, प्रतिमानाटक, अं० १ पृ० १३०.

सीता—आर्यपुत्र ! निर्वर्त्तयिष्यति श्राद्धं भरत ऋद्ध्या,
अवस्थानुरूपं फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः…।

आत्मसात् कर लेती है। वह अपने को धिक्कारती है,[३६] क्योंकि उसे स्वयं आश्चर्य है कि प्रिय की व्याकुल मनःस्थिति को देखकर भी निष्क्रिय है। उसकी दृष्टि में चक्रवाकी उससे कहीं श्रेष्ठ है जो चक्रवाक से बिछुड़ जाने पर प्राणत्याग देती है। वासवदत्ता की यह उक्ति उसकी पतिभक्ति को उजागर करती है।

सपत्नी की कल्पना ही कष्टप्रद होती है। यहां तो वह स्वयं सहायिका बनी हुई है। उसे लगता है कि उसके प्राण अब निश्चय ही निकल जायेंगे, क्योंकि उसकी आंखों के सामने ही उसका प्रिय पद्मावती के साथ विवाह-मण्डप पर बैठने जा रहा है। परन्तु वासवदत्ता में उत्कट जिजीविषा भी है। वह अभी जीवन को भोगना चाहती है। वह अच्छी तरह जानती है कि उसका यह अज्ञातवास, उसकी यह साधना उदयन के लिए ही है। वह उदयन की एक झलक पा लेना चाहती है, क्योंकि उसके घुटते प्राणों के लिए यह संजीवनी है।[३७]

विवाह के पूर्व कौतुकमाला गुम्फन के लिए फूल लेकर उपस्थित चेटी के साथ वार्त्तालाप के क्रम में उसकी मनःस्थिति का तथा एक दासी के समक्ष अपने को संयमित रखने में जिस धैर्य और आत्मबोध का जैसा परिचय मिलता है, उससे वासवदत्ता के चरित्र की उदात्तता परिलक्षित होती है। लोकाचार को ध्यान में रखकर इस प्रसंग से अभिज्ञ होने पर भी उदयन की चर्चा वह एक पर-पुरुष के रूप में ही करती है।[३८]

भारतीय नारी की जिस गरिमा को वासवदत्ता अपने त्याग और बलिदान से पुष्ट करती है, वह विरल तो है ही, साथ ही, उदयन के उद्गार भी वासवदत्ता के प्रति श्रद्धाभाव को अभिव्यक्त करते हैं। पद्मावती के साथ विवाह के अनन्तर विदूषक और उदयन का वार्त्तालाप भी, उदयन के वासवदत्ता विषयक उत्कट प्रेम का

---

३६. भास, **स्वप्नवासवदत्त**, अं० ३, पृ० ७७.

वासवदत्ता—धन्या खलु चक्रवाकवधूर्या या अन्योऽन्यविरहिता न जीवति।

३७. भास, **स्वप्नवासवदत्त**, अं०-3, पृ० ७७

वासवदत्ता—खलु अहं प्राणान् परित्यजामि।
आर्यपुत्रं पश्यामि एतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा।

३८. भास **स्वप्नवासवदत्त**, पृ० ८१.

वासवदत्ता—अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनम् श्रोतुम्

परिचायक है।[३९] यथार्थ में वासवदत्ता जैसी नारी कभी मरती ही नहीं ।[४०] नारी का ऐसा ही रूप शाश्वत होता है। भास ने वासवत्ता के चित्रण द्वारा तत्कालीन समाज में नारी के महत्त्व और गौरव को उकेरने का प्रयास किया है। भास के अनन्तर उल्लेखनीय नाट्यकार शूद्रक हैं जिनका 'मृच्छकटिक' प्रकरण ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी की रचना है। आठवीं शताब्दी के वामनाचार्य ने अपने 'काव्यालंकारसूत्र' में किन्हीं शूद्रक के प्रबन्ध की चर्चा की है[४१] और मृच्छकटिक प्रकरण की पंक्ति उद्धृतकी है।[४२] सातवीं शताब्दी के आलंकारिक दण्डी ने मृच्छकटिक के एक पद्य को अपने काव्यादर्श में उद्धृत कियां है।[४३] दूसरी ओर, स्वयं मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक ने मनुस्मृति की उक्ति का समर्थन अपने प्रकरण के नवे अंक में किया है।[४४] नायक चारुदत्त भी अपने मृत्यु-

---

३९. भास, **स्वप्नवासवदत्त**, अं० ४, पृ० ११५

विदूषक—इदानीं शृणोतु भवान्।
तत्र भवती वासवदत्ता में बहुमता।
तत्र भवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया
अकोपना अनहंकारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या।

४०. भास, **स्वप्नवासवदत्त**,

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा।। १/१३

४१. वामन, **काव्यालंकारसूत्रवृत्ति**,

शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेषु······३/२/४

४२. वामन, **काव्यालंकारसूत्रवृत्ति**,

द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम्। ४/३/२३

४३. शूद्रक, **मृच्छकटिक**,

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता।। १/३४

तु० बाणभट्ट, **कादम्बरी**, २/३६२,

४४. बाणभट्ट, **कादम्बरी**,

अयं ही पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह।। ६/३६

तु० **मनुस्मृति**,

न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेव बहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षतम्।। ८/३८

दण्ड के पश्चात् जो कुछ कहता है, उससे मनु का कथन ही स्पष्ट होता है।[४५] मनु-स्मृति ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दी की रचना मानी जाती है।[४६] मृच्छकटिक प्रथम और अन्तिम रूपक है जिसमें तत्कालीन समाज का और विशेषकर विभिन्न स्तर के नारी पात्रों का इतना सजीव और यथार्थ वर्णन मिलता है।

राजकीय परिवार के नायक और नायिका पर आधारित रूपकों में नाट्यकार घटनाओं अथवा पात्रों के चित्रण में सीमावद्ध रहता है। मृच्छकटिक चूंकि एक प्रकरण है, अतः नाट्यकार ने कल्पनाप्रसूत कथावस्तु को समाज की पृष्ठभूमि से ग्रहण किया है। फलतः इसमें पात्रों को मनोनुकूल गढ़ने की छूट रही है।[४७] इसमें समाज के विभिन्न वर्गों से पात्रों को एकत्र किया गया है। इसका नायक है चारुदत्त नाम का एक दरिद्र ब्राह्मण और नायिका है वसन्तसेना नाम की एक वेश्या। यह वेश्या होकर भी गुणग्राहिणी है। अतः चारुदत्त के गुणों से आकर्षित होकर वह उज्जयिनी नगरी के राजश्याल शकार के प्रेम निवेदन को सीधे ठुकरा देती है। संस्कृत रूपकों में पहली बार एक वेश्या को प्रकरण की नायिका बनाया गया है। वेश्या की अर्थलोलुपता प्रख्यात है। किन्तु वसन्तसेना वेश्या होकर भी पुरुष के वैयक्तिक सद्गुणों की कायल है। उत्तम कुल और शील से युक्त पुरुष यदि दरिद्र भी हो तो वह वेश्याओं के लिए वरेण्य है।[४८] नगर के राजा

---

४५. **मनुस्मृति**,

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा, दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति, नरकं चाधिगच्छति ।। ८/१२८

तु० शूद्रक, **मृच्छकटिक**,

विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे
क्रकचमिह, शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य।
अथ रिपुवचनाद्वा ब्राह्मणं मां निहंसि,
पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेतः ।। ९/४३

४६. गैरोला, वाचस्पति, **संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास** पृ० ४६७

४७. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**

भवेत् प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृंगारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः ।। ६/२५३

४८. शूद्रक, **मृच्छकटिक**,

यत्नेन सेवितव्यः पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि।
शोभा हि पण्यस्त्रीणां सदृशजनसमाश्रयः कामः ।। ८/३३

का साला दसहजार मूल्य के आभूषणों के साथ वसन्तसेना को लाने के लिए अपना रथ भेजता है। परन्तु वह इसे ठुकरा देती है और उक्त सूचना देने के लिए भेजी गई दासी को कहती है कि तुम मेरी माता से यह कह दो कि यदि उन्हें मुझे जीने देने की इच्छा हो तो ऐसा संदेश मेरे पास वे नहीं भेजें।[४९] वसन्तसेना का प्रेम एकपक्षीय नहीं है। चारुदत्त भी उसे चाहता है। वसन्तसेना में सामान्य वेश्या की मनोवृत्ति नहीं है।

तात्कालिक समाज में गणिका वर्ग के प्रति वही दृष्टिकोण है जैसा कि आज भी है। ब्राह्मण शर्विलक अपनी प्रेमिका मदनिका से कहता है कि कुलीन और धनवान् व्यक्ति का सारा धन वेश्याएं चूस लेती है।[५०] शर्विलक, वेश्याओं के साथ ही, स्त्री-सामान्य की निन्दा उसी लहजे में जम कर करता है।[५१] दूसरी ओर, किसी राजा या वणिक् के स्थान पर दरिद्र ब्राह्मण से प्रेम करने का औचित्य स्पष्ट करती हुई वसन्तसेना कहती है कि मैं चारुदत्त को चाहती हूं, क्योंकि दरिद्र पुरुष से प्रेम करने वाली वेश्या लोक में निन्दनीय नहीं होती है।[५२] प्रथम अंक में शकार से वसन्तसेना कहती है कि गुण ही अनुराग का कारण होता है, बलपूर्वक किसी का प्रेम प्राप्त नहीं किया जा सकता।[५३] चारुदत्त से प्रेम करने का कारण है उसका गुण। गुणहीन शकार धनी होते हुए भी वसन्तसेना का प्रेम नहीं पा सकता। वसन्तसेना अपने इन्हीं गुणों के कारण महान् है। सभी उससे स्नेह करते हैं। यहां तक कि चारुदत्त की विवाहिता पत्नी की भी, उसके प्रति कोई आक्रोश-पूर्ण प्रतिक्रिया नहीं होती है। चारुदत्त के परिवार के सभी लोग उसकी शालीनता के कायल हो गये हैं।

---

४९. शूद्रक, **मृच्छकटिक**, अं-४, पृ०१९८

वसन्तसेना—एवं विज्ञापयितव्या-यदि मां जीवन्तीमिच्छसि,
तदैवं न पुनरहं मात्राऽज्ञापयितव्या।

५०. शूद्रक, **मृच्छकटिक**,

शर्विलक— इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः।
निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः॥ ४/१०

५१. शूद्रक, **मृच्छकटिक**,

शर्विलक—अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे ये स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति।
श्रियोहि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजंगकन्यापरिसर्पणानि॥ ४/१२

५२. शूद्रक, **मृच्छकटिक**, पृ० ९९

वसन्तसेना—अतएव काम्यते। दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमना: खलु गणिका
लोकेऽवचनीया भवति।

५३. शूद्रक, **मृच्छकटिक**, पृ० ४८

वसन्तसेना—गुणः खल्वनुरागस्य कारणम्, न पुनर्बलात्कारः।

वसन्तसेना की वृद्धामाता की भूमिका यद्यपि बहुत थोड़ी है फिर भी उसके हृदय की विशालता झलकती है। प्रकरण के आरम्भ में इस वृद्धा ने शकार द्वारा प्रेषित उपहार को ग्रहण करने का तथा उसके प्रति प्रेम प्रदर्शन करने का आग्रह अपनी पुत्री वसन्तसेना से यद्यपि किया है तथापि नवम अंक में इसके विचार की उच्चता छिपी नहीं रहती। चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का झूठा आरोप लगाकर शकार उसे फंसाना चाहता है। न्यायालय में उपस्थित वृद्धा बहुत थोड़ा बोलती है,[५४] जिससे पता चलता है कि तत्कालीन समाज में वेश्याओं की रुचि या प्रवृत्ति उतनी घातक नहीं थी जितनी कि सामान्यतः आज समझी जाती है। वेश्याओं की नैतिक भावना भी प्रशंसनीय थी।

मृच्छकटिक के लेखक ने एक वेश्या को प्रधान नायिका की भूमिका देकर तथा इसकी गुणग्राहिता एवं उच्च नैतिक विचार की अभिव्यक्ति द्वारा नाटकीय रचना में एक क्रान्तिकारी प्रयास किया है। तत्कालीन समाज के विभिन्न पक्षों को जिस ईमानदारी से कथावस्तु की पृष्ठभूमि में उभाड़ा गया है, उसका मृच्छकटिक के पूर्ववर्ती या परवर्ती रूपकों में सर्वथा अभाव है। यदि सच पूछा जाय तो संस्कृत साहित्य में मृच्छकटिक ही एक ऐसी नाट्यकृति है जो तत्कालीन समाज का पूर्णप्रतिनिधित्व करती है। शूद्रक ने नारी की मर्यादा को महत्त्व देने के लिए ही एक वेश्या के चरित्र को इतनी प्रधानता दी है। सामाजिक कुव्यवस्था के दुष्परिणाम के रूप में एक वेश्या का जीवन बिताकर भी वसन्तसेना ने अपने व्यक्तित्व का जैसा परिचय दिया है, वह नारीमात्र के लिए आदर्श है।

भारतीय नारी में आस्थापूर्ण भावाभिव्यक्ति के लिए भास या शूद्रक ही अकेले नहीं हैं। सच पूछा जाय तो इन्होंने नारी की जिस गरिमा का स्पर्श सांकेतिक रूप में किया महाकवि कालिदास ने उसे और भी स्थिरता प्रदान की। विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र तथा अभिज्ञानशाकुन्तल—इन तीन रूपकों में सर्वाधिक आकर्षण के बिन्दु कालिदास के नारी चरित हैं। कालिदास की दृष्टि में नारी यह शब्द ही पवित्रता का पर्याय है। सर्वत्र कवि की दृष्टि नारी की कमनीयता की ओर उन्मुख है। कालिदास का नारी चरित का ज्ञान और अनुभव जितना विशाल है उतना ही सूक्ष्म भी। ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक का भ्रमण कर इन्होंने विभिन्न स्थानों और वहां के निवासियों के आचार-विचार और रहन-सहन का ज्ञान प्राप्त किया था। यही कारण है कि उन्होंने समाज के विभिन्न पक्षों पर दृष्टिपात किया और अपनी रचनाओं में उन्हें ही स्थान दिया है, जिन्हें उन्होंने निकट

---

५४. शूद्रक, मृच्छकटिक, अं-६, पृ० ४६०

वृद्धा—हताश ! यस्तदानीं न्यासीकृतं सुवर्णभाण्डं
रात्रौ चौरैरपहृतमिति तस्य कारणात् चतुःसमुद्रसारभूतां
रत्नावलीं ददाति, स इदानीमर्थकल्यवर्त्तस्य कारणादि-
दमकार्यं करोति ?...

से देखा-परखा था। समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों का एवं उनके पारस्परिक संबंध का सविस्तर विश्लेषण इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। वे राजा का चित्रण करते हैं तो साथ ही उसकी प्रजा को भी नहीं भूलते। पुरुष का अङ्कन यदि पतिरूप में होता है तो वह नारी के पत्नीरूप के साथ ही। विरक्त गृहत्यागियों का वर्णन होता है तो युद्धरत सैनिकों का भी। कहने का आशय यह है कि कालिदास की लेखनी से समाज का कोई भी कोना अछूता नहीं है। परन्तु यह ध्येय है कि कालिदास के चित्रण के विस्तृत फलक पर सर्वाधिक महत्त्व नारी वर्ग को मिला है।

कालिदास के पाठकों या दर्शकों को ऐसा अनुभव होता है कि पुरुष के बिना नारी और नारी के बिना पुरुष पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। उनकी प्रत्येक रचना में यही तथ्य सामने आता है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् तक पहुंचने का जो विश्वजनीन प्रयास सृष्टि के आदि काल से चलता आ रहा है, उसकी पूर्णता और सफलता की तभी आशा की जा सकती है, जब जीवन के मर्म को छूनेवाली दृष्टि निष्पक्ष और निष्कलुष हो। कालिदास इस तथ्य के प्रति सजग हैं। वे जीवन की पूर्णता में नारी और पुरुष दोनों को अनिवार्य इकाई मानते हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक और सहायक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है, अपूर्ण है। प्रेयस् की अपेक्षा श्रेयस् कहीं अधिक वरेण्य होता है।[५५] कालिदास की भेदक दृष्टि कवित्व के माध्यम से उस श्रेयस् तक पहुंचने का सफल प्रयास करती जान पड़ती है। उनकी रचनाओं की आत्मा का प्रखर स्वर श्रेयस् ही है।

कालिदास स्वयं साम्ब शिव के उपासक हैं। अतः उन्होंने सृष्टि की धुरी को शक्ति पर आश्रित माना है। नारी शक्ति का प्रतिनिधि है। दूसरे शब्दों में पुरुष की सर्वोच्च शक्ति नारी है। यही शक्ति पुरुष को श्रेयस् की ओर ले जाती है। अतः नारीरूपी शक्ति की प्रेरणा और सहयोग के बिना चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति भी पुरुष के लिए असम्भव[५६] है। नारी वर्ग के प्रति कालिदास की यही धारणा उनकी

---

५५. **कठोपनिषद्,**

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दोयोगक्षेमादवृ-
णीते ॥ १/२/२

५६. विहलण, **कर्णसुन्दरी,**

स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजःसर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ ॥ २/७
त्वामामनन्ति प्रकृति पुरुषार्थप्रवर्त्तिनीम्।
तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदुः ॥ २/१३

तु० कालिदास, **रघुवंश,**

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये
जगतःपितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ १/१

सभी रचनाओं में व्यक्त है ।

विक्रमोर्वशीय की प्रमुख नायिका उर्वशी स्वर्गलोक की अप्सरा है, जो पृथ्वीतल निवासी पुरुरवा नामक एक पराक्रमी राजा से प्रेम करती है । इस राजा की ख्याति पार्थिवों के बीच ही नहीं, अपितु देवलोक में भी चर्चा का विषय बन गयी है । दिव्य-देहधारी देवगण के बीच रहने वाली अप्सरा का मर्त्यलोकवासी किसी पुरुष के प्रति आकर्षण उसके दैहिक सौन्दर्य के कारण हो ही नहीं सकता । आकर्षण के एकमात्र कारण हैं उसका दिव्य पराक्रम और वैयक्तिक गुण, जो उस अप्सरा को मर्त्यलोक तक खीच लाते हैं । वैदिक कथावीज[५७] को रूपक का रूप देकर नाट्यकार ने मर्त्यलोकवासी और एक अप्सरा के प्रणयकौतुक को दिखला कर दर्शकों का रंजन ही नहीं किया है, अपितु इसका संकेत दिया है कि शक्तिरूपा नारी पुरुषार्थसम्पन्न पुरुष के प्रति आकर्षित होती है । पुरुरवा में उर्वशी ने कुछ ऐसे गुण अवश्य देखे होंगे जो दिव्यदेहधारियों में दुर्लभ हैं । लौकिक और अलौकिक पात्रों का प्रणय-संगम इसी का सूचक है । सखी चित्रलेखा के साथ उद्यान में छिपकर पुरुरवा से मिलने की उत्कण्ठा से व्यग्र उर्वशी कितनी अधीर दीख रही है ।[५८] नारी अपने लिये उपयुक्त पात्र उसे ही मानती है जिसमें पुरुषार्थ की परिभाषा शतप्रतिशत चरितार्थ हो ।

इसी नाटक के तीसरे अंक के प्रारम्भ में गालव और पेलव नामक भरतमुनि के दो शिष्यों के आलाप से पता चलता है कि उर्वशी का मन पुरुरवा के गुणगण में इस प्रकार आबद्ध हो गया है कि 'लक्ष्मी-स्वयंवर' नामक अभिनय में वारुणी बनी हुई मेनका के द्वारा पूछी जाने पर लक्ष्मी की भूमिका करती हुई उर्वशी के मुख से 'पुरुषोत्तमे' के स्थान पर 'पुरुरवसि' उच्चरित हो जाता है और इस भ्रम के कारण

---

५७. **ऋग्वेद**—मण्डल १०, सूक्त ६५,

५८. कालिदास, **विक्रमोर्वशीय**, अं-३, पृ० २०५-२०६

उर्वशी—अहो न जाने किमपरमस्या वचनमिति ।

मम पुनः विश्वास-विशदं हृदयं संवृत्तम् ॥

उर्वशी—सखि प्रियकलत्रो राजर्षिः । न पुनर्हृदयं

निवर्तयितुं शक्नोमि ।

भरतमुनि उसे शाप भी दे डालते हैं।[५९] दूसरी ओर पुरुरवा की दृष्टि भी उर्वशी की रूपराशि को देख कर चकित हो उठी है। उसे लगता है उर्वशी की तनुयष्टि आभूषणों को भी विभूषित करती हैं, शृंगार के प्रसाधन स्वयं उसके शरीर की कान्ति से अलंकृत हो जाते हैं।[६०]

'मालविकाग्निमित्र' में नाट्यकार यथार्थ और मानवीय धरातल से अपनी कृति को सम्पृक्त रखना चाहता है। उसका प्रयास है कि दर्शक इस रचना के माध्यम से वे ही दृश्य देखें जो उसके (अपने) जीवन के अङ्ग हों। मालविका, बकुलावलिका और निपुणिका दर्शक या पाठक के जीवन-परिवेश में भी जीवित रह सकती हैं।

एक बात जो ध्यान देने की है, वह यह है कि कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीय' की रचना करते समय अपने पाठकों या दर्शकों के प्रति शङ्काकुल हैं कि स्वर्ग और धरातल को एक सूत्र में बांधने वाला यह कथानक लोकप्रिय होगा अथवा नहीं। सूत्रधार दर्शकों से कहता है कि हम नम्र सेवकों पर कृपा करने या इस नाटक के नायक का आदर कर आप लोग कालिदासरचित इस नाटक को सावधान होकर देखें।[६१] वहीं, दूसरी ओर 'मालविकाग्निमित्र' की रचना करते समय कालिदास दृढ़ और आस्थावान् दिखलाई पड़ते हैं। उनके स्वर में उनका आत्मविश्वास झलकता है।

---

५९. कालिदास, **विक्रमोर्वशीय**, अं-३, पृ० १९२-१९३

पेलवः—लक्ष्मीभूमिकायां वर्त्तमानोर्वशी वारुणी-
भूमिकायां वर्त्तमानया मेनकया पृष्टा—
सखि समागता एते त्रैलोक्यसुपुरुषाः
सकेशवाश्च लोकपालाः। कतमस्मिंस्ते
भावाभिनिवेश इति।

पेलवः—ततस्तथा पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये पुरुरव-
सीति तस्यानिर्गता वाणी।

पेलवः—महेन्द्रेण पुनः प्रेक्षणावसाने लज्जावनतमुखी सा एवं
भणिता यस्मिंस्त्वं बद्धभावासि तस्य मे रणसहायस्य राजर्षेः
प्रियमत्र करणीयम्। तत्तावत्त्वं यथाकामं पुरुरबसमुपतिष्ठस्व
यावत्स त्वयि दृष्टसन्तानो भवेदिति।

६०. कालिदास, **विक्रमोर्वशीय**,

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ॥ २/३

६१. कालिदास, **विक्रमोर्वशीय**,

प्रणयिषु वा दाक्षिण्यादथवा सद्वस्तुपुरुषबहुमानात्।
शणुत जना अवधानात्क्रियामिमां कालिदासस्य ॥ १/२

प्रस्तावना में पारिपार्श्वक के द्वारा यह पूछे[६२] जाने पर कि भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि प्राचीन कवियों की रचनाओं को छोड़कर इस नवीन कृति को कौन पसन्द करेगा, सूत्रधार निर्भीक होकर उत्तर देता है कि पुरानी होने से ही न कोई वस्तु अच्छी हो जाती है और न नयी होने के कारण त्याज्य ही। विचारवान् व्यक्ति दोनों को जांच कर उनमें से जो अच्छी जंचती है, उसे ही स्वीकार करते हैं।[६३] किन्तु ऐसे लोग सर्वथा मूर्ख होते हैं जो दूसरे के कहने के अनुसार किसी वस्तु को अच्छी या बुरी मान लेते हैं।"

कालिदास की तीसरी नाट्यकृति 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की कथावस्तु का का आधार महाभारत है। इसके पूर्व दो कृतियों में उन्होंने वैदिक और ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित कथा को अभिनयात्मक रूप दिया। महाभारत की शकुन्तला अधिक प्रगल्भा और सांसारिक अनुभवों से पूर्ण जान पड़ती है, जैसा कि गर्भवती शकुन्तला का दुष्यन्त के द्वारा अस्वीकृत हो जाने वाले प्रसंग से स्पष्ट है। शकुन्तला दृढ़स्वर में दुष्यन्त से कहती है कि तुम्हारे साथ रहने या न रहने में कोई अन्तर मैं नहीं मानती हूं। किन्तु, दुष्यन्त! इतना कान खोल कर सुन लो कि तुम्हारे बिना भी मेरा पुत्र इस विशाल पृथ्वी पर शासन करेगा।[६४] कालिदास की शकुन्तला पद्मपुराण की शकुन्तला की अनुकृति है।[६५] दोनों की कथा एवं तदनुरूप घटनाओं का ग्रथन बहुत अंश में एक समान है। नाटक के सभी पात्र पद्मपुराण में भी मिलते हैं। नदी में अभिज्ञान (अंगूठी) का खो जाना, मछली के पेट से उसका पुनः निकलना, पुलिस के द्वारा मछुआ का पकड़ा जाना आदि सभी घटनाएं दोनों में समान हैं। जहां-तहां थोड़ा-बहुत अन्तर भी है, पद्मपुराण के अनुसार प्रियंवदा शकुन्तला के साथ हस्तिनापुर तक जाती है। प्रियंवदा की ही गलती से अंगूठी खो जाती है, न कि शकुन्तला की असावधानी से जैसा कि कालिदास की कृति में वर्णित है। कालिदास ने दुष्यन्त और शकुन्तला का द्वितीय

---

६२. कालिदास **मालविकाग्निमित्र**, अं-१, पृ० २६१

पारि०—मा तावत्। प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां
प्रबन्धानतिक्रम्य वर्त्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां
कथं बहुमानः।

६३. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**,

सूत्र०—पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥ १/२

६४. **महाभारत**,

ऋतेऽपि त्वां तु दुष्यन्त! शैलराजावतंसिकाम्।
चतुरन्तमिमामुर्वीं पुत्रो मे पालयिष्यति॥ १/८७/४३

६५. शर्मा, एच०, **पद्मपुराण और कालिदास**, पृ० २-३४

मिलन स्वाभाविक धरातल पर कराया है, जबकि पुराण के अनुसार मारीच के आश्रम में दुष्यन्त अपने पुत्र भरत को देखते हैं और वहीं काश्यप मुनि पहुंच कर राजा को बालक भरत का परिचय देते हैं और साथ ही दुर्वासा के अभिशाप की भी जानकारी देते हैं ।

कालिदास की शकुन्तला हमारे सामने किशोरी, वधू, निर्वासित पत्नी, माता और अन्त में दम्पति की विशिष्ट इकाई के रूप में आती है । सर्वप्रथम शकुन्तला कण्व के आश्रम के उद्यान में पुष्पलताओं को सींचती हुई दीखती है । अपने इस रूप में वह उतनी ही निर्दोष है, उतनी ही भोली है, जितनी कि तपोवनस्थली की प्रकृति । वह लता-गुल्मों से अपनों जैसा स्नेह करती है ।[६६] आश्रम में दुष्यन्त को देखकर शकुन्तला के मन में कुछ मीठी मीठी अनुभूति होने लगी है । एक ओर दुष्यन्त शकुन्तला को देखकर कहते हैं कि किसलय की तरह इसके अधर हैं, बाँहें कोमल शाखा जैसी हैं, अंगों में निखार लाने वाला तारुण्य पुष्प के सदृश मन को लुभा रहा है ।[६७] तो दूसरी ओर शकुन्तला चम्पक-लता और सहकारवृक्ष के प्रणयालिंगन को ठीक-ठीक समझने लगी है ।[६८] तरुणी पुष्पलता तरुण सहकार के उपभोगयोग्य हो चुकी है । प्रियंवदा दूसरी सखी अनसूया से मुस्कुरा कर पूछती है कि जानती हो यह शकुन्तला इतनी मगन होकर वनज्योत्स्ना को क्यों देख रही है ?[६९] और पुनः अनजान बनी अनसूया को समझाती है कि शकुन्तला के मन में है कि जैसे वनज्योत्स्ना को अपने योग्य आधार मिल गया है वैसे ही मुझे भी अपने योग्य मित्र मिल जाय ।[७०] इस प्रकार दोनों सखियों के

---

६६. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-१, पृ० १२

अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु ।

६७. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धम् ।। १/२०

६८. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-१, पृ० १४

हला, रमणीये खलु-काले एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः ।
नवकुसुमयौवनावनज्योत्स्ना बद्धफलतयोपभोगक्षमः सहकारः ।।

६९. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, पृ० १४

प्रियंवदा—अनसूये ! जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं प्रेक्षते इति ।

७०. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, पृ० १४

प्रियंवदा—यथा वनज्योत्स्ना अनुरूपेण पादपेन संगता अपि
नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति ।

मन में शकुन्तला के लिए किसी अनुरूप सुयोग्य वर की प्राप्ति की उत्कंठा घर कर गई है। दुष्यन्त को देखकर शकुन्तला सखियों से कहती है[७१] कि इन्हें देखकर मेरे मन में न जाने क्यों ऐसी उथलपुथल हो रही है, जैसी तपोवन के निवासियों के मन में होनी नहीं चाहिए। नवयौवना शकुन्तला दुष्यन्त को देखकर विकारग्रस्त होती तो है किन्तु वह तत्क्षण अनुभव करती है कि उसकी यह विकृति तपोवन की स्थिति के अनुकूल नहीं है। जो दायित्व धर्मपिता कण्व उसे सौंप गये हैं उस ओर भी वह सजग है। आश्रम के उद्यान की लताओं और वृक्षों के प्रति कण्व सर्वदा यत्नवान् रहते हैं। अनसूया स्पष्ट शब्दों में कहती है[७२] कि पिता की अनुपस्थिति में, हठात् शकुन्तला में सर्वथा अननुभूत राग का उदय हो गया है। वह भी ऐसे समय में, जब कि लता सिंचनरूप दैनिक कार्य में निमग्न रहकर पिता कण्व के आदेश का पालन करने में वह व्यस्त है। आश्रम में रहने वाले पशु-पक्षी सभी को तो उसे ही संभालना है। अनसूया और प्रियंवदा इस कार्य में उसकी सहायक मात्र हैं। आश्रम के निकट दुष्यन्त के पहुंचते ही वैखानस उन्हें सूचित कर देता है कि शकुन्तला की ग्रह-शान्ति के लिए सोमतीर्थ जाने के पूर्व ऋषि कण्व ने शकुन्तला को ही अतिथि-सत्कार का भार सौंपा है।[७३] अतिथि बने दुष्यन्त मानसिक द्वन्द्व में हैं;[७४] क्योंकि यद्यपि शकुन्तला उनसे बातें नहीं करती फिर भी जब दुष्यन्त बोलने लगते हैं तब कान लगाकर बातें सुनने लगती है और यद्यपि सामने मुंह करके नहीं बैठी है फिर भी उसकी आंखें किसी दूसरी ओर भी नहीं जातीं अर्थात्

---

७१. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-१, पृ० १२

शकुन्तला—किं नु खल्विमं जनं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयाऽस्मि संवृत्ता।

७२. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-१ पृ० १२

अनसूया—हला शकुन्तले ! त्वत्तोऽपि तातकण्वस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि येन नवमालिकाकुसुमपेलवा त्वमप्येतेषामालवालपूरणे नियुक्ता।

७३. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-१, पृ० ९

वैखानस—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः॥

७४. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

राजा—वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णंददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥ १/२९

दुष्यन्त की ही ओर लगी हुई हैं। यह है ऋषि-पुत्री शकुन्तला की मर्यादित दृष्टि, सहज मनोवृत्ति और साथ ही कालिदास के रेखाङ्कन की विशेषता।

पाठकों की इस जिज्ञासा को स्वाभाविक माना जा सकता है कि ऐसी मुग्धा शकुन्तला दुष्यन्त के साथ गान्धर्व विवाह के लिए कैसे प्रस्तुत हो गई। कवि ने चतुर्थ अंक में इस शंका का समाधान भी स्पष्ट कर दिया है। अनसूया कहती है कि कण्व का तो संकल्प ही था कि गुणवान् पात्र मिलने पर शकुन्तला का पाणिग्रहण उसके साथ कराया जाय[७५] और इसीलिए तीर्थ से लौटने के उपरान्त सारी घटना सुन लेने के पश्चात् भी कण्व में कोई विरुद्ध प्रतिक्रिया नहीं होती। प्रतिक्रिया होती भी है तो उक्त गान्धर्व-विवाह के समर्थन में ही। कण्व अपने हृदय की बात अब शकुन्तला को कह सुनाते हैं कि मैंने तेरे लिए जिस तरह के पति का संकल्प किया था, अपने पुण्य से तूने उसे अनायास ही पा लिया है।[७६] कन्या सच में, पराया धन होती है। उसे पति के घर भेजकर कण्व का मन वैसे ही निश्चिन्त हो गया है जैसे किसी व्यक्ति की धरोहर उसे लौटा देने के पश्चात् हुआ करता है।[७७] कण्व की यह उक्ति वस्तुतः दुष्यन्त की उस जिज्ञासा का समाधान है, जो आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात्, शकुन्तला के सम्बन्ध में प्रियंवदा से की गयी है कि यह कुमारी जो तपस्वी की वेशभूषा में है अपना सारा जीवन मदभरी आंखोंवाली प्यारी हरिणियों के बीच में रहकर यों ही बिता डालेगी या विवाह-पर्यन्त तक ही ऐसा रहेगी।[७८] सच पूछा जाय तो यह उत्तर कालि-

---

७५. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-८, पृ०५८

अनसूया—गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययम् तावत्प्रथमः संकल्पः।
तं यदि दैवमेव सम्पादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः।

७६. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्त्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय-
मस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः॥ ४/१३

७७. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

अर्थो हि कन्यापरकीय एव तामद्यसम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥ ४/२३

७८. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव मदिरेक्षणवल्लभाभि
राहो निवत्स्यति समं हरिणांगनाभिः॥ १/२५

दास की ओर से तत्कालीन बौद्ध एवं जैन श्रमणकों को दिया गया है, जो मठों और विहारों में, कुमारिकाओं को भिक्षुणी बना कर, प्राप्तयौवना हो जाने पर अनाचार को प्रश्रय दे रहे थे।

कालिदास की आस्था प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज की उस व्यवस्था में है जिसमें स्त्रियां पति की अर्धांगिनी बनकर जीवन बिताती हैं। दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के नहीं पहचाने जाने पर तापसी गौतमी राजा से कहती है कि इस प्रसंग में यद्यपि मेरे लिए कुछ कहने का अवसर तो नहीं है फिर भी मैं कहूंगी कि न तो इसने अपने गुरुजनों से कुछ कहा-सुना और न आपने ही इसके सगेसम्बन्धियों से कोई पूछताछ की। अतः जब आप लोगों ने आपस में ही सब कुछ तय कर डाला, तब मैं आप दोनों को भला क्या कहूं ? गौतमी का कथन मर्यादित होते हुए भी कितना तीखा है ? गान्धर्व विवाह की भी अपनी मर्यादा होती है। स्वेच्छा से सहचर या सहचरी का चयन कर के भी अभिभावक की स्वीकृति के बिना होने वाला गान्धर्व-परिणय जीवन में विषमता उत्पन्न करता है। गौतमी की बात समाप्त होते न होते मुनि-शिष्य शार्गरव राजा से कहता है कि आप तो लोकाचार की सभी बातें अच्छी तरह जानते हैं, फिर ऐसा क्यों कह रहे हैं ? जो सुहागिन स्त्री अपने पिता के घर रहती है, वह पतिव्रता होकर भी सामाजिक आलोचना का शिकार बन जाती है। उसके सम्बन्ध में लोग चटकारे ले-लेकर उल्टी-सीधी बातें किया करते हैं। अतः उस युवती के बन्धु-बान्धव यही चाहते हैं कि वह उसी के साथ रहे जिसने इसका पाणि-ग्रहण किया है।[७९] शार्गरव की इस उक्ति से स्पष्ट है कि परिवार की शक्ति का केन्द्र बिन्दु दाम्पत्य-जीवन ही है। दुष्यन्त के प्रति कण्व का संदेश शार्गरव के मुख से जिस ढंग से कालिदास ने कहवाया है उससे भी उक्त कथन का समर्थन ही होता है। वह कहता है[८०] कि आदरणीय व्यक्तियों में आप सब से प्रधान हैं और शकुन्तला भी

---

७९. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

शार्गरव—कथमिदं नाम भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णाताः।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयाम्
जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशंकते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते
प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः॥ ५/१७

८०. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

यन्मिथः समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपायंस्त
तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुतः
त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः
शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः॥ ५/१५

पुण्यक्रिया की साक्षात् प्रतिमा है। आज बहुत दिनों पर ब्रह्मा ने एक जैसे गुण वाले वर-वधू की जोड़ी रचकर अपने को दोषमुक्त कर लिया है। दुष्यन्त जैसे धर्मप्रिय राजा के अन्तःपुर में अनेक रानियों के रहते हुए भी उनके दाम्पत्य जीवन का श्री गणेश वस्तुतः शकुन्तला के साथ विवाह के पश्चात् ही विधाता ने करवाया है। दुष्यन्त के गार्हस्थ्य-जीवन की पूर्णता शकुन्तला को अपनाकर ही हो सकती है। अभिज्ञानशाकुन्तल का यह प्रसंग अनेक दृष्टि से सारगर्भित और मार्मिक है।[८१]

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल के द्वारा नारी के सामाजिक परिवेश की व्याख्या प्रस्तुत की है। भारतीय परम्परा में पत्नी के प्रति पति का आचरण सहृदयतापूर्ण होना चाहिए[८२]। पत्नी के अप्रिय वचन कहने पर भी पति की प्रतिक्रिया उग्र नहीं होनी चाहिए, क्योंकि सामाजिक पारिवारिक रीति, नियम की रक्षा उसी पर निर्भर रहती है। नारी और पुरुष की पारस्परिक निर्भरता संशयरहित है। पुरुष स्त्री का भरण करता है, इसलिए वह भर्ता है[८३]। वह उसका पालन करता है, इसलिए वह पति है। पुरुष में इन गुणों का अभाव होने पर न वह भर्ता कहला सकता है और न पति ही।

कालिदास नारी को उसके अनुरूप महिमा से मण्डित करने के लिए उत्सुक हैं। अपनी कृतियों में उनका प्रयास यही है कि समाज में इस वर्ग का समादर उसकी महत्ता और उपयोगिता के अनुपात में अवश्य होना चाहिए। साथ ही, कालिदास नारी के अन्ध समर्थक भी नहीं हैं। वे एक सजग कवि हैं और उनकी दृष्टि किसी रूप को सम्पूर्णता में देखना चाहती है। नारी अपने खण्डित रूप में महिमामयी कहलाने की अधिकारिणी नहीं हो सकती। यदि वह अपने कर्त्तव्य से स्खलित हो जाती है, तो उसे परिणाम भुगतना ही है। शाकुन्तल नाटक में दुष्यन्त और शकुन्तला का आत्मसमर्पण दो बार होता है, प्रथम बार कण्व के आश्रम में और दूसरी बार हेमकूट पर्वत पर। किन्तु दोनों समर्पण में महान् अन्तर है। प्रथम संयोग में वासना का आग्रह है, तारुण्य के कामुक आकर्षण से भरा हुआ। वनकन्या शकुन्तला दुष्यन्त जैसे सुयोग्य पुरुष पर

---

८१. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, पृ० ८६

शार्ङ्गरव—तदिदानीमापन्नसत्त्वेयं प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति।

८२. **महाभारत**,

अप्रियोक्तोऽपि दाराणां न ब्रूयादप्रियं बुधः।
रीतिं प्रीतिं च धर्मं च तदायत्तमवेक्ष्य च॥ १/८६

८३. **महाभारत**,

भरणाद्धि स्त्रियो भर्ता पालनाद्धि पतिःस्मृतः।
गुणस्यास्य निवृत्तौ तु न भर्ता न पुनः पतिः॥ १३/२५१/३५

आसक्त हो जाय यह आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु, युवती कन्या के लिए स्वयं को किसी तरुण को समर्पित करने के पूर्व अभिभावक की स्वीकृति अपेक्षित है। युवती शकुन्तला में वह धैर्य नहीं है। पिता कण्व के आश्रम में लौट आने की प्रतीक्षा करना उसके वश के बाहर की बात है। अपने भीतर के आवेग को, वासना को, वह कुछ दिनों के लिए भी दबाकर नहीं रख सकती। कण्व के हृदय को आघात पहुंचने की संभावना बिलकुल नहीं रही होगी, यह कैसे मान लिया जाय। वह तो ऋषि के विशाल हृदय की उदारता है, जिसने कुछ भी प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना ही, शकुन्तला को क्षमा कर दिया है। कण्व पिता हैं, अभिभावक हैं। युवती कन्या अपने प्रिय का वरण पिता की अनुपस्थिति में ही स्वेच्छा से कर बैठी है। कण्व के सामने दूसरा चारा भी तो नहीं है। यह सुयोग्य जामाता के मिल जाने की दृष्टि से हो अथवा अपने औदार्य के कारण। पिता कण्व तो पुत्री शकुन्तला को तत्क्षण क्षमा कर और आशीर्वचन देकर उसके भीतर की आशंका और आतंक को शांत कर देते हैं; किन्तु, आश्रम के वाहर जो इतना बड़ा संसार फैला पड़ा है और जो कालिदास जैसे कल्प-कवि की प्रतिक्रिया जानना चाहता है, उसे तो उक्त घटना का सही-सही निदान चाहिए। कण्व के आश्रम से हस्तिनापुर के राजभवन तक शकुन्तला के पहुंचने की सारी घटनाएं इन्हीं तानों-बानों से बंधी हुई हैं। आश्रम में आये अतिथि दुर्वासा की उपेक्षा, उनका आक्रोश और अभिशाप, अभिज्ञान का तीर्थ में खो जाना, भरी राजसभा में पति के द्वारा फटकारा जाना और तज्जन्य ग्लानि से भर जाना—ये सभी बातें उन्हें ही लक्ष्य कर कही गई हैं जो ठीक-ठीक उत्तर पाना चाहते है। दूसरे शब्दों में, शकुन्तला की रचना द्वारा कालिदास नारी को उसके कर्त्तव्य-स्खलन का दुष्परिणाम बतलाना चाहते हैं। दुर्वासा का अभिशाप इतना तीखा है कि उसका प्रभाव उसी क्षण से आरम्भ हो जाता है। पिता कण्व के क्रोध से तो शकुन्तला बच निकलती है किन्तु दुर्वासा का क्रोध उसका पीछा नहीं छोड़ता। शकुन्तला के प्रायश्चित का अन्त हेमकूट पर दुष्यन्त के साथ उसके पुनर्मिलन में होता है। वहीं विश्व पिता मारीच दुष्यन्त से कहते हैं कि जव मेनका रोती हुई शकुन्तला को लेकर, अप्सरा तीर्थ से उतर कर यहां दाक्षायणी के पास आयी, तभी मैंने समझ लिया था कि दुर्वासा के शाप के कारण ही तुमने अपनी इस पत्नी का प्रत्याख्यान किया था।[८४] हेमकूट पर पुत्र भरत, माता शकुन्तला और पिता दुष्यन्त तीनों के इस मिलन को कालिदास ने एक अद्भुत संगम

८४. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अंक-७, पृ० १४६

मारीच :— यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात्प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथेति।

बना दिया है। मारीच कहते हैं कि सौभाग्य से आज आप तीनों एकत्र हुए हैं मानो श्रद्धा, धन और क्रिया-तीनों एक साथ मिल गये हों।[८५] इस प्रकार, अन्ततः शकुन्तला अपने समुचित पद पर पहुंच पाती है। मारीच के शब्दों में इन्द्र के समान उसका पति है और जयन्त के समान उसका पुत्र है।[८६]

ऊपर इसका संकेत किया जा चुका है कि द्वितीय बार के और प्रथम बार के मिलन में अन्तर है। प्रथम मिलन का आधार है नायक-नायिका की दैहिक वासना। वह मिलन गोपनीय है और इसे शकुन्तला की दोनों सखियों के अलावा और कोई नहीं जान सका है।[८७] अतः पिता के कोप की आशंका की छाया उस प्रेम-व्यापार पर है।

शकुन्तला कण्व के क्रोध की कल्पना कर आतंकित है तो दुष्यन्त मुनिशाप की कल्पना से। कण्व जैसे ऋषि की कन्या के साथ सम्बन्ध करने के पहले राजा को अत्यन्त साहस बटोरना पड़ा होगा। अन्ततः शकुन्तला की ओर उन्मुख मन पर दुष्यन्त का वश नहीं रह जाता।[८८] पहला मिलन वासना प्रेरित है। इनका फल दोनों को भुगतना भी पड़ता है। इसके विपरीत दूसरा मिलन आदर्शोन्मुख है। कठोर यातनाओं ने दोनों को विशुद्ध बना दिया है। पहली बार दोनों का जो मिलन हुआ है, वह पार्थिव है, असत्य है। किन्तु दूसरा मिलन आत्मिक है, तपःपूत है।[८९]

---

८५. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम्।। ७/२९

८६. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

आखण्डलसमो भर्त्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव।। ७/२८

८७. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, पृ० १८, १९

हला शकुन्तले, यदि अत्र अद्य तातः संनिहितो भवेत्।

....

इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं करिष्यति।

८८. कालिदास **अभिज्ञानशाकुन्तल**,

राजा—न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्। मम हि
—गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य।। १/३२

८९. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, पृ० १४९

राजा— भगवन्, यथाशक्ति श्रेयसे यतिष्ये।

कालिदास के परवर्त्ती महाकवि भवभूति [९०] के तीन रूपक मिलते हैं —(१) महावीरचरित (२) मालतीमाधव तथा (३) उत्तररामचरित। महावीरचरित और उत्तररामचरित की कथावस्तु वाल्मीकिरचित रामायण से ग्रहण की गयी है। 'मालती-माधव' एक प्रकरण है अतः इसकी कथावस्तु कविकल्पित है। महावीरचरित में भवभूति ने राम के राज्याभिषेक तक के अंश को ग्रहण किया है। इसमें इन्होंने राम को एक पराक्रमी योद्धा नायक के रूप में अंकित कर उनके महावीर रूप का परिचय दिया है।

सम्भवतः भवभूतिकालीन समाज में नारी का स्थान उतना विशिष्ट नहीं रहा होगा जितना कि कालिदास के काल में। अतः भवभूति राम के चरित्र के अनुपात में सीता के चरित्र को उदात्त नहीं बना पाये हैं।

भवभूति के नारीपात्र में द्विविधता दिखलाई पड़ती है। एक ओर सीता, ऊर्मिलातथा राजमाताएँ हैं, जो आर्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। तो दूसरी ओर शूर्पणखा, त्रिजटा, मन्दोदरी, श्रमणा, लंका आदि हैं जो अनार्य वर्ग की हैं। प्रथम वर्ग की महिलाएं विनम्र, शिष्ट और धर्मप्रिय हैं, जबकि दूसरे वर्ग की नारियां साहसी, राजनीति में दखल देने वाली तथा योजना-निर्माण में पटु जान पड़ती हैं।

महावीरचरित में जहां तक सीता का प्रश्न है, भवभूति ने इसके चित्रण में नवीनता ला दी है। रामायण से ली गयी कथावस्तु को अपनी प्रतिमा से सर्वथा नवीन रूप में ढाल देना भवभूति जैसे क्रान्तिकारी कवि से ही सम्भव है। इतना ही नहीं सीता, ऊर्मिला और शूर्पणखा तीनों को इन्होंने इस नाटक में ऐसे परिवेश में चित्रित किया है कि ये पात्र सर्वथा नये जान पड़ते हैं। वाल्मीकि, भास, कालिदास सभी ने राम और सीता दोनों के चरित्र को समान रूप से महत्ता दी है, दोनों पात्रों के प्रति अपनी श्रद्धा और प्रतिभा के सुमन निष्पक्ष होकर अर्पित किये हैं। किन्तु प्रस्तुत नाटक में आशंका और मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त, सीता अब तक की सभी रचनाओं में चित्रित सीता से विलक्षण दिखाई पड़ती है। महावीरचरित की सीता अपने पति राम को युद्ध में जाने से विमुख करने के लिए उद्यत हो जाती है। भार्गव की चुनौती को स्वीकार कर युद्ध-क्षेत्र के लिए तत्पर होते हुए राम के सामने सीता खड़ी हो जाती है। राम को युद्ध में जाने से रोकने का भरसक प्रयास करती है। इतना ही नहीं, सीता की सखियां और दासियाँ भी सीता को इस कार्य में प्रोत्साहन ही देती हैं। सीता जब यह समझ जाती है कि अनुनय-विनय से राम मानने वाले नहीं हैं

---

९०. कीथ, ए० बी०, संस्कृतनाटक, पृ० १९२

भवभूति का समय ७०० ई० के आस-पास मानना चाहिए।

तो वह उनका प्रिय धनुष पकड़ कर रोकने को तत्पर हो जाती है ।[६१] किन्तु राम सीता की इस दुर्बलता से आक्रान्त नहीं होते और एक महान् वीर की तरह युद्ध भूमि की ओर चल पडते हैं । सीता के इस व्यापार को रेखाङ्कित करने के पीछे कवि की दृष्टि में नारी का वह वर्ग रहा होगा जो भोग-प्रधान दैहिक सुखों के लिए अपने प्रिय की कर्त्तव्य-विमुखता को दोष नहीं मानता । यों राजर्षि जनक की पुत्री और महापराक्रमी राजा दशरथ की पुत्रवधू तथा राम की पत्नी सीता में ऐसी सामान्य दुर्बलता काम्य नहीं प्रतीत होती । जब राम और भार्गव का युद्ध अवश्यंभावी प्रतीत होता है तो जिस ढंग से सीता और ऊर्मिला से अन्तःपुर में जाने के लिए आग्रह किया जाता है[६२] और अन्ततः उन्हें भेज भी दिया जाता है, उससे यह स्पष्ट है कि पुरुषवर्ग ऐसे अवसर पर नारी को अपने से बिलकुल अलग ही रखना चाहता है, अन्यथा वह दुर्बलता बन कर मार्ग में अवरोध उत्पन्न न कर दे ।

इस नाटक में नारी का एक अन्य वर्ग भी है जिसमें पर्याप्त प्रौढ़ि है । इस वर्ग की नारी शिक्षिता जैसी बातें करती हैं, बेरोकटोक ,कहीं भी आ जा सकती है तथा राजनीति एवं प्रशासन के मर्म को समझती भी है । वाल्मीकि की शूर्पणखा और भवभूति की शूर्पणखा में महान् अन्तर है । वाल्मीकि की शूर्पणखा रावण की सभा में अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखती है । महावीरचरित की शूर्पणखा लंकेश की भगिनी होकर भी राजकीय व्यवस्था के लिए दूर-दूर तक आने-जाने का साहस रखती है । यहाँ तक कि शत्रु के शिविर में भी निर्भय भाव से पहुंच जाती है । युद्ध से आतंकित होने वाली सीता अथवा ऊर्मिला से, दक्षिणापथ की यह शूर्पणखा विलक्षण है । इसका इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है कि संकट काल में इसके साथ मन्त्रणा और परामर्श करने के लिए रावण तथा मन्त्री माल्यवान् इसे बुलाते हैं । माल्यवान्को शूर्पणखा की बुद्धि पर पूर्ण आस्था है । इसलिए वह हृदय खोलकर अपनी कठिनाइयों को शूर्पणखा के समक्ष

---

६१. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-२, पृ० ७६

सीता—का गतिः (धनुषिधारयन्ती) आर्यपुत्र ! न तावद्यु-
ष्माभिर्गन्तव्यं यावत्तातो नागच्छति ।

६२. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-२, पृ० ७८

रामः—प्रिये ! स्वस्था सती निवर्तस्व ।
आतंकश्रमसाध्वसव्यतिकरोत्कम्पः कथं सह्यता-
मंगैर्मुग्धमधूकपुष्परुचिभिर्लावण्यसौरस्यम् ।
उन्नद्धस्तनयुग्मकुड्मलगुरुश्वासावभुग्नस्य ते
मध्यस्य त्रिवलीतरंगकजुषो भंग प्रिये मा च भूत् ॥

रखता है।[६३] शूर्पणखा रावण के शासन में अनेक रूप में हाथ बंटाती है। वह राजकीय गुप्तचर का कार्य करने के लिए दूर-दूर तक पहुंच जाती है। रावण के स्वभाव और संस्कार का ज्ञान भी उसे पूर्ण रूप से है। रावण ने सीता को अपने यहां लाकर अच्छा काम नहीं किया है, सीता राक्षसकुल के लिए विनाश का कारण होगी इस बात को रावण के सभी बन्धुबान्धव समझ रहे हैं। शायद रावण की विवेक-शीलता पर बहुतों को विश्वास भी है कि वह सीता को अन्त में लौटा देगा। किन्तु शूर्पणखा की दृढ़ धारणा है कि ऐसा होने को नहीं। वह अपने अग्रज के हठी स्वभाव से पूर्ण परिचित है। अतः वह जोरदार शब्दों में इसका विरोध करती है।[६४]

सीता जब कुमारी ही थी उसी समय रावण ने अपना दूत भेज कर महाराज जनक से सीता को मांगा था। किन्तु हुआ इसके विपरीत। रावण के बदले सीता मिली राम को। इसका प्रतिशोध लेने के लिए रावण की ओर से जो योजनाएं बनायी गयीं, उनमें शूर्पणखा को महत्त्वपूर्ण भूमिका दी गयी। माल्यवान् शूर्पणखा को राम के द्वारा शिवधनुष के तोड़े जाने की सूचना परशुराम को देकर उन्हें राम के साथ युद्ध के लिए उभाड़ने का काम सौंपता है।[६५] पुनः आगे चल कर, शूर्पणखा को ही महारानी कैकेयी की दासी मन्थरा बन कर, राम के वनवास की योजना में सहायक होने को

---

६३. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-४, पृ० १४६

माल्यवान्—रावणप्रियासि वत्से !

कार्यज्ञा च, अतो निःशंकमावेद्यते हृदयखेदः।

६४. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-२, पृ० ६२

शूर्पणखा—कः सन्देहः ! यथादशमुखोऽपीषन्मुकुलैर्दृष्टिविशेषैर-
पह्रियमाणलोचनो नववदनो वर्तते, तथा जानामि
दारुणोऽस्य हृदयदुर्मानि एवं न विरमतीति॥

६५. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-२, पृ० ६६

माल्यवान्— परशुरामोत्तेजनं कर्तव्यमिति।
शूर्पणखा— पक्षान्तरे महादोषः।
माल्यवान्— तत्रापि शक्तिवः प्रतिविधास्यते किन्तु-
तान्येव यदि भूतानि ता एव यदि शक्तयः
ततः परशुरामस्य न प्रतीमः पराभवम्॥

कहा जाता है,[९६] जिसका विरोध वह राजनैतिक दृष्टि से करती है। वह कहती है कि मुझे ये दोनों ही बातें नीतिविरुद्ध जान पड़ती हैं। एक तो, दूर अयोध्या में रहने वाले अपने शत्रु दाशरथि राम को स्वयं ही निकट बुलवाना और दूसरे, स्त्री के लिए शत्रुता को बढ़ावा देना।[९७] शूर्पणखा की दृष्टि कितनी पारदर्शी है, यह उसकी इस उक्ति से स्पष्ट है कि मान लिया जाय कि राम ने जिस प्रकार भार्गव को परास्त किया था उसी प्रकार बालि को भी युद्ध में वे मार डालें लेकिन इसके बाद क्या होगा यह आप लोग सोचते हैं? इसकी परिणति यह होगी कि विभीषण राम से जा मिलेगा और दोनों मिल कर हम लोगों पर कहर ढा देंगे।[९८] शूर्पणखा का सत्परामर्श नक्कारखाने में तूती की आवाज बन कर रह जाता है। अन्ततः वह एक सच्चे राजभक्त की तरह अपने गन्तव्य पर उत्तर दिशा की ओर चल पड़ती है। इस प्रकार वाल्मीकि के रामायण और महावीरचरित दोनों की शूर्पणखा में आकाश-पाताल का अन्तर है। रामायण की शूर्पणखा एक कामुक युवती है जो राम के सौन्दर्य और तारुण्य पर मुग्ध हो जाती है।[९९] वासना के आवेग में पागल बन जाती है। इसके विपरीत भवभूति की शूर्पणखा लंकेश के महामन्त्री माल्यवान् को भी परामर्श देने की क्षमता से सम्पन्न एक बुद्धिमती तरुणी है। राजकीय कार्य की सिद्धि के लिए वह कहीं भी चाहे वह शत्रु

---

९६. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-४, पृ०१७७

शूर्पणखा—(स्वगतम्) आविष्टामि मन्थराशरीरे शूर्पणखा।
रामः—(उपसृत्य) अयि मन्थरे, अपि कुशलमम्बायाः
शूर्पणखा—कुशलं सुखं च। सा ··· आज्ञापयति—'पुत्रक!
पुरा प्रतिज्ञातौ द्वौ वरौ महाराजं ज्ञापयामि।
तत्र मे विज्ञप्तिहारको भव'। एष ते तातस्य कार्यलेखः॥

९७. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-४, पृ० १४६

शूर्पणखा—मम तु द्वयमेवैतन्न युक्तं प्रतिभाति यद्दूरस्थितस्य
दाशरथेःसन्निधानकरणम्, यच्चानाबद्धवैरस्याप्रति-
समाधेयं स्त्रीवैरमिति।

९८. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-४ पृ० १५४,

शूर्पणखा—अथ परशुराममिव राघवो जनितविरोधं वालिनं
व्यापादयति तदा रामविभीषणसंयोगेऽनर्थं इति सम्भावयामि॥

९९. वाल्मीकि, **रामायण**,

राममिन्दीवरश्यामं कन्दर्पसदृशप्रभम्। ३/१८/८
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता। ३/१८/९

की छावनी हो या युद्ध का क्षेत्र, जाने को प्रस्तुत एक साहसी नारी है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि शूर्पणखा राम और बाली की घटना का उल्लेख जिस रूप में वाल्मीकि रामायण में मिलता है, उस रूप में परवर्ती संस्कृत साहित्य में नहीं है। भास ने रामकथा से सम्बद्ध अपनी रचनाओं में शूर्पणखा वाले उस अंश को स्थान नहीं दिया है। कालिदास ने भी शूर्पणखा से सम्बन्धित अंश को प्रश्रय नहीं दिया है जबकि भवभूति ने महावीरचरित-नाटक में शूर्पणखा को एक आदर्श भूमिका में प्रतिष्ठित किया है जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। रामायण के अनुकरण पर शूर्पणखा वाली घटना का उसी रूप में चित्रण शक्तिभद्रकृत आश्चर्यचूड़ामणि नामक कृति में मिलता है।

अपने नाटक में भवभूति ने अनेक साहसपूर्ण उद्भावनाएं की हैं। परम्परा से कट कर शूर्पणखा के चरित्र को एक विलक्षण परिवेश में लाना महाकवि का क्रान्तिकारी प्रयास है। शूर्पणखा की तरह साहस दिखलाने वाली एक अन्य नारी पात्र श्रमणा भी राजनयिक कार्य में निपुण जान पड़ती है। वह विभीषण और राम के बीच एक कड़ी का काम करती है।[१००] वह सुग्रीव और बाली के सम्बन्ध में राम को सूचना देती है और राम तथा लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत तक पहुंचाती है।[१०१] कुबेर की नगरी अलका की अधिष्ठात्री उसी नाम की देवी की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

यह सम्भव है कि दाक्षिणात्य प्रदेश की इन नारियों के प्रति भवभूति का यह उदारवादी दृष्टिकोण उत्तर भारत के तत्कालीन विद्वानों को अच्छा नहीं लगा हो और महावीरचरित की रचना के रूप में महाकवि की क्रान्तदर्शिनी विचारधारा का समादर उस समाज में उचित रूप में न हुआ हो। रामकथा के उक्त अंश में क्रान्तिकारी परिवर्तन के कारण तथाकथित विद्वानों के द्वारा कवि की मौलिक रचना के प्रति उपेक्षा

---

१००. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-५, पृ० २१४

श्रमणा—स च यदैवदैवात्खरदूषणत्रिशिरसो
विनिहतास्तदैव बन्धुभ्यः कस्यापि हेतोश्चगृह्य
सुग्रीवसख्या ऋष्यमूके तस्यायमात्मसमर्पकोलेखः (इति
लेखमर्पयति)

लक्ष्मणः—(गृहीत्वा वाचयति) स्वस्ति, रामदेवं प्रणम्य विभीषणो
विज्ञापयति विशिष्टभागधेयानां द्वयी नः परमागतिः।
धर्मप्रकृष्यमाणो वा गोप्ता धर्मस्य वा भवान्॥ ५/३०

१०१. भवभूति, **महावीरचरित** अं-५, पृ० २२३

श्रमणा—ऋष्यमूकपम्पापर्यन्तभूमयः खल्वेताः,
तथा चाग्रतो मतंगाश्रमपदम्।

का भाव ही मालतीमाधव प्रकरण के प्रारम्भिक पद्य में व्यक्त हुआ है।[१०२] कवि को पूर्ण विश्वास है कि काल की अनन्त परिधि में उसकी धारणा का अनुमोदन करने वाला व्यक्ति कहीं न कहीं अवश्य जन्म ग्रहण करेगा। इतनी विशाल पृथ्वी की सार्थकता अन्यथा कैसे सिद्ध होगी।

महाकवि ने तत्कालीन विद्वानों के द्वारा अपनी उपेक्षा के कारण जो उग्रभाव प्रकट किया है, उसे वह एक सीमा तक ही निभा सका है। कदाचित्, कवि समाज की अभिरुचि के प्रतिकूल जाने का साहस बटोर नहीं पाया है। वह पुनः एक बार परम्परावादी लीक का अनुसरण करता दीख पड़ता है। एक कारण यह हो सकता है कि रूढ़ि या परम्परा पर शनैःशनैः आघात करना उद्देश्य रहा होगा। अतः महावीरचरित की रचना के पश्चात् परम्परा प्राप्त प्रेमकथा पर आधृत मालतीमाधव की रचना कवि ने की है। किन्तु, अपनी क्रान्तिकारी चिन्तनधारा को अधिक दिनों तक दबा कर रखना कवि के लिए अशक्य हो गया होगा। अतः उसकी लेखनी उत्तररामचरित जैसी विशिष्ट कृति के सर्जन के लिए तत्पर हो उठती है, जिसमें राम और सीता दोनों के उदात्त चरित्र को नये परिवेश में चित्रित किया गया है। तीनों रूपकों की रचना के इस प्रकार के पूर्वापरक्रम के पीछे यही रहस्य है।

भवभूति एक कालज्ञ नाट्यकार हैं। महावीरचरित में उनकी मौलिकता का तत्कालीन समाज ने यदि यथोचित आदर नहीं किया, तो इससे वे हताश नहीं हैं। अनभिज्ञ समाज को क्या चाहिए इस पर उन्होंने विचार किया और उच्च मध्य परिवार के सामान्य नायक और नायिका के प्रेमव्यापार को विषय बनाकर मालतीमाधव प्रकरण की रचना की। इसकी नायिका मालती है जो पद्मावती नरेश के राजमंत्री भूरिश्रवा की पुत्री है। नायक का नाम है माधव जो विदर्भनरेश के अमात्य देवरात का पुत्र है। इन्हीं दोनों के प्रेम-व्यापार और अन्ततः दोनों के परिणय को इस प्रकरण का विषय बनाया गया है। हमारा ध्यान इस प्रकरण के नारी पात्रों में से कामन्दकी की ओर जो बौद्ध-भिक्षुणी है, बरबश चला जाता है। इसी के प्रयास से मालती और माधव दोनों का संयोग सम्भव हो पाता है। यद्यपि कामन्दकी को बौद्ध संन्यासिनी के रूप में चित्रित किया गया है और बार-बार

---

१०२. भवभूति, मालतीमाधव,

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।। १/६

उसे भगवती कह कर सम्बोधित किया गया है ;[१०३] तथापि दो प्रेमी हृदयों का मिलन ही जैसे उस कमंडलु-धारिणी के जीवन का व्रत रहा हो, ऐसा जान पड़ता है । ऐसा लगता है कि दो सच्चे प्रेमियों की सहायिका बनकर वह लौकिक जीवन में भी कुछ कर लेना चाहती है । उसकी अपनी शिष्याएं भी लौकिकता से अनभिज्ञ नहीं हैं । युवती संन्यासिनी सौदामिनी पूर्ण सांसारिक है । वह मन्त्री भूरिवसु के प्राणों की रक्षा करती है । कामन्दकी उसके इस महान् कार्य के लिए साधुवाद देती है ।[१०४] सम्भवतः भवभूति योगिनियों के इस वर्ग के कार्य-कलाप के द्वारा यह दिखलाना चाहते हैं कि बौद्ध-धर्म के पक्षधर आठवीं शताब्दी तक आते-आते किस प्रकार की हीन स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं । कामन्दकी का तो अस्तित्व ही जैसे दूसरों के प्रणय और परिणय का संघटन कराने के लिए हो । वह मालती को प्राचीन आख्यान सुनाकर उसके पिता भूरिवसु के विरुद्ध उभाड़ती है ।[१०५] वह कहती है कि शकुन्तला, वासवदत्ता या उर्वशी सभी ने स्वेच्छानुसार आचरण किया है न कि पिता या अभिभावक के आदेश का पालन ।

प्रेम-प्रधान इस प्रकरण में भवभूति ने जिस एक तत्त्व पर जोर दिया है, वह है

---

१०३. भवभूति, **महावीरचरित**, अं-३, पृ० १३५

माधव—अपरिमेयाश्चर्यमाचार्यकं भगवत्याः ।

तु० भवभूति, **महावीरचरित**, अं०-३, पृ० १३६

लवंगिका—शोभनं भगवत्याऽज्ञप्तम् ।

तु० भवभूति, **महावीरचरित**, अं-४ पृ० १४५

माधव—दिष्ट्या, अनुकम्पितोऽस्मि भगवत्या ।

१०४. भवभूति, **मालतीमाधव**,

कामन्दकी—एह्येहि भूरिवसुजीवितदानपुण्य-
संभारधारिणि ! चिरादसि हन्त दृष्टा ।
दत्त प्रमोदमभिनन्दय मे शरीर-
मालिंग्य सौहृदनिधे ! विरम प्रणामात् ॥ १०/२०

१०५. भवभूति, **मालतीमाधव**, अं-२, पृ० १११

कामन्दकी— अयि सरले, किमत्र भगवत्या शक्यम् ।
प्रभवति प्रायः कुमारीणां जनयिता दैवंच ।
यच्च किल कौशिकी शकुन्तला दुष्यन्तमप्सराः
पुरुरवसं चकम उर्वशीत्याख्यानविद आचक्षते,
वासवदत्ता च पित्रा संजयाय राज्ञे दत्तमात्मान-
मुदयनाय प्रायच्छदित्यादि, तदपि
साहसकल्पमित्यनुपदेष्टव्यमेव ।

दाम्पत्य-भाव। कामन्दकी जब मालती और माधव को प्रणय-सूत्र में बांध देती है तो वह दोनों को आशीर्वचन के रूप में कहती है कि स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिये पत्नी एक दूसरे के लिए प्रेमी, मित्र, बन्धु, निधि और यहां तक कि जीवन के सर्वस्व होते हैं।[१०६]

इस प्रकार उक्त दोनों रचनाओं से तत्कालीन समाज में नारी वर्ग की रुचि, प्रवृति का पर्याप्त परिचय मिलता है। उस काल में स्त्रियों का समाज में विशेष महत्त्व का स्थान नहीं था। महावीरचरित की सीता अथवा उर्मिला, मालतीमाधव की मालती या मदयन्तिका सभी युवतियां विवाह के योग्य अवस्था को प्राप्त कर चुकी है, लेकिन इनके शिक्षित होने का कोई संकेत नहीं मिलता है। राजकीय अथवा श्रेष्ठ उच्च परिवार की होकर भी इनका साधारण परिवार की बालिकाओं से कुछ विशेष महत्त्व नहीं जान पड़ता है। राजा विदेह की कन्या और सूर्यवंशी राम की पत्नी होकर भी युद्ध के नाम से ही कांप उठने वाली महावीर चरित की सीता कोई आस्था उत्पन्न नहीं कर पाती।

तत्कालीन समाज की दूसरी विशेषता, परिवार में वयस्कों की इच्छा की प्रमुखता है। मालती और माधव दोनों के गान्धर्व विवाह के पूर्व घटनाओं का ताना-बना इस ओर संकेत करता है कि माता-पिता की इच्छा के प्रतिकूल कुमारी युवती अपने विवाह की कल्पना नहीं कर सकती। पद्मावती-नरेश अपने प्रिय मन्त्री नन्दन के लिए भूरिवसु से उसकी कन्या मालती की मंगनी करना चाहते हैं। मालतीमाधव के रूपक के दूसरे अंक में दासियों की बातचीत के क्रम में एक दासी कहती है कि मालती का कल्याण कहां! आज सबेरे ही नन्दन के लिए मालती की मांग करने वाले महाराज को मन्त्री भूरिवसु ने कहा है कि अपनी कन्या के विषय में महाराज की इच्छा ही सर्वोपरि है। इस प्रकार माधव के प्रति मालती के अनुराग की परिणति सुखदायिनी न होकर मरणपर्य्यन्त उद्वेजक बन कर रह जायगी।[१०७]

तात्कालिक समाज में स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीनता के व्याप्त रहने पर

---

१०६. भवभूति, **मालतीमाधव**,

प्रेयो मित्रं, बन्धुला वा समग्रा सर्वे कामा, शेवधिर्जीवितं वा।

स्त्रीणां भर्त्ता, धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु।। ६/१८

१०७ भवभूति, मालतीमाधव, अं० २ पृ० ८६

द्वितीया—कुतः खल्वस्या आश्वास :!

...कल्य एव नन्दनस्य कारणान्महाराजो

भर्तुदारिकां प्रार्थयमानोऽमात्येन विज्ञप्त:। ...प्रभवति

निजस्य कन्यकाजनस्य महाराज इति। अत : आमरणं खलु

मालत्या हृदयशल्यं माधवानुरागइति तर्कयामि।

भी नारी की एक श्रेणी ऐसी भी रही होगी जिसे शिक्षण की दृष्टि से भाग्यशालिनी कहा जा सकता है। मालतीमाधव की कामन्दकी की कार्यपटुता उसके सुशिक्षिता होने का प्रमाण है। इसी प्रकार सौदामिनी तथा अवलोकिता भी शिक्षिता जान पड़ती हैं। परन्तु, जिस प्रकार महावीरचरित की शूर्पणखा दक्षिण भारत की तत्कालीन राजनीति में अपनी सक्रियता दिखलाती है, उस प्रकार के व्यक्तित्व से सम्पन्न नारी का आर्यवर्ग में अभाव ही प्रतीत होता है।

वस्तुत: भवभूति ने अपनी दोनों कृतियों में नारी का चित्रण लगभग उसी रूप में किया है, जैसाकि वे उन्हें अपने समाज में अथवा दक्षिण भारत में पाया हैं। भवभूति के भावुक हृदय में नारी के आदर्श रूप का जो चित्र है, उसे तो उत्तररामचरित में अंकित किया गया है। नारी पत्नी बनकर पुरुष का रंजन ही नहीं करती अपितु गार्हस्थ्य जीवन का मेरुदण्ड बनकर सामाजिक मर्यादा को ऊपर उठाती भी है। व्यक्तिगत सुख-दुःख से ऊपर है मर्यादा। दाम्पत्यसुख की बलि देकर भी इसकी रक्षा करना आदर्श कर्त्तव्य है और इसी कर्त्तव्य-पालन के पीछे कृतसंकल्प हैं राम और सीता सदृश दम्पती। मालतीमाधव के आरम्भ में तत्कालीन समाज के प्रति कवि की विद्रोही भावना का स्वर इतना प्रखर है कि उसकी गूंज उत्तररामचरित तक स्पष्ट सुनाई पड़ती है।[१०८] नाटक के आरम्भ में ही सूत्रधार मारिष से कहता है कि कोई भी कार्य सर्वथा दोषहीन नहीं हो सकता। समाज के लोग दो वस्तुओं के प्रति बड़ी ओछी दृष्टि वाले हुआ करते हैं। स्त्रियों की पवित्रता और शब्दों की अन्वर्थता को लेकर उनकी छानबीन छिद्रान्वेषण में परिणत हो उठती है।[१०९] कवि ऐसे लोगों का प्रशंसक नहीं है, जो लोग वैदेही की भी निन्दा कर सकते हैं और जो अग्नि द्वारा उनकी पवित्रता की प्रामणिकता में भी संशयभाव रखते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए दुर्जन शब्द भी हलका जान पड़ता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि के समय का समाज कितना बहुत ही छिद्रान्वेषी है। सीता पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न तीर्थ जल की तरह स्वयं

---

१०८. भवभूति, मालतीमाधव,

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।। १/६

१०९. भवभूति, उत्तररामचरित,

सर्वथा व्यवहर्त्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।। १/५

पवित्र है, अग्नि की तरह अपने आप विशुद्ध है, उसकी शुद्धता का प्रमाण दूसरा कौन दे सकता है।[११०]

भवभूति आदर्श दाम्पत्य-जीवन के चित्रण में अपनी मौलिकता का परिचय दिये बिना नहीं रह सकते। अब तक के राम काव्यों में सीता-परित्याग के पश्चात् दम्पती का पुनर्मिलन नहीं हो सका है, लेकिन भवभूति ने इसे सम्भव कर दिखाया है।

भवभूति ने इसी प्रसंग में अपनी एक और मौलिकता दिखायी है। उत्तर-रामचरित-नाटक के अन्त में पुरवासियों को एकत्र कराकर देवी अरुन्धन्ती स्वयं उन्हें संबोधित करती हुई पूछती हैं कि पृथ्वी और गंगा भी जिस सीता की प्रशंसा करती हैं,[१११] अग्नि ने जिसकी पवित्रता का प्रमाण पहले ही दे रखा है, देवगण भी जिसकी स्तुति करते रहते हैं, क्या उस सीता को राम पुनः ग्रहण करें? अरुन्धन्ती के प्रश्न के उत्तर में नगरवासी नतशिर होकर सहर्ष स्वीकृति दे देते हैं। देवता अनुमोदन में आकाश से पुष्पवृष्टि करते हैं।[११२]

अरुन्धती राम से आग्रह करती है कि अब सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर अश्वमेघ यज्ञ में उस धर्मचारिणी को सहभागिनी बनावें।[११३] सीता भी पिछले सभी आघातों, सभी अभियोगों को भूलकर राम के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।[११४] भवभूति की दृष्टि में सामाजिक मर्यादा के अनुपालन के लिए

---

११०. भवभूति, **उत्तररामचरित,**

देव्या अपि हि वैदेह्याः सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः॥ १/६

१११. भवभूति, **उत्तररामचरित**,अं-७, पृ० ३७६

भोः भोः पौरजानपदाः। इयमधुना वसुन्धराजाह्नवीभ्यामेवं
प्रशस्यमाना मया चारुन्धत्या...जानकी परिगृह्यताम्।
कथमिह भवन्तो मन्यन्ते ?

११२. भवभूति, **उत्तररामचरित**, अं-७ पृ०३७६

लक्ष्मणः—आर्य ! एवमम्बयाऽरुन्धत्या च निर्भर्त्सिताः पौरजानपदाः
कृत्स्नश्च भूतग्राम आर्यां नमस्कुर्वन्ति।
लोकपालाः सप्तर्षयश्च पुष्पवृष्टिभिरुपतिष्ठन्ते।

११३. भवभूति, **उत्तररामचरित**,

नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे॥ ७/२०

११४. भवभूति, **उत्तररामचरित**, अं-७ पृ० ३७७

अपि जानात्यार्यपुत्रः सीताया दुःखं परिमार्ष्टुम् ?

पत्नी का जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए, उसके अनुरूप ही प्रसंग की अवतारणा उन्होंने अपने इस नाटक में की है। सम्भव है, नाटकीय तकनीक की दृष्टि से सुखान्तकी की रचना करने के उद्देश्य से ही भवभूति ने उत्तररामचरित में राम और सीता का अन्त में मिलन करा दिया हो; किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि भवभूति ने जिस तरह महावीरचरित में वाल्मीकि से कथावस्तु लेकर भी उसमें साहस के साथ परिवर्तन किया है, उसी प्रकार उत्तररामचरित में भी वस्तु विन्यास में नयी उद्भावना के क्रम में क्षमता एवं साहस का परिचय दिया है।

भवभूति ने इस नाटक में यह दिखलाने का प्रयास किया है कि उस युग में शिक्षित नारियों का बिल्कुल अभाव ही नहीं है। उत्तररामचरित के दूसरे अंक में वन देवता के द्वारा दण्डकारण्य में आगमन का कारण पूछने पर आत्रेयी कहती है कि अगस्त्य आदि मुनियों से वेदान्त-शास्त्र का अध्ययन करने के उद्देश्य से मैं महर्षि वाल्मीकि के आश्रम से यहां आयी हूं।[११५] ब्रह्मवादी वाल्मीकि किन्हीं मातृहीन दो नवजात बालकों के लालन-पालन में व्यस्त रहा करते हैं। अतः स्वाध्याय में विघ्न देखकर मैं दण्डकारण्य में आ गयी हूं।[११६] इसी प्रकार नाटक के अन्तिम अंक में अरुन्धती के माध्यम से कवि तत्कालीन समाज में नारी की महत्ता की ओर संकेत करता है। महर्षि वशिष्ठ, वाल्मीकि प्रभृति अनेकानेक तपस्वियों की उपस्थिति में नगरवासियों तथा आश्रमवासियों के समक्ष सीता की पवित्रता की घोषणा तपस्विनी अरुन्धती के मुख में करवायी गई है। पुनः लक्ष्मण के माध्यम से पुरवासियों का अनुमोदन जानकर अरुन्धती जिस ढंग से राम को अश्वमेध यज्ञ में सीता को सहधर्मचारिणी बनाने को कहती है;[११७] उससे उसका अपने निर्णय के प्रति आत्मविश्वास भी झलकता है। यह घटना इसका प्रमाण है कि उस युग में महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में स्त्रियों का हाथ पुरुषों से किसी प्रकार कम नहीं था। उनके द्वारा किया गया निर्णय भी समाज को मान्य था।

भवभूति मधुर दाम्पत्य-जीवन को पारिवारिक तथा सामाजिक सुव्यवस्था का

---

११५. भवभूति, **उत्तररामचरित,**

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि॥ २/३

११६. भवभूति, **उत्तररामचरित**, अं-२ पृ० ८५

आत्रेयी—तस्मिन् हि महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासोऽङ्गीकृतः।

११७. भवभूति, **उत्तररामचरित,**

नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे॥ ७/२०

मूलमन्त्र मानते हैं। पद्मपुराण में गार्हस्थ्य सुख का आधार पत्नी को माना गया है।[११८] स्त्रियां यदि मर्यादा के अनुकूल रहें तो घर स्वर्ग से भी बढ़ जाता है; पर प्रतिकूलता हो तो घर नरक में परिवर्तित हो जाता है। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है कि पुत्र, पौत्र, बहू, सेवक आदि से भरा रहने पर भी भार्या के बिना गृहस्थ का घर निर्जन समझना चाहिए।[११९] भवभूति राम और सीता के दाम्पत्य को इसी परिवेश में देखते हैं। राम के मुख से इसी दाम्पत्य की प्रतिष्ठा कवि ने करवाई है। जो दाम्पत्य प्रेम, सुख और दुःख सभी अवस्थाओं में एक समान रहता है, एक के हृदय की भाषा जहाँ दूसरा समझ लेता है, वृद्धावस्था के कारण जिस प्रेम में कोई अन्तर नहीं पड़ता और जो विवाह से लेकर मृत्युपर्यन्त एकरस ही बना रह जाता है, वही कल्याणकारी होता है।[१२०]

राम द्वारा एक पत्नी व्रत की मर्यादा की स्वीकृति करवा कर कवि समाज में इस परम्परा को स्थायित्व प्रदान करना चाहता है। गर्भभार से अलस सीता को अपनी बांह पर सुलाते हुए राम कहते हैं कि मेरी इस बांह का आश्रय आज तक तुम्हारे अतिरिक्त और किसी अन्य स्त्री को नहीं मिला है।[१२१]

भवभूति के परवर्ती उल्लेखनीय नाट्यकार भट्टनारायण हैं। इन्होंने वेणीसंहार नाटक की रचना की है। भट्टनारायण के स्थितिकाल के सम्बन्ध में आन्तरिक प्रमाणों का सर्वथा अभाव है। वेणीसंहार के पद्यों का वामन (८०० ई०), आनन्दवर्द्धन

११८. **पद्मपुराण**, (उत्तर खण्ड)

आनुकूल्यं हि दम्पत्योः त्रिवर्गोदयहेतवे।
अनुकूलं कलत्रं चेत् त्रिदिवेन हि किं ततः॥ २२३/३६
प्रतिकूलं कलत्रं चेन्नरकेण हि किं ततः।
गृहाश्रमः सुखार्थाय पत्नीमूलं तु तत्सुखम्॥ २२३/३७

११९. **महाभारत**,

पुत्रपौत्रवधूभृत्यैराकीर्णमपि सर्वतः।
भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत्॥ १३/१४४/४

१२०. भवभूति, **उत्तररामचरित**,

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥ १/३९

१२१. भवभूति, **उत्तररामचरित**,

आविवाहसमयाद् गृहे वने शैशवे तदनु यौवने पुनः।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया रामबाहुरुपधानमेष ते॥ १/३७

(८५० ई०), धनंजय (१००० ई०)तथा मम्मट (१००० ई०) आदि आचार्यों ने अपने काव्यशास्त्र विषयक ग्रन्थों में उद्धृत किया है। इस आधार पर भट्टनारायण ८०० ई० से पहले हुए ऐसा माना जाता है। उनके सम्बन्ध में यह किंवदन्ती है कि बंगाल के राजा आदिसूर ने उन्हें आमन्त्रित किया था। अगर यह लोक प्रचलित किंवदन्ती ठीक हो तो उन्हें सातवीं शताब्दी का होना चाहिए। आचार्य दण्डिन् के ग्रन्थ में उल्लिखित एक पद्य के आधार पर भट्टनारायण को तीन काव्यों का रचयिता बताया गया है।[१२२] इस दृष्टि से भी भट्टनारायण का सातवीं शताब्दी में होना प्रमाणित होता है।

इस नाटक की कथावस्तु महाभारत से ली गई है। इसमें पाण्डव-पत्नी द्रौपदी पहली बार नाटकीय रंगमंच पर दिखलाई पड़ती है। वीररस प्रधान अपनी इस कृति में नाट्यकार ने द्रौपदी की प्रतिशोध भावना का जैसा प्रखर और उत्तेजक वर्णन किया है वैसा दूसरे संस्कृत रूपक में उपलब्ध नहीं होता।

संस्कृत रूपक में नायिका मुख्यतः तीन प्रकार की मानी गई है: स्वीया, परकीया और सामान्या।[१२३] द्रौपदी पाण्डवों की विवाहिता पत्नी है, इसलिए वह स्वकीया की श्रेणी में आती है। उक्त तीनों भेदों का पुनः वर्गीकरण नायिका के स्वभाव को दृष्टि में रखकर किया जाता है। इस प्रकार द्रौपदी स्वकीया नायिका के प्रगल्भा[१२४] नामक उपभेद के अन्तर्गत आती है।

दुःशासन द्वारा भरी सभा में किए गए अपने अपमान का बदला चुकाने के लिए द्रौपदी अपने केशपाश को तबतक खुला रखने की प्रतिज्ञा करती है, जबतक दुर्योधन की जंघा के रक्त से वे आर्द्र नही हो पाते। पांच गांव लेकर संधि का प्रस्ताव भेजनेवाले युधिष्ठिर या उनकी हाँ में हाँ मिलाने वाले नकुल और सहदेव से द्रौपदी अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति में किसी भी प्रकार की सहायता की आशा नहीं रखती। पांच भाइयों में भीम ही पौरुष-सम्पन्न है और उसके अपमान का बदला कौरवों से ले सकता है। अतः द्रौपदी कातर होकर अपनी दासी से कहती है कि वह उसे भीमसेन

---

१२२. राजशेखर, **अवन्तिसुन्दरी**, पृ० २

व्याप्तुं पदत्रयेणापि यः शक्तो भुवनत्रयम्।
तस्य काव्यत्रयव्याप्तौ चित्रं नारायणस्य किम्॥ १/१७

१२३. शिङ्गभूपाल, **रसार्णवसुधाकर**,

स्वकीया परकीया च सामान्या चेति सा त्रिधा। १/६४

१२४. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**,

स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका॥ ३/६०

के समीप जल्दी ले चले ।[१२५] द्रौपदी की भावना को सही रूप में समझने वाला भीमसेन ही है । अग्रज का सन्धि-प्रस्ताव सुनते ही वह बौखला उठता है । कुरुवंश के विनष्ट हो जाने की आशंका एवं उससे उत्पन्न लोकनिन्दा का भय दिखलाने वाले सहदेव को भीमसेन फटकार देता है कि भरी सभा में अपनी धर्मपत्नी के केशाकर्षण से तुम-लोगों को लज्जा नहीं लगती, लेकिन अपने शत्रुओं का नाश करना कलंक जान पड़ता है ।[१२६]

दूसरी ओर गान्धारी के दर्शन के पश्चात् लौटती हुई द्रौपदी की भेंट दुर्योधन की पत्नी भानुमती से हो जाती है । वह द्रौपदी से कहती है कि पांच गांव लेकर तुम्हारे पतिलोग सन्धि कराने पर राजी हो गये हैं तो फिर अभी तक तुमने अपने केश इस प्रकार क्यों खोल रखे हैं ?[१२७] भानुमती की यह कटूक्ति द्रौपदी के जले पर नमक का काम कर डालती है । द्रौपदी का स्वाभिमान जग उठता है । इधर भीमसेन युधि-ष्ठिर के सन्धि प्रस्ताव के कारण पहले से ही क्रुद्ध हैं । ऐसी ही स्थिति में द्रौपदी की भेंट भीमसेन से होती है । उसे भीमसेन की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है ।[१२८] परन्तु अन्य चार भाइयों को भी भीमसेन का समर्थन करना है । भीमसेन सहदेव के द्वारा महाराज युधिष्ठिर को संवाद भेजते हैं कि आपके आदेश का उल्लंघन करना यद्यपि मेरे लिए अनुचित है फिर भी कौरवों के विनाश के लिए आतुर मैं आज एक दिन के लिए न आपको अपना अग्रज मानता हूं और न आपकी किसी आज्ञा का पालन ही करने वाला हूं ।[१२९] भीम की दृष्टि में युधिष्ठिर राज्य और पत्नी के साथ ही अपना

१२५ भट्टनारायण, **वेणीसंहार**, अं- १, पृ० ४९

हञ्जे, बुद्धिमतिके । भवत्यैतद्यदि महाराजः प्रतिकूलो न भवेत्
प्रेक्षितुं त्वरते मे हृदयम् । तदादेशय मे नाथस्य भवनम् ।।

१२६. भट्टनारायण, **वेणीसंहार**,

भीमसेनः—युष्मान् ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ।। १/१७

१२७. भट्टनारायण, **वेणीसंहार** अ-१, पृ० ६४

अयि याज्ञसेनि ! पंचग्रामाः प्राथ्यन्ते इतिश्रूयते ।
तत् कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते ।

१२८. भट्टनारायण **वेणीसंहार**, अ-१,पृ० ६९

द्रौपदी—किं नाथ ! दुष्करं त्वया परिकुपितेन सर्वथानु गृह्णन्त्वेतद्
व्यवसितं ते भ्रातरः ।

१२९. भट्टनारायण, **वेणीसंहार**,

भीमसेनः—युष्मच्छासनलंघनांभसि मया मग्नेन नाम स्थितं,
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुज नामपि ।
क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा-
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ।। १/१२

क्षत्रियोचित तेज भी जुए में हार चुके हैं।[130] इस प्रकार भीमसेन और द्रौपदी दोनों की मानसिक स्थिति के एक बिन्दु पर पहुंचते ही ज्वालामुखी का भयंकर विस्फोट अवश्यम्भावी हो उठता है। भीम की प्रतिक्रिया की उग्रता सहदेव की एक ही उक्ति से स्पष्ट हो जाती है—बादलों से भरी बरसात पाकर जैसे बिजली कड़क उठती है, द्रौपदी के सामने आते ही भीमसेन की वही दशा हो जाती है।[131] भीम द्रौपदी को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि कौरवों का संहार किये बिना तुम इस वृकोदर का मुंह नहीं देखोगी।[132] भीमसेन के मुंह से ऐसी कठोर प्रतिज्ञा द्रौपदी जब सुन लेती है तब उसे विश्वास हो जाता है कि भरी सभा में किये गये अपने अपमान का बदला अब वह शत्रुओं से चुका सकेगी। यों तो सम्पूर्ण नाटक में द्रौपदी दो ही बार रंगमंच पर दिखलाई देती है, प्रथम तथा अन्तिम अंकों में। किन्तु द्रौपदी के द्वारा भीम को दी गई उत्तेजना ही सम्पूर्ण नाटक की आत्मा को जीवन-रस प्रदान करती है। प्रथम अंक में उन्मुक्तकेशी द्रौपदी चोट खायी नागिन की तरह फुफकारती हुई दिखाई पड़ती है और भीमसेन की क्रोधाग्नि में घी की आहुति बन जाती है। छठे अंक में कौरवों के पक्षपाती चार्वाक मुनि के मिथ्या-प्रचार से निराश होकर चिता-प्रवेश के लिए प्रस्तुत द्रौपदी यद्यपि थोड़ी देर के लिए बदली हुई सी लगती है; किन्तु दुर्योधन के खून से लथपथ भीमसेन के सामने पहुंचते ही पुनः वह अपने रूप में आ जाती है। द्रौपदी ने तेरह वर्षों तक अपनी वेणी को खुला ही रख छोड़ा है। वह तो उसे फिर से बांधने की क्रिया भी भूल बैठी है।[133] इस प्रकार अपनी छोटी-सी भूमिका में भी द्रौपदी अतिशय प्रभावशाली व्यक्तित्व से सम्पन्न नायिका के रूप में परिलक्षित होती है।

इस नाटक में दूसरा नारी-पात्र दुर्योधन की पत्नी भानुमती है। यह स्वाधीनपतिका श्रेणी की नायिका है, जो अपने पति के मंगल की कामना के अतिरिक्त और

---

१३०. भट्टनारायण, **वेणीसंहार**,

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः।
दीव्याऽक्षैस्तदाऽनेन नूनं तदपि हारितम्। १/१२

१३१. भट्टनारायण, **वेणीसंहार**,

सहदेव—यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य संभृतम्।
तद्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धयिष्यति॥ १/१४

१३२. भट्टनारायण, **वेणीसंहार**,

भीमसेनः—भूयः परिभवक्षान्तिलज्जाविधुरिताननम्।
अनिःशोषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम्॥ १/२६

१३३. भट्टनारायण, **वेणीसंहार** अं-६, पृ० ४३७

द्रौपदी— विस्मृतास्मि एतं व्यापारम्
नाथस्य प्रसादेन पुनरपि शिक्षिष्ये।

कुछ सोच ही नहीं सकती। वह अपने पति के मित्रों को अपना हितैषी और उसके शत्रुओं को अपना शत्रु समझती है। भानुमती वस्तुतः पतिव्रता गृहिणी है, राजकीय अन्तःपुर की मर्यादा के अनुकूल रहनेवाली एक आदर्श महिला है। वह भारतीय नारी की प्रतिनिधि है। नाटक के आरंभ में एक ही स्थान पर वह सामान्य महिला की तरह द्रौपदी के प्रति कटु हो उठती है।[134] परिवार में जिस प्रकार निरन्तर अशान्ति रहा करती है, उससे उसका हृदय सदा शंकित और उद्विग्न रहता है। यही कारण है कि स्वप्न में देखी गई घटना से उसका हृदय आतंकित हो उठता है। भानुमती स्वप्न में देखती है कि एक नेवले ने सौ सर्पों का वध कर डाला है।[135] वह डर जाती है कि कहीं यह पाण्डव रूपी नकुलों के द्वारा सौ कौरवों के विनाश की पूर्व सूचना तो नहीं है। वह पति के मंगल के लिए व्रत रखती है और राजमहल छोड़कर बालोद्यान में रहने लगती है।[136] कंचुकी भानुमती के इस कार्य की प्रशंसा करता है। उसे भानुमती महाराज सुयोधन से कहीं अधिक अच्छी लगती है, क्योंकि कृष्ण जैसे सहायक को लेकर आक्रमण के लिए उद्यत शत्रु को देखकर भी महाराज दुर्योधन का अन्तःपुर में विहार करना उसकी समझ में सर्वथा अनुचित है।[137] कंचुकी के इस कथन से यह स्पष्ट है कि भानुमती आशंकित होकर भी अपना मानसिक संतुलन नहीं खोती। नारी होकर भी वह स्थिति को अच्छी तरह समझती है, जबकि उसका पति विमूढ़ सा प्रतीत होता है। अन्यथा संकट की इस बेला में भी वह अन्तःपुर में भानुमती से मिलने के लिए व्याकुल दिखलाई नहीं पड़ता।

इस प्रकार वेणीसंहार की भानुमती सर्वथा विलक्षण पात्र है और तत्कालीन राजपरिवार के सम्भ्रान्त वर्ग का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है।

---

१३४. भट्टनारायण **वेणीसंहार**, अं-१ पृ०६४

अयि याज्ञसेनि। पंच ग्रामाः प्रार्थ्यन्ते इति श्रूयते।
तत् कस्मादिदानीं मपि ते केशा न संयम्यन्ते।

१३५. भट्टनारायण, **वेणीसंहार** अं-३६, पृ० १०५

भानुमती—अद्य किल प्रमदवने आसीनाया मम अग्रत एव
केनाप्यतिशयितदिव्यरूपेण नकुलेन अहिशतं व्यापादितम्।

तु० भट्टनारायण, **वेणीसंहार**, अं-२ ,पृ०६५

भानुमती—हंजे एवं त्विदं मम पुनरकुशलदर्शनम्
प्रतिभाति स्वप्नदर्शनम्।।

१३६. भट्टनारायण, **वेणीसंहार** अं-२, पृ०९१

कंचुकी—अद्य प्रभृत्यारब्धनियमादेव गृहे बालोद्याने तिष्ठतीति।

१३७. भट्टनारायण **वेणीसंहार**, अं-२ पृ०९१

साधु पतिव्रते ! साधु, स्त्रीभावेऽपि वर्त्तमाना वरं भवती,
न पुनर्महाराजो योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु
अबलवत्सु वा वासुदेवसहायेषु पाण्डुपुत्रेष्वरिषु च,
अद्याप्यन्तःपुरविहारसुखमनुभवति।

नाटिका की नायिका

संस्कृत रूपकों के प्रधान नारी पात्रों के निरूपण के अनन्तर नाटिका में प्रधान नारीपात्र के अङ्कन के आयाम का आकलन अपेक्षित है। नाटिका अथवा नाटी[1] की रचना का प्रयोजन मुख्यतया मनोरंजन रहा होगा। इस रचना के स्त्रीपात्र-प्रधान होने एवं इसमें गीत, नृत्य आदि की प्रमुखता का यही स्वारस्य है। नाटिका के अधिकांश भाग में नायिका को रिझाना, उसके कोप का भाजन बनना आदि शृंगारिक चेष्टाओं में ही नायक उलझा रहता है। सुतरां ऐसी रचना का परिवेश राजा का अन्तःपुर ही हो सकता है। ऐसी रचनाओं में जनजीवन के प्रवेश की न तो संभावना रह जाती है और न साधारण सामाजिक इसके दर्शक ही हो सकते हैं। ऐसी रचना की नायिका की तुलना असूर्यम्पश्या राजदारा के साथ की जा सकती है जो घेरे में रहने के कारण कायिक और मानसिक दृष्टि से रुग्ण व्यक्तित्ववाली हो जाया करती है। सम्भवतः इसी कारण उपरूपक के इस भेद के प्रति भास अथवा कालिदास ने अपनी अभिरुचि नहीं दिखलाई। भास के रूपकों में ऐसे अनेक राजाओं के इतिवृत्त भरे पड़े हैं जिन्हें नाटिका भूमिका में लाया जा सकता है। उदयन के प्रसिद्ध कथानक को ही लिया जाय। इस कलाप्रिय राजा को किसी नाटिका के नायक के रूप में चित्रित करना उसके लिए साधारण सी बात होती, लेकिन भास ने ऐसा नहीं किया।

कालिदास ने भी अपनी रचनाओं में रूपक की इस विधा को स्थान नहीं दिया। सम्भवतः उन्हें भी यह रूपक प्रकार विशेष महत्त्व का नहीं जंचा। यद्यपि इनकी रचना मालविकाग्निमित्र नाटिका की श्रेणी में आ सकती है, परन्तु महाकवि ने इस रचना में नाटिका के लक्षण का सर्वांशतः पालन नहीं किया है। नाटिका चार अंक की होती है; किन्तु कवि ने उसमें एक अंक बढ़ा कर उसे नाटिका के वर्ग से अलग-सा कर दिया है। यद्यपि पांच अंकों में रचित होने के कारण आकृति में यह नाटक की सीमा में आती है तथापि इसकी प्रकृति नाटिका जैसी ही प्रतीत होती है। रूपक की इस विधा के प्रति कालिदास की आस्था के अभाव का कारण

---

१. भरत, नाट्यशास्त्र,

अनयोश्च बन्धयोगादन्यो भेदः प्रयोक्तृभिः कार्यः।
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटी संज्ञाश्रिते काव्ये ॥१८/१०६

इस की स्त्रैण-प्रकृति और अन्तःपुर में स्त्रैण-व्यापारों में राजा को अपने को उलझा कर रखना दोनों ही का श्रेयस्कर नहीं होना है। अपनी इस अनास्था का प्रमाण कवि ने अग्निमित्र को रानी धारिणी के मुख से यह कहलाकर दिया है कि यदि आर्यपुत्र अपने राज्य की देखभाल करने में अपनी बुद्धि का उपयोग करते तो कितना अच्छा होता।[२]

'मालविकाग्निमित्र' में शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र तथा विदर्भ की राजकुमारी मालविका के प्रेम का चित्रण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में किया गया है। इस कृति में राजा के अन्तःपुर की रानियों की पारस्परिक ईर्ष्या राजा की वासनाप्रियता, राजमहिषी धारिणी की धीरता आदि का वर्णन प्रभावशाली ढंग से किया गया है। इस प्रकार के कथानक में स्वभावतः एकाधिक नायिकाएं होती हैं; क्योंकि दो या दो से अधिक नायिकाएं होने पर ही उनमें परस्पर ईर्ष्या का भाव उदय हो सकता है और यह नाटिका के व्यापार के विकास के लिए अनिवार्य है। अग्निमित्र मालविका का चित्र देखकर उस पर आसक्त हो जाता है और प्रत्यक्षरूप से उसे देखने के लिए व्यग्र हो उठता है। बड़ी रानी धारिणी और छोटी रानी इरावती के मन में इसलिए ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है कि जो मालविका अब-तक अनाथ बालिका थी और रानी धारिणी की कृपा पर आश्रित उसीके आदेशानुसार नृत्य का प्रशिक्षण नाट्याचार्य गणदास की देखरेख में प्राप्त कर रही थी, समकक्षपद पर आ रही है। वह अब उन दोनों रानियों के बीच टपकना चाहती है। तरुण अग्निमित्र युवती मालविका के लिए व्यग्र हो रहा है और इधर दोनों रानियाँ उसके इस कार्य में व्यवधान बन रही हैं। विदूषक की सहायता से अग्निमित्र उस लावण्यवती मालविका को शीघ्रातिशीघ्र अपना लेना चाहता है; किन्तु रानियाँ उसे लाचार कर देती हैं। एक दिन विदूषक एक युक्ति सोच निकालता है। महारानी धारिणी के विश्वासपात्र नर्तक गणदास और राजा के प्रियपात्र हरदत्त इन दोनों में वह प्रतियोगिता करा देता है। तदनुसार पक्षपात की आशंका को निर्मूल करने के लिए कैशिकी नाम की तपस्विनी को निर्णायिका बना दिया जाता है। कैशिकी के आदेशानुसार दोनों आचार्यों की श्रेष्ठता का निर्णय उनकी शिष्याओं के कलाप्रदर्शन के माध्यम से कराने का निश्चय होता है।[3] अतः राजा-रानी आदि सभी के समक्ष गणदास

---

२. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-१,पृ०२७९

देवी-यदि राजकार्येष्वीदृश्युपायनिपुणतार्यपुत्रस्य ततः शोभनं भवेत्।

३. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**,

परिव्राजिका—श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य-
विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥
१/१६

अपनी शिष्या मालविका के द्वारा अभिनय करवाते हैं। इसके कलाप्रदर्शन से लोग इतने प्रभावित हो उठते हैं कि सभी एकमत से मालविका को और उसके आचार्य गणदास को श्रेष्ठ घोषित कर देते हैं। वस्तुतः यह प्रतियोगिता तो एक बहाना है। चित्र में देखी हुई मालविका को राजा प्रत्यक्ष देखने में सफल हो जाते हैं और इस प्रकार विदूषक की योजना फलवती हो जाती है। इसके अनतर जैसा कि नाटिका में होता है, मालविका के प्रति राजा की आसक्ति की तीव्रता, रानियों का ईर्ष्या के वशीभूत होनाः पुनः नायिका का रानी धारिणी के द्वारा बन्दी बनाया जाना आदि घटनाओं का सन्निवेश है। अन्त में, मालविका के विदर्भनरेश माधवसेन की कन्या होने की जानकारी रानी धारिणी आदि सभी को हो जाती है। इसके अनन्तर रानी की स्वीकृति से मालविका और अग्निमित्र का विवाह हो जाता है।

ऊपर संकेत किया गया है कि इस रचना की कथावस्तु की प्रकृति नाटिका जैसी होने पर भी मालविकाग्निमित्र पर यह 'लेबुल' लगाना कालिदास को सम्भवतः स्वीकार्य नहीं है। पाँच अंकों में कथा के विस्तार का कारण यही प्रतीत होता है। जहाँ तक मालविकाग्निमित्र की नायिकाओं का प्रश्न है, इसमें दो के स्थान पर तीन नायिकाएं हैं। बड़ी महारानी धारिणी और छोटी महारानी इरावती एक पक्ष की नायिकाएं हैं और विदर्भनरेश की कन्या मालविका प्रतियोगी पक्ष की। इस प्रकार इस नाटक में नायिकाओं की संख्या तीन है। बड़ी रानी धारिणी प्रबुद्ध और समझदार है। अन्तःपुर में राजा के नित नवीन प्रेम-व्यापार को देखकर मधुर व्यंग्य करती है।[४] भारतीय मर्यादा की रक्षा के लिए जिस प्रकार पत्नी का पतिव्रता होना आवश्यक है, उसी प्रकार पति को भी एक पत्नीव्रत होना चाहिए। कालिदास ने अपने काव्य के माध्यम से इस बिन्दु की ओर इंगित दिया है। छोटी रानी इरावती जब मालविका के प्रति राजा की आसक्ति के संबंध में जान जाती है तब वह दासी निपुणिका से कहती है कि दूसरी स्त्री से प्रेम करनेवाले आर्यपुत्र मेरे लिये वैसे ही हैं जैसे उनका[५] चित्र। रानी धारिणी बड़ी होने के नाते अधिक धैर्य का परिचय देती है। फलतः कवि ने कथावस्तु की प्रकृति के अनुरूप स्वकीया के रूठने तथा मान आदि करने का भार छोटी रानी इरावती को ही सौंप दिया है।

पंचम अंक में जब मालविका के सम्बन्ध में सारी बातें सभी को राजा के

---

४. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-१ पृ० २७९

यदि राजकार्येष्वीदृश्युपायनिपुणतार्यपुत्रस्य ततः शोभनं भवेत्।

५. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**. अं-४ पृ० ३३१

इरावती-मुग्धे! यादृशश्चित्रगतो ननु तादृश एवान्यसंक्रान्तहृदय आर्यपुत्रः

समक्ष ही मालूम हो जाती हैं तब रानी धारिणी मालविका को राजकुमारी जानकर और परिव्राजिका कैशिकी द्वारा की गयी भविष्यवाणी को ध्यान में रखकर महाराज से उसका विवाह सम्पन्न कराने को उद्यत हो जाती है। साथ ही वह इरावती को भी प्रतिहारी से कहला भेजती है कि अब वह (छोटी रानी) कोई ऐसी बात न कर बैठे जिससे उसे अपने वचन से मुकरना पड़े। नाटक के अन्त में कवि ने पुनः एक बार अपना आग्रह व्यक्त किया है कि साध्वी पत्नी अपने पति की प्रसन्नता के लिए सब प्रकार के त्याग के लिए प्रस्तुत रहती है। यहां तक कि अपने लिए सपत्नी लाकर भी वह पति को प्रसन्न रखना चाहती है।[६]

कालिदास की इस रचना के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजा नित्य नवीन नायिका के साथ प्रेम-व्यापार में तल्लीन रहने को इच्छुक रहते हैं। दूसरी ओर विवाहिता रानी राजा की इस प्रवृत्ति से सदा सशंकित रहा करती है। रानी यह नहीं चाहती है कि किसी उच्च राज-परिवार की कोई युवती राजकुमारी राजा के समक्ष आवे। मालविकाग्निमित्र के प्रथम अंक में परिचारिका कुमुदिनी बकुलावलिका से पूछती है कि रानियों की ओर से इतनी रोक-टोक रहने पर भी राजा ने उसे (मालविका को) देख कैसे लिया ?[७]

मालविकाग्निमित्र में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है तीन नायिकाएं हैं : महारानी धारिणी, छोटी रानी इरावती और मालविका। फिर भी पाठकों का ध्यान बरबस बड़ी रानी धारिणी की ओर खिंच जाता है। नाट्यकार ने इसका चित्रण सर्वथा भारतीय गृहिणी के रूप में किया है। ऐसा जान पड़ता है कि कथावस्तु की सारी घटनाओं का सूत्र इसी धारिणी के ही हाथ में है। वह सच्चे अर्थ में महादेवी है। अग्निमित्र भी उसके प्रति पूर्ण आस्थावान् जान पड़ते हैं। देवी धारिणी के व्यक्तित्व को कवि ने 'त्रयी विग्रहवती' की संज्ञा से अलंकृत किया है।[८] परिव्राजिका कैशिकी महाराज अग्निमित्र को आशीर्वाद देते समय धारिणी की तुलना धरित्री के साथ

---

६. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**,

प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सला साध्व्यः ।
अन्यसरितामपि जलं समुद्रगाःप्रापयन्त्युदधिम् ॥५/१९

७. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-१ पृ० २६३

कुमुदिनी-सखि ! ईदृशेन व्यापारेणासंनिहितापि सा कथं भर्त्रा दृष्टा ?

८. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**,

मगलालंकृता भाति कौशिक्या यतिवेषया ।
त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया ॥ १/१४

करती है।[९] सम्पूर्ण नाटक में धारिणी का व्यक्तित्व छाया हुआ है। अपनी सपत्नी छोटी रानी इरावती के प्रति भी उसका स्नेह छोटी भगिनी की तरह है। पुत्र वसुमित्र की विजय के पश्चात् वह इसकी सूचना सबसे पहले इरावती को भेजती है;[१०] क्योंकि वह उसे अपने से अभिन्न मानती है।[११] नाट्याचार्यों की प्रतियोगिता के पीछे विदूषक और राजा की प्रेरणा को वह अच्छी तरह समझ चुकी है; फिर भी वह विरोध नहीं करती, क्योंकि वह जान गई है कि भावी होकर ही रहता है। वह केवल इतना कह भर देती है कि मुझे यह आयोजन पसन्द नहीं है[१२] और वह भी तब जब परिव्राजिका उससे पूछती है। संक्षेप में, नाट्यकार ने देवी धारिणी को एक सुयोग्य गृहिणी की महिमा से मण्डित आसन पर बैठाया है।

रानी धारिणी की तुलना में दूसरी रानी इरावती के व्यक्तित्व का कोई पक्ष इतना सबल नहीं है। हां, कथावस्तु के उपयुक्त ईर्ष्या, मान आदि का निर्वाह इसने अच्छी तरह किया है, जो कि प्रगल्भा नायिका की विशेषता होती है। मान आदि के क्रम में महाराज को जली-कटी सुनाने में छोटी रानी बड़ी फूहड़ प्रतीत होती है। वह पुरुषवर्ग को अविश्वास का पात्र समझती है।[१३] उसकी दृष्टि में पुरुषवर्ग सम्मोहन गीत सुनाकर हरिणी को फंसाने वाले व्याध के सदृश है। वह महादेवी के व्यक्तित्व से इतनी अभिभूत हो गई है कि वह अपनी जेठानी की अनुचरी जैसी बन गई है। मालविका के सम्बन्ध की सभी बातें स्पष्ट हो जाने के पश्चात् महारानी धारिणी इरावती के पास आदेश के स्वर में कहला भेजती है कि वह (इरावती) अब कोई ऐसी

---

९. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**,

महासारप्रसवयोः सदृशक्षमयोर्द्वयोः।
धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्ता शरच्छतम्॥ १/१५

१०. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-५ पृ० ३५४

धारिणी—जयसेने! गच्छ इरावतीप्रमुखेभ्योऽन्तःपुरेभ्यः
पुत्रस्य वृत्तान्तं निवेदय।

११. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-५ पृ० ३५५

धारिणी—साधारणःखलु तासां मम चायमभ्युदयः।

१२. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-१ पृ० २७४.

देवी—यदि मां पृच्छसि तदैतयोर्विवाद एव न मे रोचते।

१३. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-३ पृ० ३१०

इरावती—अविश्वसनीयाः पुरुषाः। आत्मनो वंचनावचनं प्रमाणीकृत्या-
क्षिप्तया व्याधजनगीतगृहीतचित्तयैव हरिण्यैतन्न विज्ञातं मया।

बात न कर बैठे जिससे मुझे झूठी बनना पड़े ।[१४] इरावती का जीवन अन्तःपुर के भीतर राजकीय परिवार के अनुरूप भोग-विलासमय प्रतीत होता है। दोलागृह के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए जाते समय इरावती स्वयं कहती है कि राजा के दर्शन की व्याकुलता होने पर भी मदिरा पी लेने के कारण मेरे पैर शिथिल हो रहे हैं।[१५]

मालविका शृंगारप्रधान इस नाटक की तीसरी पर प्रमुख नायिका है। अलंकार ग्रन्थों के अनुसार मालविका विशुद्ध मुग्धा है। दुर्घटना में पड़ जाने के कारण वह बेचारी कहां से कहां पहुंच जाती है। विधाता के हाथ की कठपुतली बन अपने भाई विर्दभनरेश माधवसेन के राजभवन से शुंगवंशी नरेश अग्निमित्र के अन्तःपुर में महारानी धारणी की कृपापात्र होकर आचार्य गणदास से संगीत-नृत्य की शिक्षा प्राप्त करती है। यह मुग्धा कन्या वह बड़े धैर्य से सब प्रकार के संकटों का सामना करती है। यह विधाता की प्रेरणा ही है कि परिव्राजिका कौशिकी, परिचारिका बकुलावलिका और अन्त में विदूषक गौतम जैसे उसके सहायक मिल जाते हैं; और वह अपने उपयुक्त अग्निमित्र की प्रेयसी और छोटी रानी बनने का सौभाग्य प्राप्त करती है। बकुलावलिका से प्रेरित होकर भी मालविका उद्यान में राजा के समक्ष जाने से हिचकती है। अकृतज्ञता तथा आश्रयदात्री महादेवी के कोप का भाजन बनना दोनों उसे विगर्हणा से भर देते हैं। प्रेम-व्यापार की ओर उन्मुख होने के पहले वह सशंकित हो उठती है। सखी बकुलावलिका से कहती है कि यदि मुझे किसी संकट का सामना करना पड़े तो मुझे भूल नहीं जाना ।[१६] बकुलावलिका शीघ्र ही उसे अपनी बुद्धि और चतुरता का विश्वास दिलाती हुई कह देती है कि मेरा नाम तो तुम जानती हो। मैं जितनी ही मसली जाऊंगी उतनी ही अधिक सुगन्ध देती रहूंगी। प्रेम-व्यापार की ओर बेहिचक बढ़ने का आश्वासन जब सखी की ओर से मालविका को मिल जाता है,[१७] तभी वह इस

---

१४. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र,** अं-५, पृ० ३५४

धारिणी—मम वचनेन इरावतीमनुनय सत्यान्न हि विभ्रंशयितव्येति।

१५. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र,** अं-३, पृ० ३०१

इरावती—चेटि, मदेन क्लाम्यमानमात्मानमार्यपुत्रस्य
दर्शने हृदयं त्वरयति चरणौ पुनर्न मम प्रसरतः।

१६. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र,** अं-३, पृ० ३०५

मालविका—त्वं तावद्दुर्जाते गच्छतःसहायिनी भव

१७. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र,** अं-३, पृ० ३०५

बकुलावलिका—विमर्दसुरभिर्बकुलावलिका खल्वहम्।

कार्य में आगे बढ़ती है। इस कुलीन बाला की सभी आकांक्षाएं पूरी हो जाती हैं। उसके उपयुक्त वरदान भी उसे मिल जाता है। अशोक पादप की दोहदवाली घटना के प्रसंग में महारानी धारिणी ने मालविका के लिए जो पुरस्कार घोषित किया है, उसे नाटक के अन्त में, पुत्र वसुमित्र की विजय का संवाद सुनने के पश्चात् महारानी उसे दे देती है और वह महाराज की परिणीता रानी बना ली जाती है।

इस नाटक में एक विन्दु जिस पर हमारा ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित होता है वह है विशुद्ध प्रेम के प्रति कवि की आस्था। विशुद्ध प्रेम एकांगी नहीं द्विपक्षीय होता है। समान आतुरता वाले दो प्रेमियों का मिलन ही यथार्थ मिलन है और सच्चा प्रेम भी वही है। किन्तु, ऐसे दो प्रेमियों का परस्पर मिलन यदि असम्भव हो और एक प्रेमी दूसरे के लिए अपने प्राण भी दे दे तो वह गर्ह्य नहीं होगा।[१८] त्याग और बलिदान ही प्रेम की गहनता के परिचायक हैं। आदर्श दाम्पत्य प्रेम की प्रशंसा तो कवि करते नहीं थकता। नारी के लिए पति का प्रेम ही उसका सर्वस्व होता है। ऐसी पत्नी अपने पति को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखने के लिए अपना सब कुछ त्याग करने को प्रस्तुत रहती है। कवि के अनुसार यही उसका परम धर्म है। परिव्राजिका कहती है कि अपने पति समुद्र से मिलने के लिए आतुर नदियां अपने साथ दूसरी नदियों को भी साथ ले जाती हैं। पत्नियां अपने पति का मन रखने के लिए सपत्नी को भी स्वीकार कर लिया करती हैं।

कवि की दृष्टि में सामंजस्यपूर्ण दाम्पत्य जीवन के अतिरिक्त वश्य सन्तान की अवाप्ति भी अतिशय आनन्द की सृष्टि करती है। सुयोग्य माता-पिता को यदि सामर्थ्यवान् और आज्ञाकारी पुत्र प्राप्त हो जाता है तो उनका जीवन सचमुच धन्य हो उठता है। गार्हस्थ्य-जीवन की पूर्णता यहीं समझी जाती है। माता-पिता के लिए इससे बड़ा कोई दूसरा लौकिक सुख इष्ट नहीं रह जाता है। पंचम अंक में कवि परिव्राजिका के मुख से यही निवेदन कराना चाहता है।[१९]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कालिदास ने रूपक की रचना के आरंभिक प्रयास में भी मालविकाग्निमित्र जैसी बहुमूल्य कृति देकर तत्कालीन भारतीय जीवन

---

१८. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**

अनातुरोत्कण्ठितयोःप्रसिद्ध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति।
परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः ॥ ३/१५

१९. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**,

भर्त्तासि वीरपत्नीनां श्लाध्यानां स्थापिता धुरि ।
वीरसूरिति शब्दोऽयं तनयात्त्वामुपस्थितः ॥ ५/१६

धारिणी—भगवति। परितुष्टास्मि यत्पितरमनुजातो मे वत्सकः।

का एक आदर्श चित्र प्रस्तुत किया है। इसका नायक अग्निमित्र एक ऐतिहासिक पुरुष है। इतिहास के अनुसार इसे मौर्यवंशी राजा बृहद्रथ के सेनापति पुष्यमित्र का आत्मज कहा गया है। प्रसिद्ध है कि पुष्यमित्र ने अपने स्वामी को मार कर मगध में मौर्य साम्राज्य के बदले शुंग राजवंश की स्थापना की थी। यह घटना ई०पू० दूसरी शताब्दी के अन्तिम चरण की मानी जाती है।[२०]

भास और कालिदास की रचनाओं के माध्यम से हम भारतीय नारी की जिस महिमामंडित मर्यादा को देखते आ रहे हैं, उसका क्रमिक ह्रास परवर्त्तीकाल की रचनाओं में पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्त्ती काल में नाटिका की रचना इसी ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति का प्रतिफलन है। इसका संकेत किया जा चुका है कि नाटिका की कथावस्तु का क्षेत्र एवं तकनीकी विधान दोनों ही परिसीमित रहे हैं।

सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) के राजा और महान् कवि श्री हर्ष की दो नाटिका प्रियदर्शिका और रत्नावली उपलब्ध हैं। श्रीहर्ष एक सामान्य राजा ही नहीं हैं अपितु अपने सुयोग्य शासन, राज्य-विस्तार आदि के कारण वे सम्राट् कहलाते हैं। वे प्रकाण्ड विद्वान् और विशिष्ट कवि भी हैं। प्रसिद्ध चीनीयात्री ह्वेनसांग इन्हीं के राज्यकाल में भारत आया था। श्री हर्ष के दरबार में इस विदेशी यात्री का भव्य स्वागत हुआ था जिसका सविस्तार वर्णन उसने अपने यात्रा-वृत्तान्त में किया है। श्री हर्ष के राज्य का विस्तार लगभग समस्त उत्तरी भारत में था। स्वयं विद्वान् और कवि होने के कारण इसकी सभा में पण्डितों एवं कवियों का बहुत सम्मान किया जाता था। प्रसिद्धि है कि महाकवि बाण और मयूर आदि इसी महाराज के आश्रित थे।

रूपक साहित्य में प्रियदर्शिका और रत्नावली के अतिरिक्त श्री हर्ष की एक और रचना नागानन्द उपलब्ध है। यह एक नाटक है जिसमें विद्याधर राजा नागानन्द और मलयवती के प्रणय का वर्णन है। जहां तक प्रथम दो कृतियो का प्रश्न है, दोनों ही अन्तःपुर के राजकीय प्रणय व्यापार पर आधृत हैं। पुराणों एवं लोक-कथाओं के प्रसिद्ध चरित उदयन इन दोनों नाटिकाओं के नायक हैं। प्रियदर्शिका नाटिका का रचना-विन्यास इस ढंग का है कि वह निश्चितरूप से श्रीहर्ष की पहली कृति जान पड़ती है।

उदयन की कथा श्री हर्ष के काल तक बहुत प्रचलित हो चुकी थी। इसके पूर्व भास अपनी रचनाओं में वत्स नरेश उदयन तथा उसकी रानी वासवदत्ता को नाटकोचित वेशभूषा में सजा चुके थे। यह कथा अपनी रोचकता की छाप जन-मानस पर

२०. Devi, Ratnamayi, Women in Sanskrit Dramas, p. 68.

अच्छी तरह छोड़ चुकी थी और इसकी इतनी प्रसिद्धि हो चुकी थी कि इसको अपनी रचना का कथानक नहीं बनानेवाले कवि भी, कम-से-कम, उदयन-वासवदत्ता के नामों का उल्लेख, किसी न किसी प्रकार अपनी रचनाओं में अवश्य करने लगे थे। कालिदास ने अपने मेघदूत में दो स्थानों पर उदयन का उल्लेख किया है।[२१] इसी प्रकार मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक ने भी उदयन और उसके मंत्री यौगन्धरायण के नामों का उल्लेख किया है।[२२]

श्रीहर्ष ने उदयन-कथा के प्रणय-प्रधान अंश को अभिनययोग्य भूमिका देकर प्रियदर्शिका नाटिका की रचना की है। यह नाटिका चार अंकों में रचित है। इसका नामकरण इसकी प्रमुख नायिका के नाम पर किया गया है। प्रियदर्शिका के पिता राजा दृढवर्मा हैं जो कलिंग नरेश के साथ हुए युद्ध में बन्दी बना लिए जाते हैं। इधर उदयन का सेनापति विजयसेन प्रियदर्शिका को उदयन के समक्ष प्रस्तुत करता है और राजा के आदेश से महारानी वासदत्ता के संरक्षण में उस बालिका को रख दिया जाता है। वहां उसकी शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था महारानी अन्तःपुर में कर देती है। एक दिन उपवन में फूल चुनती हुई प्रियदर्शिका को उदयन एकान्त में देख लेते हैं और उसी क्षण से दोनों परस्पर आकर्षण अनुभव करने लगते हैं इसके पश्चात् अन्तःपुर में मनोरंजन के लिए उदयन और वासवदत्ता की कथा पर आधृत एक अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। इसमें उदयन स्वयं अपनी भूमिका करते हैं और वासवदत्ता की भूमिका प्रियदर्शिका को मिलती है। अभिनय अभिनय न रहकर यथार्थ में परिणत हो जाता है और यह बात महारानी से छिपी नहीं रहती। प्रियदर्शिका को उसके कोप का भाजन बनना पड़ता है और वह बन्दी बनाकर कारागार में डाल दी जाती है। कालान्तर में उदयन की सहायता से दृढवर्मा कलिंग पर विजय पाता है। उसका यह शुभ संवाद लेकर आये हुए कंचुकी के द्वारा प्रियदर्शिका का यथार्थ परिचय सब को मिल जाता है। राजपुत्री होने के कारण प्रियदर्शिका का विवाह उदयन के साथ, महारानी की इच्छा के अनुसार कर दिया जाता है।

श्रीहर्ष की प्रियदर्शिका पर कालिदास की कृति की छाप अनेक स्थलों पर स्पष्ट दीख पड़ती है। परिस्थितियां, घटनाएं और यहां तक कि तदनुकूल विवरण आदि की समानता असंदिग्ध है। शकुन्तला लतागुल्म के जल-सेचन कार्य में व्यस्त है

---

२१. कालिदास, **मेघदूत**,

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्···।३२।
प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे ।३५।

२२. शूद्रक, **मृच्छकटिक**,

यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः । ४/२६

और उसे भौंरे बार-बार तंग कर रहे हैं।[२३] प्रियदर्शिका भी उद्यान की दीर्घिका के तट पर सखी इन्दीवरिका के साथ जब आती है तो उसे भी एक दुष्ट भौंरा बार-बार कष्ट पहुचा रहा है।[२४] उधर दुष्यन्त की तरह उदयन भी तैयार खड़े हैं। बार-बार मधुकर के भय से आक्रोश करती हुई प्रियदर्शिका की सहायता करने के बहाने उदयन उसके निकट पहुंच जाते हैं। प्रथम साक्षात्कार के पश्चात् आश्रम की ओर लौटते समय शकुन्तला के पैरों में कांटे चुभने लगते हैं, वल्कल कांटों में उलझ जाता है जिन्हें सुलझाने के लिए वह रुक-रुक जाती है। [२५] उधर दीर्घिका के जल की शीतलता के कारण प्रियदर्शिका की जांघ इतनी जड़ हो गई है कि उससे चला ही नहीं जाता है।[२६]

इन्दीवरिका को अपनी रक्षा के लिए पुकारती हुई प्रियदर्शिका को लक्ष्य कर विदूषक[२७] कहता है कि सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करने की शक्ति से सम्पन्न वत्सराज साक्षात् उपस्थित हैं तो फिर इन्दीवरिका को बुलाने से क्या लाभ? इसी प्रकार भ्रमर से आतंकित शकुन्तला से भी उसकी दोनों सखियां कहती हैं कि जो दुष्यन्त सारे संसार की शरण है, वही तुम्हारे समीप विद्यमान है, तो फिर डरने की बात ही क्या है।[२८]

---

२३. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**, अं-१, पृ०१५

अम्मो। सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्त्तते।

२४. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-२, पृ० ३४

आरण्यका—हला इन्दीवरिके! परित्रायस्व मां परित्रायस्व माम्।
एते दुष्टमधुकराः परिभविष्यन्ति।

२५. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**,

दर्भाङ्कुरेण चरणःक्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती शाखासु वल्कलमसक्तमपि-
द्रुमाणाम्॥ २/१२

२६. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-२, पृ०३७

आरण्यका—हंजे इन्दीवरिके, अतिशिशिरतया सलिलस्योरुस्तम्भ इव समुत्पन्नः। तच्छनैःशनैर्गच्छावः।

२७. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-२, पृ०-३६

भवति, सकलपृथ्वीपरित्राणसमर्थेन वत्सराजेन परित्रायमाणा
चेटीमिन्दीवरिकामाक्रन्दसि।

२८. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** अं-३, पृ०-५२

पृथिव्याः यः शरणं स तव समीपे वर्त्तते।

इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र में अन्तःपुर में आयोजित मालविका के नाट्य-नृत्य प्रदर्शन के समान प्रियदर्शिका के तीसरे अंक में भी एक अभिनय की आयोजना की गई है। उदयन और प्रियदर्शिका की परस्पर अनुरागवृद्धि में इस घटना का अत्यधिक योग है। इसी अभिनय में कांचनमाला के आग्रह पर जब आरण्यका उदयन के साथ एक ही आसन पर बैठ जाती है, तो महारानी वासवदत्ता तुनक उठती है। वह झट सांकृत्यायनी को उपालम्भ दे बैठती है कि अभिनय के प्रस्तुतीकरण में आर्या सीमा को लांघ चुकी है। वीणा का अभ्यास करते समय अपने पितृगृह में, कभी एकासन पर महाराज के साथ मैं नहीं बैठी।[२९] यहां तक तो वासवदत्ता सहन कर लेती है किन्तु अभिनय के क्रम में रूठी कांचनमाला को प्रसन्न करने के लिए प्रियदर्शिका जब अपना हाथ उदयन के हाथ में देना चाहती है, तब वासवदत्ता क्रोध में लाल-पीली हो उठती है और यह कह कर वहां से उठ जाती है कि मैं मिथ्या-कल्पित व्यवहार का अभिनय नहीं देख सकती।[३०] स्पष्ट है कि मनोरमा के बदले स्वयं महाराज अपनी भूमिका निभा रहे हैं इसकी जानकारी किसी को नहीं है अतः ईर्ष्या की संभावना भी नहीं है। इस प्रकार वासवदत्ता धारिणी के चरित्र की अनुकृति सी प्रतीत होती है। वासवदत्ता की दृष्टि में मर्यादा का बहुत महत्त्व है। दर्शकों के समक्ष ऐसा दृश्य प्रस्तुत करना जिसमें विवाह के पूर्व की वासवदत्ता उदयन के साथ एकासन पर बैठ जाय, यह उसे सहन नहीं हो सकता। श्रद्धेया सांकृत्यायनी पर, इस प्रसंग को लेकर, वासवदत्ता का कुपित होना, उसके शील के आतिशय्य का सूचक है।

मदिरा के बदले विष का पान कर लेने कारण आरण्यका की चिन्ताजनक स्थिति का दुःखद समाचार सुनते ही वासवदत्ता घबड़ा उठती है। यह संवाद भी वासवदत्ता को उसी समय मिलता है, जब दृढ़वर्मा का कंचुकी उसे विन्ध्यकेतु और राजकुमारी प्रियदर्शिका के एकाएक लोप हो जाने वाली घटना का विवरण सुना रहा है। अपनी बहन के बारे में अप्रिय समाचार सुन कर वासवदत्ता प्रियदर्शिका को बचाने के लिए व्यग्र हो उठती है। कुछ ही दिन पहले की तो बात है कि आरण्यका और महाराज उदयन के बढ़ते प्रेम-व्यापार को लक्ष्य कर महारानी ने उसे कैद कर रखा था और इस समय विषपान के कारण यदि कोई अप्रिय घटना घट जाती है तो

---

२९. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-६८

(सलज्जम्) भगवत्याधिकं कल्पितं काव्यम्। न खल्वहं तस्मिन् काले एकासने आर्यपुत्रेण सहोपस्थिता॥

३०. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-७१

भगवति, पश्य त्वम्।
अहं पुनरलीकं न पारयामि प्रेक्षितुम्।

लोक निश्चय ही इसमें महारानी का हाथ समझ कर सारा कलंक उसी के सिर मढ़ देगा ।[31] अतः अपनी बहन के सम्बन्ध में अप्रिय संवाद सुन कर वह थोड़ी देर के लिए उस दोष को बिल्कुल भूल जाती है । उदयन तथा प्रियदर्शिका के आचरण के कारण उत्पन्न उसकी सारी उग्र मानसिक प्रतिक्रिया लुप्त हो जाती है । नागलोक से विष-चिकित्सा सीख कर आये हुए आर्यपुत्र का वह अनुनय करने लग जाती है ।[32] चिकित्सा के लिए बुलायी गई बेहोश आरण्यका को उसी हालत में दृढवर्मा को कंचुकी पहचान लेता है और सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन तत्क्षण हो जाता है । प्रियदर्शिका को पुनर्जीवन देनेवाले वैद्य को, चिकित्सा के पारितोषिक के रूप में, स्वयं प्रियदर्शिका (आरण्यका) को ही महारानी समर्पित कर देती है । इस प्रकार महारानी वासवदत्ता के चरित्र के उज्ज्वल पक्ष का आकलन करने के क्रम में इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि नाटिका में प्रदर्शित ईर्ष्या, मान आदि उसके सारे कलुषित मनोभाव विशेष परिस्थिति के कारण ही है न कि उसके चरित्र की स्वाभाविक दुर्बलता के कारण । जहां तक उदयन के व्यक्तित्व का प्रश्न है, उल्लेखनीय नहीं के बराबर है । अन्तःपुर के भीतर उसके रतिलम्पट स्वभाव का संकेत श्रीहर्ष बार-बार करते हैं । राज-काज से पूर्णतया आंखें मूंद कर इस प्रकार वासना के पीछे उदयन के पागल बने रहने की आलोचना विदूषक वसन्तक भी करता है ।[33] जब से राजा ने आरण्यका (प्रियदर्शिका) को देख लिया है, तब से उसका सोना भी हराम हो गया है ।[34] चतुर्थ अंक में सांकृत्यायनी के समक्ष कुपित वासवदत्ता को प्रसन्न करने के लिए महाराज का गिड़गिड़ाना, हाथ जोड़ना या देवी के पैरों

---

३१. श्रीहर्ष ,**प्रियदर्शिका**, अं-४, पृ०९८

अतिदुर्जनः खलु लोकः । कदाचिन्मामन्यथा संभावयिष्यति ।

३२. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-४, पृ०९९

आर्यपुत्र ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ।
लघु विपद्यते खल्वेषा तपस्विनी ।

३३. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३ ,पृ०४७

विदूषकः—अतिमहान् खलु प्रियवयस्यस्यारण्यकाया उपर्यनुरागः ।
येन परित्यक्तराजकार्यस्तस्या एव दर्शनोपायं चिन्तयन्नात्मानं विनोदयति ।

३४. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-६५

विदूषकः—यदा प्रभृति प्रियवयस्येनारण्यका दृष्टा तदाप्रभृति
तेन सह मया रात्रिंदिवं निद्रा न दृष्टा ।

पर गिरना नायक के अनुरूप नहीं। नाटिका के तकनीकी विधान का हवाला देकर इसका समाधान नहीं ढूंढ़ा जा सकता। क्रोधित महारानी को मनाने के लिए अन्तः-पुर में स्थान की कमी नहीं रही होगी। फिर भी, अन्य पात्रों की उपस्थिति में उदयन का कातर भाव से अनुनय करना उसे एक साधारण कामुक व्यक्ति की भूमिका में उपस्थित करता है। उदयन के कामुक स्वभाव से अन्तःपुर पूर्णतया परिचित है। दासी मनोरमा प्रयदर्शिका को आश्वासन देती हुई कहती है कि यदि महाराज ने तुम्हें देख लिया है तो तुम्हारा सन्ताप करना व्यर्थ है, वे अब तुमसे मिलने के लिए स्वयं व्याकुल होकर उपाय ढूंढ़ेंगे।[३५] मनोरमा अच्छी तरह जानती है कि उदयन का स्वभाव कैसा है। वह प्रियदर्शिका को हंसती हुई समझाती है कि अरी नासमझ ! भ्रमर कमलिनी से स्नेह करने वाला होकर भी मालती को देखकर उसके नव रस का पान किए विना रह सकता है ?[३६] एक दासी की दृष्टि में उदयन किस प्रकार का व्यक्ति है -उक्त कथन इसका प्रमाण है। वासवदत्ता से छिपकर, दासी मनोरमा के शरीर से अभिनययोग्य आभूषणों को ग्रहण करते समय उदयन की व्यस्तता को देखकर विदूषक कहता है कि राजालोग अपना काम निकालने के लिए दासियों के इशारे पर नाचने भी लगते हैं।[३७] चतुर्थ अंक में आरण्यका को महारानी की कैद से छुटकारा दिलाने की चिन्ता में बेचैन राजा को विदूषक कटूक्तिपूर्ण सलाह देता है कि तुम्हारे असंख्य हाथियों और घोड़ों से सज्जित इतनी बड़ी सेना है, तुम स्वयं अनेक युद्ध में पराक्रम दिखला चुके हो तो फिर क्यों नहीं दल-बल के साथ अन्तःपुर पर आक्रमण कर के उसे बन्धन से छुड़ा लाते ?[३८]

जहां तक इस नाटिका की प्रमुख नायिका प्रियदर्शिका का प्रश्न है वह मुग्धा

---

३५. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३,पृ-४४

मनोरमा—यदि दृष्टा महाराजेन त्वं तदलं सन्तापितेन।
स एवेदानीं दर्शनोपायपर्याकुलो भविष्यति।

३६. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३,पृ-४५

मनोरमा—(विहस्य) हला अपण्डिते, कमलिनीवद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पटः कुतस्तामनासाद्य स्थितिं करोति।

३७. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका, अं-३**,पृ.६०

विदूषकः—एते खलु राजानो दास्याप्येवं नर्त्यन्ते।
अहो कार्यस्य गुरुता।

३८. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका** अं-४,पृ०८५.

विदूषकः—तत्सर्वबलसन्दोहेनान्तःपुरं सुपीडितं कृत्वेदानीमेवा-रण्यकां मोचय।

कोटि की है। विवाह योग्य युवती कन्या के पिता का शत्रु द्वारा बन्दी बना लिया जाना तथा राज्य के साथ ही अपने सगे सम्बन्यियों से दूर पड़ जाना अपने आप में एक ऐसी घटना है जो किसी भी युवती को मर्माहत कर सकती है। वासवत्ता के संरक्षण में पहुंच जाने के पश्चात्, आरण्यका (प्रियदर्शिका) का दर्शन (द्वितीय अंक में) होने के साथ ही उसके स्वगत भाषण से ज्ञात होता है कि वह अपने उच्च राजकीय वंश की मर्यादा तथा आत्मसम्मान के प्रति पूर्ण सजग है। दूसरे के टुकड़े पर पलने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना उसकी दृष्टि में कहीं श्रेयस्कर है। वह अपने ऊपर झुंझला उठती है कि उसने क्यों नहीं वैसा कर लिया। उसे इस बात का भी सन्तोष भी है कि उसने अब तक अपने श्रेष्ठ वंश का परिचय किसी को नहीं दिया है। जो स्वंय दूसरों को आदेश देती थी, आज उसे ही दूसरे की आज्ञा पर चलना पड़ता है। भाग्य की विडम्बना भी कैसी होती है।[३९] आरण्यका के भाषण से यह स्पष्ट है कि वासवदत्ता आरण्यका को संरक्षण मात्र देती है। कालिदास की मालविका को महारानी धारिणी से जो स्नेह और ममता प्राप्त होती है, उसका यहां सर्वथा अभाव ही है। अन्यथा आरण्यका के स्वगतवचन इतने करुण और मर्मभेदी नहीं होते। दीर्घिका के समीप उपवन में वत्सराज के प्रथम दर्शन के साथ ही उसकी प्रथम प्रतिक्रिया ध्यान देने योग्य है। उदयन की आकृति देखते ही वह अपने पिता दृढवर्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करती हुई कहती है कि उन्होंने मेरे लिए इनका उचित ही चयन किया।[४०] किन्तु विषम परिस्थिति की आंधी में उड़ कर वह कहां कहां से चली गई है। (तृतीय अंक में) महाराज के प्रथम दर्शन की घटना को स्मरण कर जब वह एकान्त में आत्मविभोर है, समीप में छिपी दासी मनोरमा उसका स्वागतवचन सुन लेती है। आरण्यका महारानी की उग्रता को स्मरण कर कांप उठती है। अन्तःपुर में अपनी स्थिति से वह अच्छी तरह परिचित है। महाराज के प्रति अपने आकर्षण और अपने वर्तमान विपत्तिग्रस्त जीवन के अन्तर्द्वन्द्व में जब वह दिग्भ्रमित होने लगती है तब आत्महत्या के रूप में एक ही समाधान उसे सूझ पड़ता है। सम्पूर्ण नाटिका में तीन बार इसकी आत्महत्या का संकेत है। कहां दास-दासियों से घिरा राजकुमारी का सुखमय जीवन और

---

३९. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-२,पृ०२६.

आरण्यका—...तथा नाम तादृशे वंश उत्पन्नयान्यजनमाज्ञाप्यः
स्थितया साम्प्रतं परस्य मयाज्ञप्तिः
कर्त्तव्येति नास्ति खलु दुष्करं दैवस्य।

४०. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका** अं-२, पृ० ३६

अयं खलु स महाराजो यस्याहं तातेन दत्ता।
स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः।

कहां दूसरे की अनुचरी होना ! यह परिवर्तन ही उसके लिए आत्महत्या से बढ़कर दुःख दायी है। [४१]

चतुर्थ अंक में आरण्यका और उदयन के बढ़ते प्रेम-व्यापार को देखकर क्रुद्ध महारानी की प्रतिक्रिया इतनी उग्र होगी, इसकी कल्पना भी दासी मनोरमा नहीं कर पाती है। अन्तःपुर में नजरबन्द होने से आरण्यका बन्धन के कष्ट में तो है ही, साथ ही उस स्थिति में महाराज के दर्शन से वंचित होना उसके लिए और भी घातक हो रहा है। अपने शारीरिक कष्ट और मानसिक मन्थन से ऊब कर आत्महत्या के लिए तत्पर आरण्यका को वह दासी किसी तरह बचा पाती है। फिर भी मनोरमा को यह भय बना ही रहता है कि कहीं अकेले में वह कोई अप्रिय कार्य न कर बैठे; और सच में, मनोरमा के सिवा आरण्यका की भावना को समझने वाली कोई है भी तो नहीं अन्तःपुर में। चतुर्थ अंक में आरण्यका मदिरापान के व्याज से विषपान कर भी लेती है।

प्रियदर्शिका नाटिका में वासवदत्ता और आरण्यका के अतिरिक्त जो नारी हमारा ध्यान सर्वाधिक आकर्षित करती है वह है सांकृत्यायनी। यह महिला बौद्ध परिव्राजिका जान पड़ती है। हिन्दू राजपरिवार में बौद्ध संन्यासिनी का अन्तःपुर में इस प्रकार घुल-मिलकर रहना इसका संकेत है कि दोनों धर्मावलम्बी इस काल तक एक दूसरे के प्रति अत्यधिक सहिष्णु हो चुके थे। हिन्दु परिवार की महिलाओं में संन्यासिनी बनने की प्रवृत्ति नहीं के बराबर है। जबकि बौद्ध-विहारों या मठों में परिव्राजिकाओं की संख्या पर्याप्त रहा करती थी। स्मृतिकार मनु ने हिन्दू महिला को किसी भी वय या परिस्थिति में घर का परित्याग कर पृथक् रहने की अनुमति नहीं दी है।

४१. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-२,पृ०-२६.

आरण्यका—अथवा ममैवैष दोषः।
येन जानात्यपि न व्यापादित आत्मा।

तु० अं-४पृ० ७९.

मनोरमा—ईदृशं चास्या दुःखं, येनाद्यैवात्मानं व्यापादयन्ती
मया कथमपि निवारिता।

तु० अं-४,पृ० ८२

चिरं खलु मे आरण्यकासकाशदागतायाः। दृढं च निर्विण्णा सा
तपस्विन्यात्मनो जीवितेन कदाचिदत्याहितं भवेत्
तत्रैव गच्छामि।

तु०अं-४पृ०९७

एषा खल्वारण्यका कल्पाव्यपदेशेनानीतं विषं पीत्वा
प्राणसंशये वर्त्तत इत्येवं मया निवेदितम्।

प्रत्येक स्थिति में उसे परिवार की परिधि में ही रहना है।[४२] यहां तक कि वानप्रस्थाश्रम में भी हिन्दू स्त्रियों के लिए 'करतलभिक्षा तरुतलवासः' वाली स्थिति मान्य नहीं समझी गयी है। आत्मशुद्धि और पारलौकिक जीवन के प्रति आस्था रखनेवाली महिलाएं तपोवन में जाकर अपने जीवन के अन्तिम दिनों को बिताना श्रेयस्कर समझती हैं। भासकृत स्वप्नवासवदत्ता में राजकुमारी पद्मावती महाराज दर्शक की वृद्धा माता से मिलने तपोवन में आती है और अपने दास-दासियों के साथ कुछ दिन आश्रम के शान्त वातावरण में रहने की योजना बनाती है।[४३]

सांकृत्यायनी पूर्ण शिक्षित महिला जान पड़ती है। उदयन और वासवदत्ता के परिणयवाले वृत्तान्त को अभिनयात्मक रूप देने की क्षमता से सम्पन्न इस परिव्राजिका का राजकीय अन्तःपुर में रहना इस बात की ओर संकेत करता है कि जिस प्रकार राजा तथा राजकीय पुरुषों के मनोरंजनार्थ पण्डित, कवि, संगीतज्ञ आदि राजसभा के अंग हैं उसी प्रकार सांकृत्यायनी जैसी विदुषी महिला रानियों के बीच रहकर उनके मनोंरंजन का साधन ही नहीं जुटाती हैं; बल्कि उनकी प्रणयक्रिया जैसे आन्तरिक विषयों में भी उचित परामर्श दिया करती है। इसी प्रकार की परिव्राजिका का परिचय मालतीमाधव प्रकरण में मिलता है और जो प्रेमी और प्रेमिका को एक-दूसरे के लिए सुलभ बनाने का मार्ग प्रशस्त कराने में अत्यधिक अभिरुचि दिखलाती है। एक संन्यासिनी के लिए उक्त कार्य में इतना आग्रह दिखलाना उचित नहीं जान पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी दमित या कुंठित भावनाओं की इस प्रकार परितुष्टि हो जाती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को अस्वीकार करना सत्य से आंखें मूंदना है। जहां तक प्रस्तुत नाटिका की परिव्राजिका का प्रश्न है, इसका व्यक्तित्व मालतीमाधव की कामन्दकी के व्यक्तित्व से कहीं विलक्षण हैं। इसका संकेत इस नाटिका में एकाधिक बार मिलता है। अभिनय के पश्चात् कुपित वासवदत्ता के क्रोध को वह बड़े धैर्य से शांत करना चाहती है। वह महारानी से कहती है कि मनोरमा के बदले स्वयं अपनी भूमिका करने का राजा का अभिप्राय केवल तुम्हारा मनोरंजन करना था, न कि इसके विपरीत कुछ करना

---

४२. **मनुस्मृति,**

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।। ९/६

४३. भास, **स्वप्नवासवदत्तम्**, अं-१, पृ-२०

कंचुकी—महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम।
सैषा नो महाराजमातरम् महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता···
तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति।

जैसा कि तुम सोचती हो ।[४४] अभिनय के बाद विदूषक की मूर्खता के कारण जब महा-रानी को सारे रहस्य का ज्ञान हो जाता है और स्वयं सांकृत्यायनी भी राजा और विदूषक की पूर्वयोजना के बारे में जान लेती है तो वह अब एक क्षण भी वहां टिकना उचित नहीं समझती है ।[४५]

नाटिका में सांकृत्यायनी जैसे नारी-पात्र की अवतारणा तथा उसे बौद्ध संन्या-सिनी के उपयुक्त भूमिका प्रदान करना कवि श्रीहर्ष की बौद्ध धर्म के प्रति आस्था का प्रमाण है । प्रसिद्धि है कि श्रीहर्ष अपने जीवन के पूर्वार्ध में शैव थे, किन्तु उत्तरार्ध में चीनी यात्री ह्वेनसाँग के प्रभाव में बौद्धमतावलम्बी हो गये ।[४६]

प्रियदर्शिका के अतिरिक्त श्रीहर्ष की दूसरी नाटिका रत्नावली उपलब्ध होती है । इस नाटिका के नायक तथा नायिका दोनों वत्सराज उदयन तथा सिंहलनरेश की कन्या रत्नावली है । पूर्वोक्त नाटिका की तरह इसमें भी उदयन और रत्नावली की प्रेम कथा नाटिका के माध्यम से वर्णित है । बड़ी रानी वासवदत्ता के लाख नहीं चाहने पर भी नायक और नायिका प्रथम दर्शन के ही अनन्तर प्रेमासक्त होकर एक दूसरे को अपना हृदय दे बैठते हैं । क्रोध, मान और ईर्ष्या आदि से उदयन को आतंकित करके भी महारानी वासवदत्ता अन्त में विधाता के विधान के सामने हथियार डाल देती हैं, क्योंकि महाराज की प्रेयसी सागरिका अन्ततः उसकी सगी ममेरी बहन रत्ना-वली सिद्ध हो जाती है । नाटिका के अन्त में वासवदत्ता उदयन और रत्नावली को स्वयं परिणय-सूत्र में बांध कर प्रसन्नता का अनुभव करती है ।

नाटिका के आरम्भ में सूत्रधार के कथन से तथा अग्निकांड के पश्चात् चौथे अंक में यौगन्धरायण और उदयन के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि मंत्री यौगन्धरायण वत्स-राज उदयन के राज्य-विस्तार के लिए सतत प्रयासशील हैं । रत्नावली के सम्बन्ध में किसी सिद्धपुरुष दैवज्ञ ने यह कहा है कि सिंहल राजकुमारी का पाणिग्रहण जिसके साथ होगा वह चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा । दैवज्ञ की इस उक्ति की जानकारी होते ही यौगन्ध-रायण उदयन के अन्तःपुर के कंचुकी बाभ्रव्य को रत्नावली की याचना करने के लिए

---

४४. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-४, पृ-८४

सांकृत्यायनी—यत एव मे प्रत्यक्षः, तत एव ब्रवीमि ।

तेन ननु कौमुदीमहोत्सवे त्वां हासयितुं तथा क्रीडितुम् ।

४५. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-७४

सांकृत्यायनी—कथमन्यदेवेदं प्रेक्षणीयकं संवृत्तम् ।

अभूमिरियमस्मद्विधानाम् ।

४६. गैरोला, वाचस्पति, **संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास**, पृ ६०२-६०३

सिंहल भेजता है। लावाणक ग्राम के अग्निकाण्ड में महारानी वासवदत्ता जल मरी है ऐसा मिथ्या संवाद यौगन्धरायण भेजता है वह महाराज उदयन की जानकारी के बिना ही उनके लिए रत्नावली को मांग लेता है। एक पत्नी के जीवित रहते दूसरी स्त्री को पत्नी बनाने के लिए यौगन्धरायण रत्नावली की मांग करता है।[४७] यौगन्धरायण जैसे नीतिज्ञ मंत्री की इतनी बड़ी योजना के पीछे जो रहस्य है उसका ज्ञान नाटिका के चौथे अंक में सभी को हो जाता है।

रत्नावली नाटिका में भी, प्रियदर्शिका नाटिका की भांति, महारानी वासवदत्ता की ईर्ष्या, क्रोध, उपालम्भ, मान आदि से अपने को बचाने के लिए वत्सराज नायिका सागरिका से छिपकर मिलता है। अपने पति को सार्वभौम चक्रवर्ती बनाने के लिए वासवदत्ता कितना कष्ट सहती है, इसका प्रमाण यौगन्धरायण की उक्ति है।[४८] अपने पति के कल्याण के लिए पत्नी का महान् से महान् त्याग करना भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण मर्यादा है, जिसका पालन वासवदत्ता जी जान से करती है। अपने प्रति वासवदत्ता के उत्कट प्रेम का वर्णन स्वयं उदयन अपने मित्र विदूषक से करते हैं। महारानी के प्रगाढ़ प्रेम की उपेक्षा करके सागरिका के प्रति आकृष्ट होना उन्हें उचित नहीं जान पड़ता है। प्रगाढ़ प्रेम का विच्छेद अत्यन्त असहनीय हो जाता है।[४९] तृतीय अंक में अभिसारिका वाली घटना के पश्चात् कुपित होकर वासवदत्ता वहां से चली गई है। कुछ समय के पश्चात् उसी स्थान पर महारानी के वेश में आती हुई सागरिका के पैरों की आहट सुनकर विदूषक को सन्देह होने लगता है कि राजा के प्रति अपने कठोर व्यवहार के

४७. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-४, पृ०२०२

यौगन्धरायण—जयतु जयतु देवः।
देव क्षम्यतां यन्मया देवस्यानिवेद्य कृतम्।

४८. श्रीहर्ष, **रत्नावली**,

देव्या मद्वचनाद् यदाऽभ्युपगतः पत्युर्वियोगस्तदा
सा देवस्य कलत्रसंघटनया दुःखं मया स्थापिता।
तस्याःप्रीतिमयं करिष्यति जगत्स्वामित्वलाभःप्रभोः
सत्यं दर्शयितुं तथाऽपि वदनं शक्नोमि नो लज्जया॥ ४/२०

४९. श्रीहर्ष, **रत्नावली**

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिनं
व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया।
प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहता जीवितमसौ।
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति॥ ३/१५

कारण पश्चात्ताप करती हुई वासवदत्ता स्वयं पुनः वहां आ रही है। इस पर उदयन विदूषक से कहता है कि महारानी के हृदय की उदारता स्पृहणीय है[५०] और कदाचित् उसका कहना सच भी हो सकता है। इसलिए वह जरा ठीक से समझ ले कि कौन आ रही हैं। दूसरे ही क्षण महाराज के प्रति अपने दुर्व्यवहार के कारण पछताती हुई वासवदत्ता उनसे क्षमा-याचना के लिए उस स्थान पर पहुंच जाती है। वह अपनी अन्तरंग दासी कांचनमाला से कहती है कि अपने चरणों पर गिरे आर्यपुत्र की उपेक्षा कर जो मैं चली गयी वह अनुचित था, अतः मैं स्वयं उन्हें मनाऊंगी।[५१] इधर कांचनमाला दासी भी महारानी को परामर्श देती है[५२] कि राजा भले ही दुर्जन-लम्पट बन जाय किन्तु आप सहृदयता न छोड़ें; किन्तु राजा के पास पहुंचते न पहुंचते वासवदत्ता की सारी सद्भावना राजा और सागरिका के प्रणयालाप में डूब सी जाती है। राजा और सागरिका के प्रेमालाप को वह स्वयं सुनती है और लता की ओट से उन्हें देख भी लेती है। वस्तुतः ऐसी स्थिति में किसी भी नारी का धैर्य टूट सकता है। वासवदत्ता लता-पाश से विदूषक को बंधवाती है और सागरिका को अन्तःपुर के कारागार की ओर ले चलती है।[५३] वासवदत्ता के व्यवहार की उग्रता स्वाभाविक ही है।

ज्येष्ठा देवी की भूमिका करनेवाली वासवदत्ता क्रोध, मान और उपालम्भ से तो बच नहीं सकती। महारानी वासवदत्ता के व्यक्तित्व का जो यथार्थ रूप है उसका

---

५०. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-३,पृ-१४५

वयस्य महानुभावा खलु देवी।

कदाचिदेवमपि स्यात्।

५१. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-३, पृ-१४६

तत्त्वरितं निरूप्यताम्।

हञ्जे, काञ्चनमाले, तं तथा चरणनिपतितमार्यपुत्रमवधीर्यागच्छन्त्या मयातिनिष्ठुरं कृतम्। तदिदानीं स्वयमेव गत्वार्यपुत्रमनुनेष्यामि।

५२. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-३, पृ-१४६

कोऽन्यो देवीं वर्जयित्वा एवं भणितुं जानाति। वरं स एव देवो दुर्जनो भवतु न पुनर्देवी। तदेतु एतु भट्टिनी।

५३. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-३, पृ-१५३

कांचनमाले एतेनैव लतापाशेन बद्ध्वा गृहाणैनं ब्राह्मणम्।
एतां च दुर्विनीतां कन्यकामग्रतः कुरु।

आकलन नाटिका के चौथे अंक में, मन्त्री यौगन्धरायण ने किया है।[५४] इसी अंक में अन्तःपुर में अग्नि-काण्ड वाली घटना की सूचना मिलते ही वासवदत्ता बन्धन में पड़ी सागरिका को बचाने के लिए व्यग्र हो उठती है और महाराज से ही उसकी रक्षा की याचना करती है।[५५] यथार्थ में वासवदत्ता यदि चाहती तो सागरिका से सदा के लिए उसी अवसर पर उसका पिण्ड छूट जाता। किन्तु ऐसा वह सोच भी नहीं सकती है। शीघ्रातिशीघ्र सागरिका की रक्षा के लिए वह राजा से अनुनय करती है। सागरिका के सारे रहस्य प्रकट हो जाने के साथ ही वासवदत्ता महाराज के हाथों में उसे सौंप देती है। इतना ही नहीं अपनी सारी ममता और स्नेह को उड़ेलती हुई वह उदयन से कहती है कि आर्यपुत्र यह अपने पितृकुल से बहुत दूर पड़ गई है। अतः आप ऐसा स्नेहभाव रखें जिससे इसे स्वजन वियोग का कष्ट अनुभव न हो।[५६]

जहाँ तक सागरिका के रूप में कनिष्ठा नायिका रत्नावली का प्रश्न है, वह मुग्धाकोटि की है। नाटिका के आरम्भ में ही यौगन्धरायण के कथन से ज्ञात होता है कि रत्नावली सिंहलेश्वर की दुहिता है और दैवज्ञ के अनुसार बड़ी भाग्यशालिनी है। यौगन्धरायण द्वारा वत्सराज के लिए मंगनी किए जाने के पश्चात् अपने मंत्री वसुभूति और वत्सराज के कंचुकी बाभ्रव्य के साथ समुद्र मार्ग से आती हुई रत्नावली पोतभंग के कारण समुद्र में डूब जाती है; किन्तु भाग्यवश उसे जहाँ जाना था वहीं वह पहुंच जाती है और यौगन्धरायण की योजना के अनुसार महारानी वासवदत्ता के संरक्षण में रख दी जाती है। अन्तःपुर के उद्यान में मदनोत्सव के अवसर पर पूजा-सामग्री लेकर आई हुई सागरिका का दर्शन पहली बार नाटिका के प्रथम अंक में होता है। वासवदत्ता के संरक्षण में रहकर भी उसकी स्थिति एक दासी से कुछ अधिक नहीं है। इस दशा में

---

५४ श्रीहर्ष, **रत्नावली**

देव्या मद्वचनाद्यदाऽभ्युपगतः पत्युर्वियोगस्तदा
सा देवस्य कलत्रसंघटनया दुःखं मया स्थापिता।
तस्याः प्रीतिमयं करिष्यति जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः
सत्यं दर्शयितुं तथाऽपि वदनं शक्नोमि नो लज्जया॥ ४/२०

५५ श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-४, पृ-१६०

आर्यपुत्र,मयात्मनः कृते न भणितम्।
एषा खलु मया निर्घृणया निगडेन संयमिता सागरिका विपद्यते।
तत्तां परित्रायतामार्यपुत्रः।

५६ श्रीहर्ष **रत्नावली** ,अं-४ पृ-२०५

आर्यपुत्र दूरे खल्वेतस्याः पितृकुलम्।
तत्तथा कुरु यथा न बन्धुजनं स्मरति।

भी, उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आते हुए वत्सराज को लता की ओट से देखकर वह निहाल हो उठती है।[५७] महारानी उसे उत्सव में सम्मिलित नहीं होने देना चाहती क्योंकि उसे संशय है कि इस लावण्यवती तरुणी पर दृष्टि पड़ते ही महाराजा अपनी सुधबुध खो बैठेंगे। महारानी सोचती है कि परिचारिकाओं के प्रमाद के कारण ही वह चली आयी है।[५८] अन्तःपुर में वासवदत्ता को इसका विश्वास नहीं है कि उसके रहते उदयन से मिलने का सागरिका अवसर पा सकेगी। अतः अपना अनुराग अपनी अन्तरंग सखी सुसंगता से भी वह छिपाना चाहती है। इस रोग से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है, मृत्यु।[५९] सागरिका इतनी हताश हो जाती है कि मृत्यु की यातना को भी झेलने को प्रस्तुत है वह आत्महत्या के विषय में सोचती ही नहीं, अपितु माधवीलता का पाश गले में डाल कर अशोक वृक्ष से लिटक कर प्राणत्याग के लिए तत्पर भी हो जाती है।[६०] राजा के द्वारा इस प्रयास में बाधा दिये जाने पर विवशता को कोसने लगती है।[६१]

श्रीहर्ष की सागरिका और आरण्यका जिस प्रकार की स्थिति का सामना करने को बाध्य हैं, वैसी स्थिति में आत्महत्या का विचार स्वाभाविक तो जान पड़ता है; किन्तु यह प्रवृत्ति श्रेयस्कर नहीं कही जा सकती।

प्रियदर्शिका की नायिका आरण्यका के सामने उसका भविष्य अन्धकारमय है।

---

५७ श्रीहर्ष **रत्नावली**, अं-१-पृ० ४६

कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेनदत्ता।
तत्परप्रेषणदूषितमपि मे जीवितमेतस्य दर्शनेदानीं बहुमतं संवृतम्॥

५८ श्रीहर्ष, **रत्नावली** अं-१, पृ० ४१

अहो प्रमादः परिजनस्य।
यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत्॥

५६. श्रीहर्ष, **रत्नावली**,

दुर्लभजनानुरागोलज्जा गुर्वी परवश आत्मा।
प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम्॥ २/१

६०. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अंक-३ पृ० १४६,

तद्यावदेतस्याः माधवी लतायाः पाशे
विरचय्याशोकपादप आत्मानमुद्बध्य व्यापादयामि।

६१. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-३, पृ० १४७

मुंचतु मुंचतु मां भर्ता। पराधीनः खल्वयं जनः
न पुनरीदृशमवसरं मर्तुं प्राप्नोति।

पिता दृढवर्मा कलिंग नरेश के कारागार में बंद हैं और उनका विश्वासी मित्र विन्ध्यकेतु भी उदयन की सेना के हाथों मार दिया गया है। वह स्वयं दूसरे की दासी बन कर जीवन बिता रही है। अपने उच्चवंश के परिचय को कृपण के धन की तरह वह दूसरे से छिपाती है। ऐसी स्थिति में उसे इस यातना से छुटकारे का उपाय आत्महत्या ही प्रतीत होता है। महाराज उदयन के प्रति पनपते अपनी अनुराग-वल्लरी को मुरझाते देख वह विषण्ण हो उठती है। वह मृत्यु का वरण इसी स्थिति में आकर करना चाहती है।

आरण्यका और सागरिका दोनों के दृष्टिकोण और व्यक्तित्व में अन्तर है। अपने पिता एवं उनके राज्य पर संकट के जो बादल छाये हुए हैं, उनको देखकर आरण्यका पहले ही टूट चुकी है। अब वत्सराज के अन्तःपुर में आकर दासी के समान अपना जीवन, पितृकुल की विपत्ति, अन्ततः राजा के प्रति अपनी प्रेमभावना की निष्फलता और सबसे बढ़कर रानी वासवदत्ता के कोप का आतंक, इन सारे मानसिक मन्थन से ऊबकर वह मुक्ति के लिए आत्महत्या जैसे गर्ह्य साधन का सहारा लेना चाहती है। सागरिका और आरण्यका दोनों अपने प्रेम की असफलता की संभावना से आत्महत्या कर लेना चाहती हैं। किन्तु ध्यान देने की बात है कि आरण्यका उदयन के दर्शन या उसके प्रति अनुराग अनुभव करने के पहले भी अपने वंश की श्रेष्ठता और अपने दासी कर्म की विड़म्बना को सोचकर आत्महत्या करना चाहती है।[६२] सागरिका में वैसी बात नहीं है। यद्यपि महारानी वासवदत्ता की चाकरी बजाने के कारण वह भी खिन्न है[६३] किन्तु उसके आत्महत्या के प्रयास का पारिवारिक या सामाजिक विवशता जनित औचित्य नहीं दीख पड़ता।

धीरललित नायक उदयन का व्यक्तित्व जिस रूप में, प्रियदर्शिका नाटिका में, चित्रित है वैसा ही रत्नावली नाटिका में भी है। बल्कि यों कहा जाय कि यह चित्रण और भी धूमिल हो गया है। ऐसा जान पड़ता है कि अन्तःपुर के भीतर अपनी वासना की तुष्टि का साधन जुटाना ही जैसे उदयन के जीवन का व्रत हो। इसके पीछे वत्सराज अपने व्यक्तित्व को बिलकुल भूल से जाते हैं। रत्नावली के द्वारा चित्रित

६२. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका, अं-२ पृ०-२६

...अथवा ममैवैष दोषः।
येन जानत्यपि न व्यापादित आत्मा।

६३. श्रीहर्ष, रत्नावली, अं-१ पृ. ४९

...तत्परप्रेषणदूषितमपि मे जीवितमेतस्य
दर्शनेनेदानीं बहुमतं संवृत्तम्।

चित्रफलक को तन्मय होकर देखते समय उदयन को अन्त.पुर की दासी सुसंगता महारानी से शिकायत कर देने की धमकी ज्यों ही देती है, महाराज झट से उसका हाथ पकड़कर गिड़गिड़ा उठते हैं और वैसा नहीं करने का अनुरोध करते हैं उत्कोच के रूप में अपने शरीर पर के बहुमूल्य आभूषण उसे उतार कर दे डालते हैं।[६४]

सुसंगता की सहायता से वासवदत्ता के वेष में आयी रत्नावली से छिपकर मिलते समय, वासवदत्ता के द्वारा पकड़ लिए जाने पर उदयन सारा दोष सागरिका पर थोप देते हैं और खुद स्वयं बच निकलना चाहते हैं।[६५] प्रेम-व्यापार में मिथ्या का आश्रय लेना स्वाभाविक है; किन्तु रत्नावली जैसी अनाथ बालिका को इस प्रकार महारानी के कोपानल में झुलसाने के लिए धकेल देना उदयन के अविवेकी होने का प्रमाण है।

श्रीहर्ष की इन दो नाटिकाओं के विश्लेषण द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि तत्कालीन राजकीय परिवेश में दाम्पत्यजीवन की स्थिति कालिदास-युगीन भारत की अपेक्षा निम्नतर स्तर पर पहुंच चुकी थी। अन्यथा सर्वगुणसम्पन्न महारानी वासवदत्ता के भवन में रहते हुए भी उदयन की आरण्यका, तो कभी सागरिका के लिए राजकाज छोड़कर पागल बने रहने की स्थिति में चित्रित नहीं किये जाते। यदि यह कहा जाय कि इन बालिकाओं को भाग्यशालिनी समझ कर ही यौगन्धरायण इन्हें उदयन के अन्तःपुर में लाकर रख देता है ताकि ये महाराज के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर सकें और परिणामतः इनका विवाह हो जाय, तो यह भी ध्यान में रखना होगा कि उदयन दोनों युवतियों के पीछे पागल बनने की स्थिति में आने के पूर्व तक इन्हें अन्तःपुर की दासी से कुछ अधिक नहीं समझते हैं। आरण्यका को मृत शत्रु राजा विन्ध्यकेतु की पुत्री के रूप में सारा अन्तःपुर जानता है। इसी प्रकार सागरिका के पितृकुल का भी परिचय तब तक किसी को भी नहीं मिल सका है। विवाह के मंडप पर बैठने के समय ही इन बालिकाओं के कुलीन होने का निश्चित प्रमाण मिलता है। अतः श्री हर्ष ने राजकीय अन्तःपुर की परिवर्तित शोचनीय स्थिति की ओर संकेत करने के लिए भी इन नाटिकाओं की रचना की है।

---

६४ श्रीहर्ष, **रत्नावली** अं-२, पृ- ९५

(सुसंगतांहस्ते गृहीत्वा) सुसंगते, क्रीडामात्रमेवैतत्,
अकारणे त्वया देवी न खेदयितव्या। इदं ते पारितोषिकम्।

६५. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-३ पृ. १५२

राजा-देवि न खल्वकारणे मामुपलब्धुमर्हसि।
सत्यं त्वामेवमत्वा वेषसादृश्यविप्रलब्धा वयमिहागताः।

इतिहास अथवा पुराणों के पृष्ठों में उदयन के अतिरिक्त भी अनेक विलासी राजा चित्रित किए जा चुके हैं। तथापि वासवदत्ता जैसी सुन्दरी और गुणवती पत्नी की उपस्थिति में ही एक उदयन को रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनों के साथ प्रणय और परिणय के सूत्र में आवद्ध दिखाना राजाओं के बहुविवाह और विलासी जीवन की ओर संकेत है।

श्रीहर्ष की नाटिकाओं के पश्चात् उल्लेखनीय नाटिका राजशेखर कृत विद्धशालभंजिका है। राजशेखर की एक अन्य रचना कर्पूरमंजरी सट्टक के नाम से उपलब्ध है। प्रवेशक और विष्कम्भक का समावेश नहीं रहने से यह सट्टक की श्रेणी में आती है। अन्यथा कथानक आदि अन्य बिन्दुओं पर ध्यान देने पर यह नाटिका जैसा ही है। इसकी कथावस्तु का परिचय पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। सातवीं शताब्दी (अर्थात् श्री हर्ष के काल) और दसवीं शताब्दी (अर्थात् राजशेखर के काल) के बीच लगभग तीन सौ वर्षों के अन्तराल में उल्लेख योग्य किसी अन्य नाटिका का संकेत संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने नहीं दिया है। नाटिका की प्रकृति के अनुकूल विलासी जीवन बिताने वाले राजाओं की कमी उस युग में नहीं थी। सातवीं शताब्दी की बाणभट्टविरचित कादम्बरी और हर्षचरित का अध्ययन इसका साक्ष्य है कि भारत के इतिहास में वह युग भोग प्रधान जीवन बिताने वाले छोटे-बड़े राजाओं से भरा था। यह संभावना की जा सकती है कि इस अवधि में अनेक नाटिकाओं की रचना हुई होगी। किन्तु कारणवश उन अज्ञातनामा कवियों या उनकी रचनाओं को किन्हीं काव्य प्रेमी राजाओं का आश्रय सम्भवतः नहीं प्राप्त हो सका होगा और वे रचनाएं पाण्डुलिपि की स्थिति से आगे नहीं बढ़ पायी होंगी।

राजशेखर कवि और विद्वान दोनों थे। कवित्व एवं तदनुकूल सुललित पद-विन्यास की दृष्टि से उनका स्थान प्रथम श्रेणी के कवियों में है। तत्कालीन प्रचलित विभिन्न भाषाओं तथा विभाषाओं से परिचय प्राप्त कर अपने को सर्वभाषाचतुर कहने में वे गौरव का अनुभव करते हैं।[६६] उनकी काव्यकृतियों को देखने से पता चलता है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार है। उनमें मौलिक प्रतिभा भी है। उनके काल तक लिखी गयी नाटिकाओं में कथावस्तु का जिस प्रकार का ढांचा पूर्ववर्ती कवियों ने अपनाया उसमें अपनी कल्पना और प्रतिभा का योग देकर राजशेखर ने एक नये ढंग से 'विद्धशालभंजिका' नाटिका की रचना की। इसकी कथावस्तु नाटकीय तकनीकी के अनुकूल होकर भी विलक्षणता से युक्त है।

---

६६. राजशेखर, कर्पूरमंजरी, अंक-१, पृ०-८,

पारिपार्श्विकः सव्वभाषाचउरेण तेण भणिदं ज्जेव्व।

इसकी नायिका मृगांकावली बालिका होकर भी बालक मृगांकवर्मन् के रूप में नायक विद्याधरमल्ल के सम्पर्क में आती है। रहस्यमय-स्थिति में दोनों का प्रेम-व्यापार चलता रहता है और जिसका पता ज्येष्ठा महारानी को तभी चलता है जब वह विनोदवश बालक मृगांकवर्मन् का विवाह अपने पति विद्याधरमल्ल से करवा डालती है। परिणय के पश्चात् यह रहस्य स्वयं स्पष्ट हो जाता है कि मृगांकवर्मन् बालक नहीं बल्कि मृगांकावली नाम की बालिका है। इस प्रकार महारानी स्वयं अपनी सपत्नी को लाकर मूर्ख बन जाती है। कथावस्तु में इस विलक्षणता का समावेश करने के साथ ही राजशेखर ने इसमें एक और विशेषता ला दी है। मृगांकवर्मन् को बालक समझने के भ्रम में अपनी ममेरी बहन और कुन्तल नरेश चण्डमहासेन की पुत्री कुवलयमाला का पाणिग्रहण महारानी उससे (मृगांकावली या मृगांकवर्मन् से) करवाना चाहती है। किंतु मृगांकवर्मन् के एकाएक बालक से बालिका में परिणत हो जाने की घटना से महारानी दोहरी मार खा जाती है और लाचार अपनी ममेरी बहन का भी विवाह अपने पति के साथ करवा डालती है। इस प्रकार जो एक सौत से घबड़ाती थी वह अपनी ही भूल से दो-दो सौतों को अन्तःपुर में बैठा लेती है। राजशेखर की मौलिक प्रतिमा ने नाटिका की घिसी-पिटी लीक पर चल कर भी इसे बिल्कुल नया जैसा बना दिया है। श्रीहर्ष की दोनों नाटिकाओं की नायिकाएं अपने-अपने पति को चक्रवर्ती सम्राट बनाने वाली सुलक्षण कुमारियां हैं, दैवज्ञ की इस उक्ति को सुनकर मन्त्री यौगन्धरायण अपने राजा उदयन को इससे लाभ पहुंचाने के लिए व्यग्र हो उठता है। उक्त दोनों रचनाओं के अनुकरण पर इस नाटिका में भी विद्याधरमल्ल का मन्त्री भागुरायण लाटाधीश चन्द्रवर्मा की पुत्री मृगांकावली को, जो बालक के वेष में रहती है अपने राजा के सम्पर्क में ले आता है और धीरे-धीरे दोनों में प्रेम-व्यापार चलने लगता है। अपने अन्तःपुर में बालक के वेष में रहने वाली नायिका को स्वप्न में देखकर तथा उसकी जैसी आकृतिवाली किसी परम सुन्दरी के भित्तिचित्र के प्रति प्रेमासक्त हुए नायक विद्याधरमल्ल की मानसिक व्यग्रता का चित्रण राजशेखर ने ऐसी निपुणता से किया है कि यह नाटिका यथार्थ में विलक्षण बन गई है। अन्य नाटिकाओं की नायिकाओं की अपेक्षा इस नाटिका की नायिका मृगांकावली के सामने कुछ विलक्षण ढंग का परिवेश प्रस्तुत किया गया है। एक ही राजभवन में रहते हुए भी नायक और पुरुषवेषिणी नायिका दोनों परस्पर मिलने के लिए तरसते ही रहते हैं। तीसरे अंक में उनके प्रलाप-विलाप के पश्चात् कुछ क्षण के लिये मिलन होता है जहां नायक नायिका के गले में वही रत्नमाला पहना देता है, जो स्वप्न की सुन्दरी ने कभी अर्पित की थी। मंत्री भागुरायण के द्वारा सारे रहस्य को जानने वाली और इस कार्य के लिए नियुक्त एकमात्र दूती जो विचक्षणा नाम की अन्तःपुर की दासी है, महारानी मदनावती के वहां आगमन की सूचना से ही भय से कांप उठती है और

महाराज से कहती है कि प्रियसखी (मृगांकावली) को यहां से जाने दीजिये ।[६७] प्रसंगतः यह स्पष्ट है कि स्वप्न में या चित्र में देखने के अतिरिक्त राजा ने मृगांकावली को इस रूप में निकट से इसके पहले कभी नहीं देखा है । दोनों की यह पहली ही भेंट है। अब राजा को न ज्योत्स्ना ही संतप्त करती है और न मृगांकावली को शीतल उपचार की ही आवश्यकता है । कवि ने नाटिका में इसका कई बार उल्लेख किया है कि रानियों से अन्तःपुर भरा हुआ है । एक अन्य दासी, सुलक्षणा दासी से कहती हैं कि जिसने हजारों का पाणिग्रहण कर लिया है उसके हृदय में नई दुल्हन पाने के लिए भला कौन-सा कौतूहल हो सकता है ।[६८] वहीं नहले पर दहला देती हुई दूसरी दासी कहती है कि नाम तो तुम्हारा विचक्षणा-बुद्धिमती अवश्य है लेकिन कामदेव की महिमा को तुम नहीं समझती हो । कामी लोगों में नित्य नवीन के प्रति कौतूहल रहता है ।[६९] इस प्रकार राजा की विलासप्रियता की कटु आलोचना दासियों के मुख से करवा कर भी राजशेखर ने अन्तःपुर की मर्यादा को भंग नहीं होने दिया है । राजा भी नायिका से मिलने के लिए किसी अवैध उपाय का अवलम्बन करता हुआ चित्रित नहीं किया गया है ।

नाटिका के तीसरे अंक में, विचक्षणा के प्रयास से, नायिका और नायक के मिलन के अवसर पर नायिका को स्त्र्युचित वेष में प्रस्तुत किया गया है । वह रेशमी साड़ी पहन कर आई हुई है । उसके गले में मोतियों के हार लटक रहे हैं । उरोज युगल के ऊपर कपूर का लेप कर दिया गया है । कलाइयों पर कमललता के कंगकन शोभ रहे हैं ।[७०] स्मरणीय है कि अन्तःपुर में विचक्षणा और सुलक्षणा के अतिरिक्त

---

६७. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३, पृ० ९०

विचक्षणा-भर्तः, विसृज्यतां प्रियसखी ।

६८. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-४, पृ० १०६

अन्या—अह सुलक्षणे । किमिव लक्षणं मन्त्र्यते ।

यतः सहस्राणाँ पाणि ग्राहितस्य क इवकौतूहल-हल-हलकः ।

६९. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-४, पृ० १०६

अपरा—प्रियवियस्ये ! विचक्षणासि, किन्तु खल्वनभिज्ञासि

कन्दपंचरितानाम् ? यदिदानीं नवं नवं कौतूहलं कामिजने ।

७०. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**,

राजा—कण्ठे मौक्तिकमालिकाःस्तनतटे कार्पूरमच्छं रजः
सान्द्रं चन्दनमंगके वलयिताःपाणौ मृणालीलताः ।
तन्वी नक्तमियं चकास्ति शुचिनी चीनांशुके बिभ्रती
शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योमाग्रमारोहतः ॥ ३/१६

नायिका के सम्बन्ध की गुप्त बातें अन्य किसी को ज्ञात नहीं है। दासी विचक्षणा अपने दौत्य कार्य को सफल होते देखकर आश्वस्त होती है कि महाराज भी कामपीड़ा से संतप्त हो रहे हैं।[७१] मृगांकवर्मन् को अपने मामा चन्द्रवर्मा का बालक जान कर महारानी मदनावती उसे अन्तःपुर में ही रखती है। उसके तारुण्योचित शारीरिक विकास पर मदनावती का थोड़ा भी ध्यान नहीं खिचता है, यह आश्चर्यकर है। अपने आश्रय में पोषण पाती हुई कुवलयमाला नाम की एक अन्य युवती राजकुमारी का, अपने मामा के पुत्र मृगांकवर्मन् के साथ विवाह करा कर महारानी सपत्नी से बचने की भूमिका तैयार कर रही है। उसके पूर्व, वह अपने जानते, बालक को बालिका का वेष पहना कर और उसके साथ राजा का विवाह करा कर, अन्तःपुर में परिहास-महोत्सव की योजना बनाने में संलग्न है। परन्तु विधि का विधान विचित्र ही है। मामा चन्द्रवर्मा का दूत आकर सारे रहस्य का उद्घाटन, विवाह मंडप पर बैठे राजा विद्याधर के समक्ष कर देता है कि मृगांकवर्मन् चन्द्रवर्मा की पुत्री है।

नाटिका के लक्षण को सर्वांशतः ध्यान में रखने के कारण राजशेखर के सामने विद्धशालभंजिका की कथावस्तु की विलक्षणता के चलते अनेक कठिनाइयां आयी होंगी, किन्तु, इनकी सधी हुई लेखनी ने बड़ी निपुणता से उन्हें दूर कर दिया है। किसी सुन्दरी नायिका को स्वप्न में राजा को दिखलाना, चित्रभित्ति एवं शालभञ्जिका (मूर्ति) के आधार पर राजा के मनोराग को नायिका के प्रति उद्वेलित करवाना तथा देवी मदनावती की परिहास-योजना से यथार्थ को जन्म देना राजशेखर की कल्पना का निदर्शन है।

जहां तक नायिका के प्रति ज्येष्ठा के अच्छे या बुरे व्यवहार का प्रश्न है, अन्य नाटिकाओं की तरह इसमें उसकी संभावना ही नहीं की जा सकती, क्योंकि महारानी अपने जानते, अपने ममेरे भाई को ही अपने आश्रय में पाल रही है। प्रियदर्शिका की आरण्यका अपने उच्च वंश की दुहाई देकर अपने दासी जीवन को कोसती है। रत्नावली की नायिका को भी उसी परिस्थिति से गुजरना पड़ता है। किन्तु प्रस्तुत नाटक की नायिका उस संताप से सर्वथा मुक्त रहती है। महारानी को ईर्ष्या और द्वेष हो भी तो किससे ? महाराज की अन्यमनस्कता का कारण कोई स्वप्नसुन्दरी है जिस पर आक्रोश वह कर ही नहीं सकती है। हास-परिहास के लिए कल के चक्रवर्ती और आज के महाराजा के साथ कृत्रिम विवाह मंडप पर महारानी मदनावती का व्यवहार उचित नहीं जान पड़ता है। सम्पूर्ण स्थिति के अध्ययन से जान पड़ता है कि यह महारानी

---

७१. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३, पृ०-८३

विचक्षणा-सखि मृगांकावलि ! फलितं मे दूतीत्वेन
यन्महाराजोऽपि एतादृशमवस्थान्तरमुद्वहति ॥

का अन्त:पुर नहीं बच्चों का क्रीड़ा-भवन है, जहां माननीया देवी अपने आराध्य पतिदेव को या पति के मित्र विदूषक को शतरंज के मुहरे बनाकर अपना तथा दासियों के मनोरंजन का साधन जुटाती है। दाम्पत्य या गार्हस्थ्य जीवन की अवस्था तत्कालीन समाज में कैसी रही होगी, इसकी कल्पना उक्त एक घटना के आधार पर की जा सकती है। कृत्रिम-विवाह के मंडप पर देवी मदनावती कुवलयमाला से कहती है कि देखो अपने पति को जो हमारे महाराज के साथ ब्याही जा रही है। दूसरी ओर, भांवर देने के लिए और प्रज्वलित अग्नि में लावा की आहुति देने के लिए महाराज से आग्रह करती है।[७२] जो देवी अपनी धात्री-पुत्री मेखला को अपमानित करने के कारण विदूषक को डाटती है,[७३] जो धात्रीपुत्री को जीवनदान देने के लिए विदूषक के सामने गिड़गिड़ा सकती है, वही अपने पति के साथ विकृत परिहास करती है।[७४] धात्रीपुत्री होकर भी मेखला महारानी के सामने महाराज पर छींटें कसती है।[७५] इसी प्रकार वहां से देवी के क्रुद्ध होकर चले जाने पर, जब महाराज कहते हैं कि देवी रोती हुई चली गई हैं, महारानी के प्रति अनुचित व्यवहार का परिचय देते हुए कहता है कि कि महारानी रोयें और खूब रोयें। क्या इससे इनके मोती झड़ जायेंगे?[७६] इस प्रकार कथावस्तु के सारे परिवेश से स्पष्ट है कि वह अन्त:पुर हास-परिहास मात्र की क्रीड़ा-स्थली है। अपने अथवा दूसरे के पद या मर्यादा के निर्वाह की चिन्ता न देवी या महाराज को है और न दास-दासियों को ही। तीसरे अंक में वेदज्ञ ब्राह्मण के दोनों पैरों के बीच से दासी मेखला के निकल जाने वाली घटना समाज में प्रचलित अन्ध-

---

७२. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-४, पृ०-११२

पश्याऽऽत्मनोभर्तारम् आर्यपुत्रेण परिणीयमानम्।
सांप्रतं भ्रामरी: करोतु महाराज: दीयन्तामाज्य-प्रज्वलितेहुतबहे लाजा:।

७३. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३ पृ०-७०

आर्यपुत्र,युक्तं न, असदृशं नर्म, यदिदानीन्ते
प्रियास्नेह भूमिमेखलैव विडम्ब्यते।

७४. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३, पृ०-६८

आर्य चारायण, देहि मे धात्रेयिकाभिक्षां, जीवय मेखलाम्।

७५. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३ पृ० ७०

मेखला-देवी ! न शक्यते एष उत्तरै:पराजेतुं
महाराज एतस्य गुरु:।

७६. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३, पृ० ७१

विदूषक-रोदितु, रोदितु, किमस्या मौक्तिकानि गलिष्यन्ति।

विश्वास की ओर संकेत करती है।[७७] ब्राह्मणों के चरण पवित्र होते हैं इस उक्ति को दासी विचक्षणा ब्राह्मणों का कपट नाटक बताती है।[७८] आशय यह है कि उस अन्तःपुर का वातावरण विचित्रता से भरा है।

कर्णसुन्दरी नाटिका की रचना लगभग १०८०-९० ई० के समय विल्हण कवि ने की थी। श्रीहर्ष की प्रियदर्शिका तथा रत्नावली नाटिकाओं के सादृश्य पर ही इसकी रचना की गई है। विद्वानों का कहना है कि चालुक्यवंशी राजा कर्णदेव का विवाह किसी भाग्यशालिनी राजकुमारी के साथ हुआ था। इसी तथ्य को आधार मान कर विद्याधरों के राजा की कन्या कर्णसुन्दरा का विवाह चालुक्य-राज के साथ हुआ है और यही है इस नाटिका का विषय। अमात्य सम्पत्कर को पता चलता है कि कर्णसुन्दरी के साथ विवाह करने वाला व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट बनेगा और इस सुयोग से अपने स्वामी को लाभ पहुंचाने की योजना बनाकर वह उस सुन्दरी राजकुमारी को अपने राजा के अन्तःपुर में लाकर रख देता है और साथ ही महारानी मदनलेखा के कोपसे बचने के लिए भी वह उपयुक्त भूमिका तैयार करने में जुट जाता है। इधर चालुक्यराज स्वप्न में किसी अलौकिक सुन्दरी को देखकर उस पर मोहित हो जाता है। खिन्नता एवं अन्यमनस्कता की स्थिति में वह विदूषक के साथ कभी इस उद्यान में तो कभी उस उपवन में समय काटता फिरता है। विदूषक राजा को शान्ति दिलाने के उद्देश्य से मदनोद्यान में ले जाता है जहां लीलागृह के भित्तिफलक पर अंकित उस स्वप्नसुन्दरी के चित्र को देखकर राजा की उत्कंठा और भी अधिक तीव्र हो उठती है और उस सुन्दरी से मिले बिना जैसे वह अब रह नहीं सकेगा ऐसा प्रतीत होने लगता है। इसी क्रम में राजा चित्रगत सुन्दरी को प्राणवान् बनाने की प्रार्थना तन्मय होकर कामदेव से कर ही रहा है कि पीछे से दासी हारलता के साथ उद्यान में आई हुई महारानी सब कुछ सुन लेती है। महाराज तो देवी को झुठला देना चाहते हैं, किन्तु कर्णसुन्दरी के चित्र को देखते ही महारानी सारे रहस्य को जान जाती है और क्रुद्ध हो-कर उद्यान से चली जाती है।

उधर विरहाकुला कर्णसुन्दरी के लिए शीतलोपचार लेकर तरंगवती दासी से विदूषक की भेंट होती है और नायिका तथा नायक के उभयपक्षीय प्रेमासक्ति की जान-

---

७७. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३, पृ० ६३,

अहो ते वैचक्षण्यम्। यतो मुनयोऽप्येवं
स्मरन्ति पादेभ्यो ब्राह्मणाः पवित्रयन्ति सर्वम्।

७८. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३, पृ० ६३,

अहो कपटनाटक-कवित्वं ब्राह्मणस्य।

कारी दोनों को मिलती है। दुःखी राजा के मन को बहलाने के लिए विदूषक पुनः उन्हें चित्रशाला में ले जाता है जहाँ चित्रगत सुन्दरी को भित्तिफलक पर नहीं देखकर और इसके पीछे देवी का हाथ जानकर वे और भी दुःखी हो जाते हैं । वहां से दोनों लीलावन में जाते हैं वहां सरोवर में कमलों के बीच खड़ी लक्ष्मी सदृश कर्णसुन्दरी को देखकर महाराज के हर्ष की सीमा नहीं रह जाती । कुछ देर के बाद साथ में आई हुई सहेली और कर्णसुन्दरी के बीच विरह सम्बन्धी वार्तालाप को लता की ओट से सुनकर राजा प्रसन्न हो जाते हैं । अपने विरह की चर्चा करती हुई कर्णसुन्दरी संज्ञाशून्य हो जाती है । राजा सामने आ जाते हैं और सखी के आग्रह पर अपने हाथ के स्पर्श से होश में ला देते हैं । राजा उसका आलिंगन करना ही चाहते हैं कि विदूषक के मुख से देवी के आगमन की सूचना पाकर घबड़ाकर अलग हो जाते हैं ।

अब कर्णसुन्दरी और महाराज के प्रेम की चर्चा कानोंकान सारे अन्तःपुर में होने लगी है । विदूषक की योजना के अनुसार राजा सन्ध्या के धुंधलके में कर्णसुन्दरी से मिलने के लिए संकेतस्थान में पहुंचते हैं, किन्तु देवी उस योजना को नष्ट करने और राजा को धोखा देने की इच्छा से स्वयं कर्णसुन्दरी के वेष में और अपनी दासी हारलता को बकुलावली बनाकर संकेतस्थान में पहुंच जाती है । धोखे में राजा कर्ण-सुन्दरी के प्रति अपना प्रेमोद्‌गार प्रकट करते हुए जैसे ही उसका आलिंगन करना चाहते हैं कि देवी प्रकट होकर उन्हें लज्जित कर देती है और स्वयं क्रुद्ध होती हुई वहां से चल देती है । राजा गिड़गिड़ाते हैं, रानी के पैरों पड़ते हैं किन्तु देवी हारलता के साथ क्रोध प्रकट करती हुई वहां से चल पड़ती है ।

अमात्य देवी के भगिनी-पुत्र को, जो वय और आकृति में कर्णसुन्दरी के समान ही है, लाकर कर्णसुन्दरी के कक्ष में ही रख देता है । देवी महाराज के साथ परिहास करने के लिए कर्णसुन्दरी के नाम पर अपने भगिनी पुत्र को वधूवेष में मंडप पर लाकर उसी से उनका विवाह कराने का आयोजन करती है । किन्तु, अमात्य की बुद्धिमता से बालक के बदले बालिका कर्णसुन्दरी के साथ राजा का विवाह हो जाता है । दूत के आगमन के पश्चात् सभी को सूचना मिलती है कि शत्रु-राजाओं को युद्ध में परास्त कर दिया गया है और इस प्रकार नायक चक्रवर्ती राजा हो जाता है ।

इस नाटिका की नायिका विद्याधरराज की मुग्धा कन्या है और चालुक्यवंशी राजा के अन्तःपुर में अमात्य सम्पतकर के द्वारा रख दी गयी है । महारानी अपनी देख-रेख में उसे शृंगार रस को छोड़ कर अन्य शास्त्रीय कलाओं का अभ्यास कराती है ।

दूसरे अंक में तरंगवती दासी विदूषक से यही कहती है।[७९] स्वप्न में और फिर चित्र में उसकी छवि देख कर ही राजा उसके लिए विरहाकुल हो उठते हैं इससे ज्ञात होता है कि वह भाग्यशालिनी ही नहीं है अपितु अलौकिक सुन्दरी भी है अर्धचेतनावस्था में ही उसकी नायक से भेंट होती है, किन्तु हठात् देवी के वहां आ जाने से प्रेमालाप में विघ्न पड़ जाने को वह अनभ्र वज्रपात की तरह मानती है।[८०] नाटिका की नायिका होकर भी, विद्याधरों की कन्या होने के अतिरिक्त इसके संबंध को अन्य किसी बिन्दु का संकेत इस नाटिका में नहीं मिलता है। किस परिस्थिति में अमात्य को यह बालिका प्राप्त हुई और अमात्य ने किस प्रकार इसे अपने आश्रय में अन्तःपुर में रखने के लिए महारानी को राजी किया ये सब बातें अचर्चित है। महारानी स्वयं इस बालिका को कामशास्त्र से भिन्न लक्षण ग्रन्थों का अभ्यास कराने लगी है, इसका आधार क्या है यह भी अज्ञात है। इस राजकुमारी के भाग्यशालिनी होने का प्रमाण नाटिका के अन्त में उस समय मिलता है जब महाराज से परिचित होने के पश्चात् ही प्रधान सेनापति वीरसिंह आकर सूचित करता है कि सिंधु तट पर गर्जनाधिपति की सेना को परास्त कर हमारी सेना ने विजय प्राप्त कर ली है।

जहांतक ज्येष्ठा नायिका महारानी का प्रश्न है वह प्रगल्भा श्रेणी की है और पदे पदे मान एवं ईर्ष्या आदि क्रियाओं में पूर्ण निपुण है। अन्तःपुर में उसने अपनी दूतियों का जाल सा बिछा रखा है। विदूषक नायिका कर्णसुन्दरी और राजा के गुप्त-मिलन की योजना बनाता है किन्तु महारानी उस योजना को नष्ट ही नहीं करती बल्कि स्वयं कर्णसुन्दरी का वेषधारण कर और हारलता को बकुलावली जैसी बनाकर संकेत स्थान में पहुंच भी जाती है।[८१] चित्रशाला में अंकित कर्णसुन्दरी के चित्र को धो-पोंछ कर वह बराबर कर डालती है ताकि राजा उसे बार-बार न देख सकें और

---

७९. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-१ पृ.२०,

देव्याः सकाशे शिक्षते लक्षणानामनुशीलनानि,
अमदना बहुविधा लीला अपि।

८०. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-३, पृ. ३६

नायिका-अनभ्रे इदं वज्रपतनं प्रेक्षितम्।

८१. विल्हण, **कर्णसुदरी**, अं-३, पृ. ३०

बकुलावली—देव्या सर्वमपि श्रुत्वाहं भणिता।
अद्यमया कर्णसुन्दरीरूपेण त्वया तस्याः
सखीरूपेण गत्वार्यपुत्रो वञ्चयितव्यः।

इस प्रकार वह मार्ग के कांटे को दूर कर देना चाहती है।[८२] किन्तु लाख चाह कर भी वह जब कर्णसुन्दरी और राजा के प्रेम के बीच व्यवधान नहीं डाल पाती, तब अपने भगिनी-पुत्र को कर्णसुन्दरी का वेष पहनाकर, उसके साथ राजा को विवाह सूत्र में बांधकर उन्हें अपने मनोरंजन का साधन बनाना चाहती है। अन्य नायिका से छिपकर प्रेम करने के अपराध में अपने पति को वह सबक सिखाना चाहती है, यहां तक तो बात समझ में आती है; किन्तु अपनी बहन के जवान बेटे को स्त्र्युचित वेषभूषा में सुसज्जित कर, उसे घूंघट में विवाह-मण्डप में बैठाने की उसकी योजना का कोई तुक नहीं बैठता है। नाटिका का सारा परिवेश कुछ इस ढंग का प्रतीत होता है मानो हम प्रागैतिहासिक आदिमानव के युग में पहुच गए हैं। अमात्य महारानी की योजना को समझ कर यथार्थ कर्णसुन्दरी को ही विवाह-मंडप पर भेजता है और विवाहकार्य सम्पन्न होने के पश्चात रहस्य का उद्घाटन बड़े विलक्षण ढंग से करता है। अमात्य महारानी को सुनाकर प्रतिहारी को आदेश देता है कि जरा जाकर मेरे महल में यह देख आओ कि देवी का भागिनेय कुमार वहां अकेला बैठा हुआ है या अपने मित्रों के साथ है।[८३] इस पर प्रतिहारी कहती है कि मैं अभी देख कर आई हूं।[८४] वह झूले पर बैठा झूल रहा है। अमात्य और प्रतिहारी की बातचीत से महारानी के पैरों के नीचे की धरती खिसक जाती है और वह अपने भाग्य को कोसने लगती है।[८५] महारानी यह जानती है कि कर्णसुन्दरी का पति चक्रवर्ती सम्राट् होगा जैसा कि वह वधूवेष में अपने भागिनेय को महाराज को परिहासवश समर्पित करती हुई कहती है।[८६]

---

८२. विल्हण, **कर्णसुन्दरी** अं-२, पृ-२४

राजा-(निःश्वस्य) कथमुत्प्रोञ्छितं तदनंगशस्त्रम्।
अहो निर्दयादेवी।

८३. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-४, पृ०५३

देवीभागिनेयः कुमारः कौतुकेनानीत आसीन्मया
स्वमन्दिरे बन्धुसंगतो न वेति जानीहि।

८४. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-४, पृ०-५३

प्रतिहारी-साम्प्रतमेव मया हिण्डन् दृष्टः।

८५. विल्हण, **कर्णसुन्दरी** अं-४, पृ-५३

हा, हतास्मि मन्दभागिनी। मया कथितमेव कैतवमिति
प्रत्यक्षं सैव एषेति। तद्वंचितास्मि किं क्रियते।

८६. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-४,पृ-५२

एषा मया तुभ्यं समर्पिता भजैतच्चतुः समुद्रपृथिव्या रत्नम्।

यदि यथार्थ में वह आदर्श-पत्नी होने के दायित्व को निभाने वाली नारी होती तो कर्ण सुन्दरी के सम्बन्ध में सब कुछ जान लेने पर उसका विवाह अपने पति के साथ स्वेच्छा से करवाती। किन्तु वैसा वह कर नहीं सकी है। ऐसे ही प्रसंग में मालविकाग्निमित्र की परिव्राजिका कहती है कि भर्तृवत्सला साध्वी पत्नियां अपने लिए सपत्नी लाकर भी पति को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती है।[८७]

इस प्रकार तत्कालीन समाज में पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध सन्तोषप्रद नहीं प्रतीत होता है। कर्णसुन्दरी का वेषधारण कर महारानी महाराज से परिहास करने चलती है तो हारलता जैसी समझदार दासी भी उसके आदेश को मानकर अपना सहयोग उसमें देती है; अन्यथा यह दासी कितनी प्रबुद्ध और उत्तम विचार वाली है, इसका संकेत प्रथम अंक के अन्त में महारानी और उसके बीच हुई बातचीत से मिलता है।[८८]

द्वादश शताब्दी में रचित 'उषारागोदया' नाटिका का कथानक द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध और असुरराज बाण की दुहिता उषा के परस्पर प्रणय पर आधारित है। उषा और अनिरुद्ध के कथानक की चर्चा विष्णुपुराण में की गई है।[८९] नाटकीय तकनीक के अनुसार नाटिका का कथानक कवि-कल्पित होना चाहिए। किन्तु इस नाटिका के लेखक रूद्रचन्द्रदेव ने पुराण-प्रसिद्ध उषा-अनिरुद्ध कथा के परिणय वाले अंश को नाटिका के परिवेश में लाकर तथा अपनी मौलिक प्रतिभा का योग देकर उस अंश को सर्वथा नवीन जैसा बना डाला है।

उपरिविवेचित नाटिकाओं के नायक का परिणय कनिष्ठ नायिका के साथ होने की पृष्ठभूमि में राजा या उसके राज्यके किसी कल्याणकारी उद्देश्य की पूर्ति है। यथा अमुक राजकुमारी के साथ परिणय-सूत्र में बंधनेवाला राजा अवश्य ही चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा या विवाहोपरान्त साक्षात् लक्ष्मी दर्शन देकर वर-वधू को अभीष्ट वर प्रदान करेंगी।

---

८७. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**

प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाःसाध्व्यः।
अन्यसरितामपि जलं समुद्रगाःप्रापयन्त्युदधिम्॥ ५/१९

८८. बिल्हण, **कर्णसुन्दरी** अं-१, पृ, १६

त्वद्दर्शैकजीवितस्य नास्त्यन्या वाणी।
एवंविधा एव स्वप्ना च विप्रलम्भका भवन्ति।
न किमप्याशंकनीयम्।

८९. **विष्णुपुराण**, ५/३२-३३

उक्त आशय की सूचना सर्वप्रथम महामन्त्री को किसी दैवज्ञ की भविष्य वाणी द्वारा अथवा आकाशवाणी से दी जाती है और वह महामन्त्री ज्येष्ठा महारानी के कोप से बचता हुआ उस कनिष्ठा नायिका को अन्तःपुर में लाकर रख देता है और ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहता है, जब स्वयं ज्येष्ठा महारानी नई सपत्नी का स्वागत करती हुई उसके साथ अपने पति का विवाह सम्पन्न करा देगी। प्रस्तुत नाटिकाकार उषा और अनिरुद्ध में अनुरक्ति उत्पन्न कराने एवं दोनों को प्रणय-सूत्र में बांधने के लिए प्रेरित करने का भार पुराण-प्रसिद्ध महामुनि नारद को सौंप देता है। एक प्रकार से नारदमुनि के आदेश का पालन करने के विचार से ही महारानी अपनी स्वीकृति देती है और नारद की इच्छा ही अवश्यकरणीय आज्ञा बन जाती है। विष्णुपुराण के अनुसार बाणासुर की कन्या उषा द्वारकाधीश श्री कृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को स्वप्न में देखती है और उस पर मुग्ध होकर अपनी विश्वस्त और प्रिय सखी चित्रलेखा को कुमार अनिरुद्ध के पास भेजती है। स्वप्न संवाद और चित्रलेखा के मुख से उषा के विरह-ताप का वर्णन सुनकर अनिरुद्ध बाणासुर की नगरी शोणितपुर (या लोहितपुर) के लिए प्रस्थान करते हैं और राजकुमारी उषा से छिपकर मिलते हैं। वहीं गान्धर्व विधि से दोनों विवाह-सूत्र में बंध जाते है। जब बाणासुर को इस गुप्त-प्रणय और विवाह की सूचना मिलती है तो वह क्रुद्ध होकर अनिरुद्ध को कारागार में डाल देता है। उधर कुमार के असुरराज के अन्तःपुर में बन्दी हो जाने की सूचना मिलते ही श्री कृष्ण एक बहुत बड़ी सेना लेकर शोणितपुर को घेर लेते हैं। बाणासुर के साथ भीषण युद्ध होता है और अन्त में श्रीकृष्ण असुरराज को पराजित कर अपने पौत्र अनिरुद्ध और वधू उषा को रथ पर बैठा कर द्वारका ले आते हैं।

जहां तक प्रस्तुत नाटिका की कथानक का सम्बन्ध है, प्रथम अंक के आरम्भ में सूत्रधार सूचित करता है कि कृष्ण के शोणितपुर से लौट आने की प्रतीक्षा द्वारका वासी बड़ी अधीरता से कर रहे हैं और श्रीकृष्ण द्वारा विजय-प्राप्ति के उपलक्ष में उषारागोदया नाटिका का अभिनय किया जाना चाहिए।[६०] विजेता श्रीकृष्ण के सखा उद्धव इस उधेड़बुन में पड़े हुए हैं कि जब तक बाणासुर का विनाश नहीं होता है तब तक वत्स अनिरुद्ध को बन्धन से मुक्ति दिलाना कठिन है और मुक्ति का आयोजन तब तक बेकार है जब तक कि उस अलौकिक सुन्दरी उषा की प्राप्ति कुमार को नहीं हो जाती पुनः इतना सब कुछ हो जाने के पश्चात् भी यदि अनिरुद्ध की ज्येष्ठा महारानी रुक्मवती-उषा और उसके विवाह-सूत्र में बंध जाने की स्वीकृति नहीं दे देती हैं तो ये सब के सब व्यर्थ ही हैं। अन्य नाटिकाओं की भांति यहां भी उक्त कार्य के सम्पादन के लिए श्री

कृष्ण के महामात्य उद्धव चिन्हित जान पड़ते हैं।[९०] उद्धव से यह भी ज्ञात होता है कि शोणितपुर में बाण के द्वारा अनिरुद्ध को वन्दी वना लेने के पश्चात्, नारद की प्रेरणा से, श्रीकृष्ण कुमार को असुरराज के चंगुल से मुक्त कराने गये हैं।[९१] किन्तु नाटिका के अनुसार अनिरुद्ध को शोणितपुर के कारागार से मुक्त कराकर श्रीकृष्ण ने पहले ही भेज दिया है। उषा अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा के साथ (तीसरे अंक के आरम्भ में मयुरयान से द्वारका के प्रमोदोद्यान में पहली बार उतरती है। वधू के रूप में उसके गृह-प्रवेशोत्सव की तैयारी महारानी रुक्मवती को करनी है। इस प्रकार घटनाए स्वयं इस रूप में घटती चली गई हैं कि यथार्थ में रुक्मवती को मान, ईर्ष्या, क्रोध आदि करने के समुचित अवसर ही नहीं मिल पाये हैं। तीसरे अंक में मयूर-विमान से उषा के उतरने के साथ ही एक मुनिकुमार द्वारका के राजमहल में पहले से ही उपस्थित हैं।[९३] ताकि शोणितपुर से उषा के पहुंचते हो उसका पाणिग्रहण विधिवत् अनिरुद्ध के साथ करवा दिया जाय।[९४] इसी अंक के अन्त में दासी मालविका और कंचुकी के परस्पर

---

९०. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, अं-१,पृ-१

किमाज्ञापयति भगवती यदुत विजितं कंसारिणा तदागमनं
प्रतीक्षमाणा असमयजनितवसन्तोत्सवेन पुरीमानन्दयन्तु द्वारकौकसः
इति।

९१. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**,

वाणोन्मूलनमन्तरेण कियती वत्सस्य मोक्षप्रथा मोक्षोप्यस्य च
कीदृशो यदि न तां प्राप्नोतिलोकोत्तराम्।
प्राप्ताप्यस्य विदर्भराजतनया शुद्धप्रसादादृते कीदृक् चेति तु
चिन्तयेव हृदयं दौलाधिरोहायते॥ १/६

९२. रुद्रचंद्रदेव, **उषारागोदया**,अं-२, पृ-११

उद्धवःयथा भगवान् नारदोत्साहितामर्षो बलिनिषूदनो गत
एवास्खलितप्रतिज्ञः शोणितपुरम्।

९३. रुद्रचचंद्रदेव, **उषारागोदया**, अं३-पृ-२९

प्रथमइतः प्रेक्षस्व, तथा पर्वतप्रयाससुलर्बाहियानादवतरनि
प्रमोदोद्याने चित्रलेखाद्वितीया वाणदुहिता।
तद्गच्छावः रूकमवत्यै गृहप्रवेशविहारं विनिवेदयितुम् देवर्षिम्।

९४. रुद्रचंद्रदेव, **उषारागोदया**, अं३-,पृ-२९

तदेहि त्वरितं भगवते नारदाय निवेदयावः।
उत्साहयति च कृतकार्यता।

भाषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारद की आज्ञा से महारानी ने कुमार अनिरुद्ध और उषा के विवाह की तैयारी करने का आदेश दिया है। इसका आशय यह है कि इस नाटिका के कथानक को उन दोनों ही अंशों से वंचित रखा गया है जिसमें ज्येष्ठा नायिका को मान, क्रोध आदि दिखलाने का पर्याप्त आधार और अवसर मिलता है तथा उस अंश से भी अलग रखा गया है जब नाटिका के अन्तिम अंक में कनिष्ठा नायिका से सम्बद्ध किसी गूढ़ रहस्य का उद्‌घाटन महामन्त्री या कोई अन्य व्यक्ति कर देता है और तब कहीं जाकर महारानी की स्वीकृति से विवाहोत्सव सम्पन्न होता है। प्रथम अंक के अन्त में दोलारोहण वाले प्रसंग में कुमार के द्वारा वर्षा-ऋतु का वर्णन करना महारानी के कोप का कारण बतलाया गया है। किन्तु प्रसंग को इस ढंग से रखा गया है कि उसके क्रोध या ईर्ष्या के भाव बलात् आरोपित से लगते हैं। संभव है, बाणासुर के अन्तःपुर में रंगे हाथ कुमार के पकड़े जाने पर महारानी ने पूर्वग्रह से ग्रसित होकर कोप किया हो। बड़ी महारानी के द्वारा कनिष्ठा नायिका के कारागार आदि में डाल देने की चर्चा करने के बदले विदूषक स्वप्न में यह देखता है कि कुमार को नागपाश से बांध दिया गया है और एक सहस्र भुजा वाले दिव्यपुरुष ने उसे बन्धन से मुक्त करवाया है।[९५] स्वप्न में देखे गए इस दृश्य को बड़बड़ाते हुए विदूषक को अस्पष्ट रूप में सुनकर कुमार दुःख प्रकट करने लगे हैं कि उनकी प्रेयसी उषा को महारानी ने नागपाश से बांध दिया है; किन्तु, यथार्थ में न उषा और न कुमार ही किसी बन्धन में बंधे हैं।

इस प्रकार महारानी के कोप तथा कनिष्ठा नायिका के कारागार आदि में डालने के प्रसंग की दूरारूढ़ चर्चा की गयी है। कनिष्ठा नायिका उषा तृतीय अंक में पहली बार मंच पर सखी चित्रलेखा के साथ दिखलायी पड़ती है और अपने प्रियजनों से दूर पड़ जाने कारण दुःखी जान पड़ती हैं। दूसरे ही क्षण, वहीं प्रमदोद्यान में कुमार अनिरुद्ध के चित्रफलक को देखकर अपने व्यग्र मन को तब तक कुछ शान्ति पहुंचाना चाहती है जब तक कि कुमार स्वयं सामने नहीं आ जाते। द्वारका में आने के पश्चात् और कुमार के चित्रफलक को देखकर, अपनी प्रतिक्रिया पर विचार कर वह कहती है कि मैं कितनी निर्लज्ज हूं कि अपने परिजनों के सामने ही इस कुमार के सौंदर्य पर मोहित होकर चित्रलिखित की तरह संज्ञा रहित हो गयी। असुर कन्या होकर भी

---

९५. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, अं-४, पृ-४४

विदूषक—अन्यदेव भणितं मया अन्यदेव श्रुतं त्वया।

....

स्वप्नं भणामि, मान्यथा संभावय। सुप्ते समीहितशंसी लक्ष्यते।

उषा एक कुलीन वंश की कन्या की भांति अपने मन की दुर्बलता को स्वीकार करती[९६] है। उसी चित्रफलक पर स्वरचित दो पद्यों को लिखकर और अपने विरहताप को निवेदित करती वह असुरकन्या अपनी काव्य विषयक क्षमता का भी परिचय देती है। किन्तु, अन्य नाटिकाओं में जहां कनिष्ठा नायिका की प्रियसखी नायक के साथ नायिका के समागम के लिए व्यस्तता दिखलाती है, वहां इस नाटिका की नायिका स्वयं बड़ी उत्सुक जान पड़ती है। वस्तुतः सखी चित्रलेखा इसी कारण बहुत कुछ आश्वस्त है कि कुमार अनिरुद्ध को अपनी माया से शोणितपुर में ले जाकर उषा के साथ समागम वह पहले ही करा चुकी है। इधर नारदजी के आदेश का उल्लंघन महारानी रूपवती कर नहीं सकती और इस प्रकार इस सम्बन्ध में विशेष चिन्तित या व्यस्त होने की आवश्यकता ही नहीं है।

ज्येष्ठा नायिका रुक्मवती को भी नाटिका के उपयुक्त भूमिका नहीं मिल पायी है। ऐसा जान पड़ता हैं कि नाटिका के आरम्भ में ही नारद जी ने ऐसा वातावरण बना दिया है कि ज्येष्ठा की बोलती ही जैसे बन्द हो गई हो। कुमार के पितामह श्री कृष्ण स्वयं इसमें रुचि दिखला रहे हैं और उन्होंने ही शोणितपुर पर विजय प्राप्त कर उषा को वहां से भिजवाया है। अतः रुक्मवती कर ही क्या सकती है? फिर भी रुक्मवती के इस धैर्य और सौजन्य की प्रशंसा नारद जी स्वयं उसी से करते हैं।[९७]

उषारागोदया नाटिका इस प्रकार दुर्बल कथानक से ग्रथित होने के कारण सर्वांशतः नाटिका जैसी प्रतीत नहीं होती है।हां, कवि रुद्रचन्द्रदेव की कविप्रतिभा कहीं भी कुण्ठित नहीं है। प्रसंगों का आधार भले ही क्षीण हो पर उनका वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया गया है। वर्षा या वसन्त ऋतु का मनोहारी वर्णन तथा प्रकृति का मानवीकरण अति निपुणता के साथ किया गया है।

'पारिजातमंजरी' दो अंकों की एक अपूर्ण नाटिका है। इसकी रचना प्रशस्ति

---

९६. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया,**

उषा—(स्वगतम्) स खल्वयं जनो यस्य लावण्यमोहिता
लिखितेव सर्वकालं भूतगृहीतेव नष्टविज्ञाना।
तिष्ठामि विगतलज्जा गुरुजनदृष्टापि हन्त ! मुग्धैव ॥ ३।७

९७. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया,** अं-४, पृ-५०

नारद—वत्से ! विदर्भनन्दिनि ! त्वयासहजदुर्विषह्यं,
सापत्न्यमत्सरमपहाय मदाज्ञामुपपादयन्त्या किं किं न
सम्पादितम् शीलेन कुलद्वयं, पतिव्रतात्वेन चात्मसन्तोषणेन
च ममानन्दातिशयः, इतरजने चाश्चर्यम्।

के रूप में की गई है। यह प्रशस्ति एक कृष्णशिलाखंड पर उत्कीर्ण है और धारा-नगर में कुछ ही समय पूर्व उपलब्ध हुई है। प्राचीन काल में इस नगर में मालवा के परमारवंशीय राजाओं की राजधानी थी। इस प्रशस्ति के लेखक हैं गौड़देशीय किन्हीं गंगाधर के वंशज मदन जो राजगुरु भी हैं।[९८] सूत्रधार की उक्ति से यह जान पड़ता है कि नाटिका चार अंकों में लिखी जा चुकी थी और इसका मंचीकरण भी समय-समय पर राजा तथा राजकीय पुरुषों के मनोरंजन के लिए हुआ करता था। चूंकि इसके नायक अर्जुनवर्मदेव के द्वारा गुर्जरनरेश जयसिंह पर विजय प्राप्ति के उपलक्ष में इसका सामाजिकों के समक्ष प्रदर्शन किया गया था। इसलिए 'पारिजातमंजरी' और 'विजयश्री' इन दो नामों से इसका परिचय दिया गया है। जहां तक 'पारिजातमंजरी' नामकरण का प्रश्न है, इस रहस्य का उद्‌घाटन सूत्रधार भूमिका में कर देता है कि गुर्जरनरेश के साथ हुए उक्त तुमुल युद्ध में अर्जुनवर्मदेव के विजयी होने की खुशी में देवताओं ने आकाश से पुष्पवृष्टि की थी और उन्हीं फूलों में एक पारिजातमंजरी भी थी जो विजयी राजा के वक्ष पर गिरी और गिरने के उपरान्त ही वह एक अलौकिक लावण्यवती युवती के रूप में परिणत हो गई। ठीक उसी समय धारानरेश अर्जुनवर्मदेव को संबोधित करती हुई आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि आप इस सुन्दरी कल्याणी विजय-लक्ष्मी को अपनाकर अपने पूर्वज भोजदेव के समान शासक बनेंगे।[९९] नटी के द्वारा उक्त दिव्यमानुषी के सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासा करने पर सूत्रधार कहता है कि पृथ्वी-चालुक्य की कन्या जो विजयलक्ष्मी का साक्षात् अवतार है,[१००] अपने पिता की पराजय के पश्चात् दिवंगत हो गयी और उसके शोक में अन्तःपुर से आंसुओं की ऐसी धारा बह निकली कि नये तमालवन का सिंचन-कार्य उसी से होता रहा। वही दिवंगत कन्या स्वर्गिक वृक्ष की मंजरी में अवगुण्ठित होकर बालिका के रूप में परिणत हुई है। गुरु-जनों की लज्जा से बचने के लिए राजा अर्जुनवर्मदेव ने उस युवती बालिका को युद्ध-भूमि में ही कुसुमाकर नाम के कंचुकी के संरक्षण में दे दिया और कंचुकी ने उसे अपनी कल्याणमयी पत्नी वसन्तलीला की देखरेख में रख दिया है। यह पारिजातमंजरी

---

९८. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-१, पृ-२

सूत्रधार—गंगाधरायणैर्मदनस्य राजगुरोः कृतिरभिनवा समस्तसामाजिक मधुव्रतानन्दमकरन्दप्रपा पारिजातमंजरीत्यपराख्या विजयश्रीर्नाम नाटिका नाटयितव्या।

९९. मदन, **पारिजातमंजरी**,

मनोज्ञां निर्विशन्नेतां कल्याणींविजयश्रियम्।
सदृशो भोजदेवेन धाराधिप! भविष्यसि ॥१/६

इस नाटिका की कनिष्ठा नायिका है। एक दिव्य मंजरी से इसकी आकस्मिक रहस्यमय उत्पत्ति और इसके पूर्व जन्म का इतिहास ही इसके जन्मना कुलीन और प्रकृत्या शालीन होने का संकेत देता है। कंचुकी कुसुमाकर और उसकी पत्नी वसन्तलीला दोनों का संरक्षण ही नहीं, अपितु अपनी सन्तान की तरह स्नेह भी पारिजातमंजरी को मिला है। द्वितीय अंक के आरम्भ में ये दम्पती पारिजातमंजरी की विरहजन्य अवस्था का वर्णन अत्यन्त स्नेहपूर्ण शब्दों में करते हैं।[१०१] संरक्षिका होकर भी वसन्त-लीला इस बालिका के साथ एक सखी जैसा व्यवहार करती है। वह स्वयं एक प्रश्न के उत्तर में अपने पति से कहती है कि मैं पारिजातमंजरी के लिए राजा को खोजने निकली हूं।[१०२] कुसुमाकर आश्वस्त है कि पारिजातमंजरी विरह के ताप में यद्यपि अभी म्लानमुखी हो रही है तथापि उसे सुख अवश्य मिलेगा।[१०३] वसन्तलीला तो छाया की भांति नायिका की सहायता करने के लिए लगी रहती है। इसी अंक में एक ओर राजा और बड़ी महारानी उपस्थित हैं और दूसरी ओर वहां से कुछ ही दूरी पर लता की ओट में छिपी पारिजातमंजरी के साथ वसन्तलीला अपना कार्य जिस विलक्षणता के साथ करती है, वह प्रशंसनीय है। राजा और रानी दोनों माधवीलता और सहकार के प्रणय-व्यापार की चर्चा में व्यस्त हैं। इधर वसन्तलीला पारिजात-मंजरी को लता की ओट में इस तरह खड़ा कर देती है कि रानी के कान से झूलता हुई बाली में नायिका पारिजातमंजरी का मुखबिम्ब राजा को दीखने लगता है। राजा अपने हाथों से उस बाली को हिला-डुला कर उसमें प्रतिफलित प्रतिमा को देखकर

---

१००. मदन, **पारिजातमंजरी**,

सूत्रधार—या चालुक्यमहीमहेन्द्रदुहिता देवी जयश्रीः स्वयं अंगे मृत्युमवाप्य वाष्पसलिलैरन्तःपुरस्योर्मिलैः। वप्तुः शोकतमालबालविपिनं चक्रे नदीमातृकं सेयं स्वद्रुमंजरी किसलये संक्रम्य जातांगना ॥१/७

१०१. मदन, **पारिजातमंजरी**,

तन्वी तापातिरेकेण धत्तेयस्माद्विहस्तताम्।
प्रवालहस्तै रुन्धन्ति तस्येन्दोरातपं लता ॥२/३३

१०२. मदन, **पारिजातमंजरी**,

वसन्तलीला—राजागमनप्रवृत्तिमुपलब्धम्।२/३३

१०३. मदन, **पारिजातमंजरी**,

कुसुमाकरः—विरहे नूनमेकस्य दुःखेन लभते सुखम्।
सुखेन चेतरो दुःखं प्रेम्णो हिकुटिलागतिः ॥२/३८

आनन्द-विभोर हो जाता है। पुनः, पारिजातमंजरी लता की ओट में जैसे ही कर दी जाती है, राजा प्रतिबिम्ब रहित वाली को देखकर दुःखी हो उठता है। इस प्रकार लता की ओट में एक बार नायिका को छिपाकर और पुनः ओट से निकाल कर राजा की द्विविध अवस्था का चित्रण कवि ने विलक्षण ढंग से किया है। इस तरह की विलक्षणता अब तक की अधीत नाटिकाओं में देखने को नहीं मिली है। इस बिम्ब प्रयोजित दृश्य के द्वारा नायक और नायिका के छाया-मिलन की कल्पना जिस मौलिकता के साथ कवि ने की है, वह सर्वथा नवीन जान पड़ती है।[१०४] साथ ही इसी दृश्य में नायक और नायिका दोनों के साक्षात् आमने-सामने होने पर एक-दूसरे की प्रतिक्रिया को भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। इस नाटिका में नायक और नायिका को परस्पर मिलने का जितना अधिक अवसर मिला है, उतना किसी अन्य नाटिका के नायक को नहीं। इसी दृश्य में कवि की एक और विलक्षण उद्भावना की ओर हमारा ध्यान बरबस जाता है। अन्तरंग दासी कनकलेखा एक ओर तो महारानी की विश्वस्त सेविका बनी हुई है और कनिष्ठा नायिका के प्रति महाराज की गतिविधि पर निगरानी रखने का भार भी अपने ऊपर स्वीकार करती है, किन्तु दूसरी ओर महाराज की ओर से महारानी को प्रसन्न रखने की भी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेती है।[१०५] इस कारण महाराज हंस कर कहते हैं कि दोनों कार्य जब तुम्हें ही करने हैं, तो फिर अब मुझ से क्या पूछना है?[१०६] इसी अंक में महारानी सर्वकला के द्वारा, कनकलेखा के हाथों अपने कानों की बाली (ताडंक) महाराज के पास भेज कर, विदूषक और बसन्तलीला के साथ प्रमदोद्यान में उनके समय बिताने का जैसा मधुर

---

१०४. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-२, पृ-१७

वसन्तलीला—यदि पुनर्नप्रत्येषि तत्क्षणार्धं त्वां पल्लवान्तरितांकरोमि यथा प्रतिबिम्बशून्यं ताडंकं प्रेक्षमाणस्यकीदृशी दृष्टि-र्भर्तुर्भवतीतिजानासि।

१०५. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-२, पृ-२४

कनकलेखा—स्वामिनियोगस्यावश्यं करणीयता। येनैव देवीं वंचयितुमभ्यर्थितः तमेव महाराजं देव्या नियोगेनोल्लुण्ठिष्यामि।

१०६. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-२, पृ-२४

राजा—(स्मित्वा) कनकलेखे, उभयमप्येतत्कार्यं त्वय्येवायत्तम्। तत्किं प्रष्टव्यं भवत्या?

उपालम्भ मिला है, वह भी कवि की विलक्षण उद्भावना है। महारानी को प्रसन्न करने के लिए, पारिजातमंजरी से अवकाश लेते समय राजा यद्यपि उसे यह विश्वास दिलाकर जाता है कि मैं थोड़ा ही समय अन्तःपुर में बिताकर शीघ्र ही लौट आता हूं तथापि नायिका महारानी के डर से इतनी अधिक आतंकित हो उठी है कि उसे चारों तरफ निराशा ही निराशा दीखती है। अतः, अपनी राह के कांटे को दूर करने के लिए,[१०७] जो काम महारानी दूसरे से करवायेंगी, वह काम मैं स्वयं ही कर लेती हूं। नायिका के इस स्वगत को वसन्तलीला सुन लेती है और समझ जाती है[१०८] कि यह अवश्य ही कोई अप्रिय कार्य करने को सोच रही है। अतः सब तरह से इसके प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है।

नायक और नायिका का छिपकर मिलना, महारानी के कोप का आतंक, मान और ईर्ष्या आदि ऐसी ही मानवीय प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला कथानक का विकास यद्यपि परम्परागत ढंग से हुआ है फिर भी कवि की प्रतिभा ने इसे एक अपूर्व कृति बना दी है, इसमें संशय नहीं। दूसरे अंक में पाठकों या दर्शकों के मनोरंजन के लिए पर्याप्त अवसर हैं। चार अंकों में लिखी किसी भी सम्पूर्ण नाटिका से दो अंकों वाली यह अपूर्ण नाटिका कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

चौदहवीं शताब्दी के शिंगभूपाल ने 'कुवलयावली' नाटिका की रचना की है। इसका दूसरा नाम रत्नपांचालिका है और इस दूसरे नाम का सम्बन्ध नायिका कुवलयावली की एक रत्नमुद्रिका से है, जो नारद मुनि से उसे प्राप्त हुई है। इस मुद्रिका के प्रभाव से पुरुष की दृष्टि में कुवलयावली रत्नमयी पाषाण-प्रतिमा प्रतीत होती है। इस नाटिका के नायक श्रीकृष्ण हैं और रुक्मिणी तथा सत्यभामा दो ज्येष्ठा नायिकाएं हैं। इन दोनों रानियों के भय से श्रीकृष्ण कनिष्ठा नायिका से छिप-छिपकर मिलते हैं। एक दिन नायिका से एकान्त में प्रेमालाप करते श्रीकृष्ण रंगे हाथों सत्यभामा के द्वारा पकड़ लिये जाते हैं। यह खबर बड़ी रानी रुक्मिणी तक पहुंच जाती है और वह नायिका को अपने अन्तःपुर में बंदी बनाकर रख देती है। फिर एक दानव

---

१०७. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-२, पृ-२७

नायिका—(स्वगतम्) तदिदानीं यद्देव्या कारयितव्यं तदहं स्वयमेव करिष्यामि मन्दभागिनी॥

१०८. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-२, पृ-२७

वसन्तलीला—नूनमेतया किमप्यमंगलमध्यवसितम्।
तत्सर्वथा धारयिष्यामि॥

उस नायिका को उठा कर ले जाता है और श्रीकृष्ण उसे युद्ध में पराजित कर नायिका को अपने महल में वापस ले आते हैं। नारद आते हैं और नायिका के सम्बन्ध की जानकारी सभी को देते हैं। उन्हीं मुनि के आग्रह पर रुक्मिणी आदि रानियां प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्ण और नायिका कुवलयावली को विवाह-सूत्र में बांध देती हैं।

कथानक के अति सामान्य होने पर भी शिंगभूपाल ने अपनी मौलिक प्रतिभा से इस नाटिका को एक विलक्षण कृति के रूप में प्रस्तुत किया है। पुरुषपात्र और स्त्री पात्र को एक मंच पर उपस्थित होकर परस्पर संलाप करने का अवसर पर्याप्त मात्रा में देकर कथा की गति इस ढंग से बढ़ायी गयी है कि कहीं भी वितृष्णा उत्पन्न नहीं होती। नाटिका का यह दोष माना गया है कि नायक का नायिका से छिपकर प्रेम करना, महारानी को प्रकोप का भाजन बनाना और अन्त में दोनों का विवाह, इन्हीं घटनाओं से ग्रथित होने के कारण रूपक की इस विधा में मौलिकता का समावेश नहीं हो पाता। किन्तु इस नाटिका में मंचस्थ पात्रों के संवादों को इतना सजीव रूप दिया गया है कि वे सुनते ही बनते हैं। कोई प्रसंग आया नहीं कि हृदयावर्जक वाक्यावली पात्रों के मुख से निकलने लगती है।[१०९] अनावश्यक रूप से पद्यों की भरती कर प्रसंग को बोझिल बनाने का दुराग्रह भी कहीं नहीं है। सम्पूर्ण नाटिका में पद्यों की संख्या उनासी है। इन पद्यों का भी समावेश कथासूत्र के अंग के रूप में किया गया है। पात्रों के परस्पर संवाद के माध्यम से ही तात्कालिक राजाओं के निर्बंध प्रणय-व्यापार जो युवती कुमारिकाओं के साथ चला करते थे. निर्व्याज रूप में चित्रित किये गये हैं।[११०]

द्वितीय अंक में विदूषक स्वयं नायक श्री कृष्ण से कहता है कि नृपगण नित्य

---

१०९. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-२, पृ-३२

नायिका—हला ! कुसुमरजः सम्पातेनाकुलं मम नेत्रम्।
चन्द्रलेखा—कुसुमशरसम्पातेन तव चित्तमपि।
नायिका—हला ! इदानीमपि मे न भवति लोचनमपरागम्।
चन्द्रलेखा—हला ! परागो निर्गतो नयनात्।
राग : खलु बलवान् सँक्रान्त इदानीमपि रमते।

११०. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-३, पृ-४२

चन्द्रलेखा—हला ! अधीरा खलु त्वम्।
कुवलयावली—हला ! तस्यास्माकं भर्तुर्दर्शनात् प्रभृति कुकूलाग्नि-मग्नमिव समग्रवेदनमात्मानं धारयन्तीमपि मामधी-रेति कथं व्याहरसि।

नयी युवतियों की प्राप्ति के लिए व्यग्र रहते हैं, लोगों का ऐसा प्रवाद ठीक ही है। वस्तुतः सर्वगुणसम्पन्न देवियों को छोड़ कर, जिस किसी कन्या के पीछे इस तरह पागल बना फिरना क्या उचित है ?[१११] यही बात सत्यभामा उस समय कह बैठती है, जब नायिका कुवलयावली के प्रणय के आकांक्षी श्रीकृष्ण उसका मुख ऊपर की ओर उठाते हुए देख लिए जाते हैं।[११२] वह कुवलयावली से कहती है कि कुमारियों के पीछे पागल इस महाराज की प्रार्थना करके तुम अपने शील की रक्षा कर लो ! कितनी कटु उक्ति कवि ने पत्नी सत्यभामा के मुख से करवायी है। इस तरह श्री कृष्ण जैसे पौराणिक और आदर्श व्यक्तित्व को भी सामान्य नायक की तरह कामुक एवं स्त्री-लम्पट के रूप में चित्रित करने का प्रयास अवश्य ही तत्कालीन राजाओं के विलास-पूर्ण जीवन पर आक्रोशपूर्ण प्रहार है।

शिंगभूपाल ने लेखक के सर्वांगीण दायित्व का निर्वाह करते हुए प्रस्तुत नाटिका की रचना की है। साथ ही इस विन्दु को भी ध्यान में रखा है कि यह एक अभिनयात्मक रचना है, कोई पद्य-काव्य नहीं। छोटे-छोटे और चुभते हुए संवादों के माध्यम से कथासूत्र को आगे बढ़ाने का कार्य जिस निपुणता से इस रचना में सम्पन्न हुआ है, वह कम से कम नाटिका के लिए सर्वथा नवीन जान पड़ता है।

कालिदास के मालविकाग्निमित्र की तरह इस नाटिका में भी दो ज्येष्ठा नायिकाओं का समावेश किया गया है। इरावती का कार्य सत्यभामा सम्पादित करती है और नायक तथा कनिष्ठा नायिका का गुप्त मिलन न हो एतदर्थ कड़ी निगरानी रखती है। एक दिन दोनों को बातें करते जब वह देख लेती है, तो इसकी शिकायत बड़ी रानी रुक्मिणी से कर देती है। फलस्वरूप नायिका कुवलयावली कारागार में डाल दी जाती है। रुक्मिणी स्वयं सत्यभामा की तरह इसके कारण यद्यपि परेशान नहीं होती, फिर भी सूचना मिलते ही वह नायिका को दंड देने से चूकती भी नहीं है। अपने अन्तःपुर में नयी कुमारी को रखवाने के नारद मुनि के कार्य को सत्यभामा सन्देह की दृष्टि से देखती है और कहती है कि रुक्मिणी ऐसी भोली है कि वह कुछ

---

१११. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-२, पृ-२०

श्रीवत्सः—भोः ! राजानो नवप्रिया भवन्तीतीदानीं सत्यो लोकवादः यत् त्वं सकलगुणश्लाघनीयं देवीजनमवमत्य यां कामपि कन्यकामभिनन्दसि।

११२. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-२, पृ-५०

सत्यभामा—भो दारिके। कन्याकामुकस्यास्य महाराजस्यानुनयं कृत्वा त्वं विनयं रक्ष।

भी नहीं समझती। कपट नाटक की भूमिका करने में निपुण देवर्षि नारद आर्यपुत्र के मनोरंजन का साधन यों ही जुटाया करते हैं। मेरी तो आत्मा कांप रही है।[113]

यह सच है कि रुक्मिणी और सत्यभामा जैसी देवियों का चित्रण ईर्ष्या, द्वेष आदि से प्रभावित साधारण श्रेणी की पत्नियों की तरह किया गया है; फिर भी भारतीय आदर्श दाम्पत्य जीवन की दुहाई, भूमिका में ही सूत्रधार के मुख से दी गयी है। अभिनय के लिए प्रस्तुत होने के समय बातचीत के प्रसंग में नटी सूत्रधार से कहती है कि तुम्हारे मन के प्रतिकूल भला मुझे क्या करना है। इस पर सूत्रधार कहता है कि वैसे तो पति के मन को प्रसन्न रखने से बढ़कर कोई दूसरा व्रत साध्वी पत्नियों के लिए नहीं है।[114] ठीक इसी के अनुरूप सूत्रधार यह जानकर प्रसन्न होता है कि कालयवन दानव पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से गए हुये श्री कृष्ण के कल्याण की कामना से रुक्मिणी आदि देवियां अपने परिजनों के साथ विलासोद्यान में जाने के लिए इधर ही आ रही हैं। आशय यह है कि शिंग-भूपाल दाम्पत्य जीवन की मधुरता बनाये रखने के पक्षधर जान पड़ते हैं। पत्नी के अतिरिक्त अन्य कुमारियों के पीछे पागल नायक की आलोचना करके इन्होंने इसी तथ्य की पुष्टि की है। प्रथम अंक के आरम्भ में कुवलयावली को अन्तः पुर में लाकर रखे जाने के प्रसंग को लेकर महारानियों की परस्पर जो बातचीत होती है, उससे ज्ञात होता है कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषवर्ग समाज में वासनामूलक अनाचार के लिए अधिक उत्तरदायी है।[115]

---

११३. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-१, पृ-५

सत्यभामा—(आत्मगतम्) अहो उत्पिंजलितस्वभावा रुक्मिणी किमपि न जानाति। आर्यपुत्रस्य चित्तरंजनैकशीलः कपटनाटकनिर्वहणस्तुतिवादः खलु स सुरर्षिः। तेन कम्पत इव मे आत्मा।

११४. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-१, पृ-३

आर्यपुत्र। तव चिन्तानुसरणं विना ममकिमन्यदस्ति?

सूत्रधार—साधुकल्याणशीले! साधु।

व्रतानि वर्णनीयानि सन्त्वन्यानि सहस्रशः।
परं व्रतं पुरन्ध्रीणां पतिचित्तानुरंजनम्॥ १/६

११५. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-१, पृ-६

सुशीला—महाभागे। कुत्रेदानीं सा दारिका।

रुक्मिणी—हला। अद्यमयैवानुमता चन्द्रलेखया समम्मुद्यानश्रियं प्रेक्षितुंगता।

सत्यभामा—(सप्रणयोपालम्भम्) हला! त्वमपि मुग्धस्वभावा खलु, यदपरिचितेषु निकुंजप्रदेशेषु परकीयां दारिकां संचारयसि।

कनिष्ठा नायिका एक सम्भ्रान्त कुलीन कन्या की तरह अपनी भूमिका में उतरती है और एक आदर्श कन्योचित उत्तमगुणों में अपनी आस्था बनाये रखती है। प्रमदोद्यान में नायक के साथ जब वह सत्यभामा के द्वारा देख ली जाती है तो स्वभावतः वह भय से कांप उठती है। अपनी स्थिति को वह समझती है फिर भी तारुण्यसुलभ आन्तरिक प्रेरणा और नायक के प्रति अपने आकर्षण पर नियंत्रण नहीं रख पाती। वह स्वयं सखी चन्द्रलेखा से अपनी गलती स्वीकार करती हुई कहती है कि मैं आज महारानी सत्यभामा के द्वारा रंगे हाथों पकड़ी गई हूं। मैंने आज देवियों का विश्वास भंग कर दिया है।[११६] इस प्रकार कनिष्ठा नायिका मर्यादित रूप में ही चित्रित की गयी है।

सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी तक वैष्णव धर्म का पर्याप्त प्रचार उत्तरी भारत में हो चुका था। श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मान कर भक्तगण सर्वात्मना अपने को उनके चरणों में समर्पित करने को ही ऐहिक जीवन-प्राप्ति की सफलता समझने लगे थे। इस क्रम में तन्मयभाव से श्रीकृष्ण को लीलाधारी पुरुष मानकर तथा उन लीलाओं को काव्यमय अभिव्यक्ति देकर प्रतिभाशाली भक्त कवि भी अपने जीवन को सार्थक मानने लगे थे। इस अवधि में श्रीकृष्ण की कतिपय लीलाओं को, जिनमें उनके वृन्दावन-विहारी जीवन की घटनाओं का प्राधान्य है, काव्य का विषय बनाकर चित्रित किया गया है। दूसरी ओर इसके साहित्य की रचना की ओर उन्मुख कवि श्रीकृष्ण के जीवन के उन अंशों को जो प्रेमप्रधान नाटिका के लिए मधुर एवं उपयुक्त भूमिका हैं, अपनाकर संस्कृत-साहित्य को समृद्ध किया है। ऐसे ही भक्त कवियों में एक हैं कायस्थ कुलोद्भव श्री मथुरादास जिनकी वृषभानुजा नामकी नाटिका भी उक्त शृंखला की एक कड़ी है। इस कवि ने नाटिका के पात्रों को राजकीय अन्तः पुर के दमघोंटू वातावरण से निकाल कर पहली बार कालिन्दी के सरस कूल पर वृन्दावन की स्वच्छ वायु में सांस लेने का अवसर दिया है। गोधूलि से आक्रान्त और बछड़ों के लिए रंभाती गौओं से मुखरित परिवेश नाटकीय व्यापार की आकर्षक पीठिका के रूप में चित्रित किया गया है। इस दृष्टि से भक्त कवि मथुरादास ने नाटिका के पाठकों-दर्शकों के लिए एक सर्वथा विलक्षण आस्वाद्य प्रस्तुत किया है। अब तक की लगभग सभी नाटिकाओं में नायिका के परिचय को रहस्यमय बनाकर एक निश्चित समय

---

११६. शिगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-३, पृ०-५०-५१

कुवलयावली—हला ! सत्यभामया दृष्टचापलास्मि।

सत्यभामा—महाराजयस्यावसरमज्ञात्वा विस्रम्भंगकारिण्यहं चोचितकर्म न जानामि।

पर उसका उद्घाटन किया जाता रहा है। किन्तु इस नाटिका में, नायिका के संबंध में भूमिका में ही संकेत दे दिया है। ऐसा लगता है कि जैसे आधुनिक युग में किसी सुलक्षणी युवती कन्या के लिए उपयुक्त युवक की खोज करती हुई शुद्धा वृन्दा हमारे सामने खड़ी हो गई है। वृषभानु के अन्तःपुर में पैर रखते ही उसकी दृष्टि राधा पर पड़ती है और उसकी लावण्यमयी देहयष्टि पर से फिसलती हुई वहां से दूर वृन्दावन में गोपिकाओं के बीच विहार करते हुए श्रीकृष्ण पर जा टिकती है। राधा और कृष्ण, कृष्ण और राधा,वृन्दा सोचने लगती है, कितनी अच्छी जोड़ी रहेगी, सचमुच दोनों की।[११७] वृन्दा के पांव में जैसे पर बांध दिए गए हों। वह वहां से सीधे गोकुल में नन्द के वैभवशाली प्रासाद में जा पहुंचती है और नन्द से मिल कर राधा और श्री कृष्ण दोनों के परिणय की चर्चा करके ही दम लेती है।

इस प्रकार इस नाटिका के आरम्भ में ही लेखक ने मौलिकता का परिचय दिया है। वृन्दा और वनरक्षिका के वार्तालाप से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमप्रधान नाटिका की शृंगार प्रधान भूमिका में राधा और कृष्ण को उतार कर भी कवि नायक-नायिका के प्रति अपनी भक्तिपूर्ण आस्था बनाये हुए है।[११८]

शृंगार रस प्रधान इस नाटिका के नायक श्रीकृष्ण धीरललित श्रेणी में आते हैं। वृषभानु नामक गोप की कन्या राधा मुग्धा नायिका की कोटि में आती है। कवि ने अपनी लेखनी को केवल शृंगारिक परिधि में ही बांध कर नहीं रखा है, बल्कि माता यशोदा के माध्यम से वात्सल्य रस की भी सजीव विवृति की है।[११९] राधा और कृष्ण के अतिरिक्त, वृन्दा, बनरक्षिका, चम्पकलता, तमालिका अ दि नारीपात्र हैं, जो

---

११७. मथुरादास, **वृषभानुजा,**

वृन्दा—आत्मानुरूपरमणीयगुणेन तन्वी
सौदामिनी व रुचिरेण नवाम्बुदेन
नन्दात्मजेन सह येन लभेत योगं
यत्नः स एव निपुणोऽत्र मया विधेयः ।। १/८

११८. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-१, पृ-६

वृन्दा—धन्याः खल्वेते यदत्र गोरूपधारिणो मुनय इव
विगतान्याभिलाषचिन्ताः······ ।

११९. मथुरादास, **वृषभानुजा** ,

वृन्दा—त्वन्मुखाम्बुजविलोकनं बिना ना मुहूर्तमपि नेतुमुत्सहे ।
त्वां कथं हि विपिनेऽनुवासरं प्रेष्य तातवत् धारयाम्यसून् ।। १/१३

कथानक को गति देने में उपयुक्त भूमिका निभाते हैं ।[१२०] प्रियालाप जो कृष्ण का बाल सखा है, राधा और कृष्ण के प्रेम-व्यापार में सहायक है ।

इस नाटिका की कुछ और भी विशेषताएं हैं । अन्य नाटिकाओं की तरह इसमें विदूषक का समावेश नहीं है । नायक के प्रेम-व्यापार में सहायक के रूप में प्रियालाप नामक कृष्ण का एक अन्तरंग सखा नर्म-सुहृद् का कार्य करता है ।

दूसरी विशेषता है ज्येष्ठा नायिका का अभाव । श्रीकृष्ण अभी गोकुल में ही हैं और प्रायः पहली बार गान्धर्व-विधि से परिणय सूत्र में बंधने जा रहे हैं । अतः नायक नायिका के गुप्त-मिलन में व्यवधान पहुंचाने का काम ज्येष्ठा नायिका या अंतरंग दासी की जगह गोपवालकों तथा नागरिका नाम की स्त्री को, जो वृषभानु के घर की विश्वस्त दासी है, करना पड़ता है ।

तीसरी विशेषता यह है कि चम्पकलता, कतिपय अन्य नारीपात्र तथा कृष्ण सखा प्रियालाप एवं नायिका राधा भी स्थान-स्थान पर संस्कृत में वार्तालाप करती है ।

चौथी विशेषता यह है कि नायक तथा नायिका दोनों वृन्दावन में गान्धर्व विधि से परिणय सूत्र में बंधते हैं और यह कार्य दोनों के माता-पिता की स्वीकृति के बिना ही सम्पन्न हो जाता है ।

पांचवीं विशेषता है पुरुष द्वारा तदनुकूल वेषभूषा में सजकर स्त्रीपात्र का अभिनय करना । सूत्रधार का शिष्य मधुरप्रिय, वृन्दा नाम की वृद्धा की तथा रंग-मंगल नामक मित्र, वनरक्षिका नाम की सहेली की भूमिका अभिनीत करते हैं ।[१२१] ऊपर कहा जा चुका है कि इस नाटिका में ज्येष्ठा नायिका का समावेश नहीं है । कनिष्ठा नायिका राधा की भूमिका कुल मिलाकर सामान्य कोटि की है । नायक श्रीकृष्ण के प्रति रागात्मक अनुबन्ध तज्जनित मिलने की आतुरता, विरहजन्य सन्ताप

---

१२०. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-१, पृ,-८

वनरक्षिका—अहो सश्रीकत्वं नन्दगेहस्य ।
अथ वा सकललोकनिवासो भगवान्वासुदेव :
स्वयं यत्र प्रतिवसति तत्रकिमाश्चर्यम् ।।

१२१. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-१, पृ-४

मधुरप्रियो गृहीततत्सहचरी वनरक्षिका-भूमिकश्च सखा मे
रंगमंगल :.........।

का अनुभव एवं सहचरियों के द्वारा शीतलोपचार करने के पश्चात् भी मानसिक अशान्ति आदि स्थितियों को पार करती हुई गान्धर्व विवाह की स्थिति तक सभी दशाओं में राधा अपनी उपयुक्त भूमिका निभाती है।

अंत में, एक बार पुनः इस नाटिका के लेखक मथुरादास की प्रसादगुण विशिष्ट शैली में रचना करने की अद्भुत क्षमता की चर्चा किए बिना रहा नहीं जा सकता। नाटिका में जितने भी पद्य हैं, उनमें कहीं भी क्लिष्टता अथवा दुरूहता नहीं आने पायी है। सर्वत्र अपने भाव को प्रांजल भाषा में व्यक्त करने की क्षमता रखने वाले मथुरादास जैसे कवि संस्कृत साहित्य में उंगलियों पर गिने जा सकते हैं।

मलयजाकल्याण अथवा मलयजापरिणय अठारहवीं शताब्दी के वीरराघव द्वारा रचित चार अंकों की नाटिका है। वीरराघव मूलतः टीकाकार के रूप में विख्यात हैं। इन्होंने भवभूति के उत्तररामचरित तथा महावीरचरित नामक दो प्रसिद्ध नाटकों पर सुन्दर टीकाएं लिखी हैं। मलयजाकल्याण इनकी पहली मौलिक रचना है। तोण्डीर देशाधिपति महाराज देवराज अपनी महारानी आदि के साथ मलयपर्वत पर आखेट करने के उद्देश्य से आते हैं। दो मुनिकुमारों को बातचीत द्वारा, प्रस्तावना में ही, यह पता चलता है कि एक दिन मलयवन में भ्रमण करते हुए देवराज की युवती कन्या मलयजा को देख लेते हैं। वह भी अपनी सखियों के साथ हथिनी पर सवार होकर वनविहार करने के लिए गई हुई है। राजकुमारी मलयजा की भी दृष्टि महाराज देवराज पर पड़ती है और दोनों के हृदय में अनुराग-अंकुर पनपने लगते हैं। इसके बाद दोनों की, एक दूसरे से मिलने की उत्कंठा तीव्रतर होती जाती है और अन्ततः विभिन्न बाधाओं को पार करते हुए दोनों अन्त में एक दूसरे के प्रणय सूत्र में बंध जाते हैं।

नाटिका की भूमिका में सूत्रधार महाराज देवराज के मलयवन में आने की सूचना जैसे ही देता है, वैसे ही दो मुनिकुमार महाराज के आगमन पर वहां के निवासी मुनियों के प्रसन्न होने की तथा नायक देवराज और नायिका मलयजा के पारस्परिक अनुराग का उल्लेख है। इस प्रकार नाटिका का आरम्भ लेखक ने अरण्य-परिवेश में किया है। नाटिका के कथानक की पृष्ठभूमि चूंकि सम्पूर्ण रूप से वन्य प्रदेश ही है, न कि किसी राजभवन का अन्तःपुर अतः नाटिका उपस्थापन उपयुक्त वातावरण में ही किया गया है। किन्तु नायिका के प्रथम दर्शन के पश्चात् ही उसकी प्राप्ति के लिए नायक अपनी जिस व्यग्रता का परिचय विदूषक को देता है, इससे प्रतीत होता है कि वह घोर कामी और युवती-लम्पट व्यक्ति है। आश्चर्य है कि महाराज के जिस व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर मलयवनवासी मुनिगण उसके आगमन पर आत्म-

विभोर हो जाते हैं, वही प्रमोन्माद की दशा में इतने निम्नस्तर का प्रतीत होता है। हां, दूसरे अंक में अन्त में, नायक थोड़ी सी समझदारी की बात करता दिखलाई पड़ता है, जब वह यह कहता हैं कि मलयजा और मेरे परस्पर अनुराग की सार्थकता तभी है जब उसके अभिभावक और मेरी महारानी दोनों की स्वीकृति हमारे पक्ष में हो।[१२२]

मलयराज की कन्या नायिका मलयजा मुग्धा तो है ही साथ ही वह वीणावादन एवं संगीत में भी निपुण है और उसी के वीणावादन के प्रभाव से प्रियालवृक्ष पुष्पलक्ष्मी से समृद्ध हो उठता है। मलयजा ही नहीं केरलिका, मंजरिका आदि सखियों को भी संगीत के भेदोपभेद का विशिष्ट ज्ञान है।

बड़ी महारानी ईर्ष्या, कोप, मान आदि की अभिव्यक्ति में पूर्ण दक्ष है। अपनी अन्तरंग दासी वल्लरिका को वह नायक-नायिका पर कड़ी दृष्टि रखने के लिए नियुक्त कर देती है और यही दासी नायक के लिये लिखे गये नायिका के प्रणयपत्र को महारानी तक पहुंचा कर पुरस्कार प्राप्त करती है। इसी पत्र के आधार पर महारानी मंजरिका का वेष धारण कर दोनों के गुप्तमिलन के स्थान पर पहुंच जाती है। सपत्नी भाव से बचने के लिए रानी का ऐसा आचरण स्वाभाविक और उचित ही है। मलयजा को पहली बार देखने पर ईर्ष्या-द्वेष भूल जाती है और उसके त्रैलोक्यदुर्लभ सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगती है।[१२३] प्रेममिलन में विघ्न पहुंचाने वाली महारानी के हृदय की उदारता की प्रशंसा नायक भी निष्पक्ष भाव से करता है।[१२४] अन्त में जामदग्न्य मुनि की इच्छा एवं आदेश के अनुसार नायिका के पिता और महादेवी की

---

१२२. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-२, पृ-९२

देवराजः—(सविषादम्) वयस्य, द्वयी पुनश्चिन्ता मनसि वर्तते।
तद्गुरुजनानुरोधः तत्र भवत्याः ममापि देव्याः॥

१२३. वीरराघव **मलयजाकल्याण**, अं-३ पृ-२५

महादेवी—स्थाने खलु आर्यपुत्रहृदयमारोपिता त्रैलोक्यदुर्लभ-
सौन्दर्यसारा एषा मलयराजपुत्री।

१२४. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**,

देवराजः—(विदूषकं प्रति)
तादृशं कलहमात्मना कृतंसंस्मरन्त्यपि कथाप्रसंगतः।
लज्जते शशिमुखीत्यतः परं किंनु वा मम मनः प्रहर्षयेत्। ४/९

स्वीकृति से मलयजा और देवराज प्रणयसूत्र में बंध जाते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत नाटिका में प्रचलित विधान के पालन का पूर्णरूपेण प्रयास किया गया है।

मलयजाकल्याण नाटिका के पश्चात् हमारा ध्यान शिवकविरचित विवेकचन्द्रोदय नामक नाटिका पर जाता है। इसकी रचना १७६३ ई० सन् के आस-पास हुई प्रतीत होती है। नाटिका में श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की प्रमुख कथा की एक ऐसी विशेषता जुड़ी है जो अपनी रोचकता से स्थायी प्रभाव छोड़ जाती है। यह है मानवीय मनोभावों का मानवीकरण और उनका पात्र के रूप में मंच पर आकर अपने-अपने अस्तित्व के औचित्य पर तर्कपूर्ण प्रकाश डालना।

यद्यपि भरतमुनि आदि आलंकारिकों के द्वारा निर्दिष्ट नाटिका के लक्षणों का पालन इस रचना में नहीं किया गया है, तथापि चार अंकों में ही कथानक की समाप्ति तथा श्रृंगार रस की प्रमुखता इसे नाटिका की श्रेणी में स्थान दिलादेती है। प्रस्तावना में सूत्रधार कुशीलव से कहता है कि हमलोगों को एक नाटक खेलना है।[१२५] फिर भी रचना की समाप्ति होने पर अन्त में इसके नाटिका होने का संकेत कवि ने स्वयं दिया है।[१२६] वस्तुतः अंकों की संख्या और अंगी रस श्रृंगार के अतिरिक्त इसके नाटिका होने का अन्य आधार नहीं के बराबर है। कथानक का अधिकांश भाग श्रृंगारिक परिवेश से मुक्त है। आरम्भ में ही एक जादूगर अपनी करामात दिखाता हुआ आकाश से एक विमान उतारता है, जिसमें से उपाध्याय सिद्धिदेव और उनका शिष्य चारुकण्ठ मंच पर अवतरित होते हैं। दूसरी विलक्षणता उद्धव के द्वारा वर्णित स्वप्नदृश्य है, जिसमें धर्म और अधर्म दोनों के दूत, क्रमशः, विनय और दुर्विनय अपने अस्तित्व के पक्ष में आपस में विवाद करते हैं। नाटिका की तीसरी विशेषता है श्रीकृष्ण तथा राजा भीम की सेनाओं के युद्ध का रोमांचकारी वर्णन।

इसप्रकार जादूगर का चमत्कारपूर्ण रहस्य, मानवीय वृत्तियों का मानवीकरण और वीर रस की विवृति आदि ही दर्शकों या पाठकों के ध्यान के केन्द्र बन जाते हैं। नायिका रुक्मिणी अपने अग्रज रुक्म की इच्छा के विरुद्ध श्री कृष्ण को अपने हरण के लिए गुप्त रूप से आमंत्रित करती है। उसके सामने जैसी परिस्थिति थी, उसमें उसके

---

१२५. शिवकवि, **विवेकचन्द्रोदय**, अं-१, पृ-२

वत्स ! नाटकम् अभिनेतव्यम् अस्माभिः।

१२६. शिवकवि, **विवेकचन्द्रोदय**, पृ- ३८

इति चतुर्थोऽकः इति श्रीविवेकचन्द्रोदयनाटिका समाप्ता।

मुग्धा रूप की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक प्रगल्भा की तरह वह अपने में असीम साहस बटोर कर अपने भाई के विरुद्ध श्रीकृष्ण को उभाड़ती है। अभिभावक के हाथ की कठपुतली न होकर वह बीसवीं शताब्दी की एक प्रबुद्ध तरुणी बन कर हमारे सामने आती है। इस नाटिका में ज्येष्ठा नायिका नहीं है। अतः उसकी ईर्ष्या, मान आदि के चित्रण का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अंगी रस शृंगार को भी अन्तिम अंक में प्रवेश मिला है। इसप्रकार विवेकचन्द्रोदय को चार अंकों की रचना मान कर नाटिका की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जा सकता है। सम्पूर्ण रचना में पुरुष पात्रों का ही मेला लगा हुआ है। नाटिका में एक ही नायिका रुक्मिणी है। ऐसी स्थिति में रचना के अन्त में 'समाप्ता चेयंनाटिका' ऐसा लिखे जाने का औचित्य चिन्त्य ही प्रतीत होता है।

जहां तक नाटिका का प्रश्न है, इसका क्षेत्र विशेषतः राजकीय अन्तःपुर ही है और इसी कारण सामान्य जीवन से इसका सीधा सम्पर्क प्रायः नहीं है। नाटिका के प्रमुख पात्र राजा-रानी हैं, फलस्वरूप इनके पार्श्वचर अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखने में असमर्थ होते हैं। सेव्य की इच्छा ही एकमात्र ध्येय होने के कारण, ये पार्श्ववर्ती पुरुष और स्त्रियां यदाकदा ही अपने को पृथक् इकाई मानने का दावा कर पाती है। नाटिका के प्रमुख पात्र प्रेम व्यापार के लिए ही गढ़े जाते हैं। दूसरी ओर, बड़ी महारानी सपत्नी के भय से मान, ईर्ष्या, रागद्वेष आदि उद्वेगकारी मनोवृत्तियों से ही जूझती रहती है। अतः इन पात्रों के व्यक्तित्व के बहुत सारे अन्य पक्ष अछूते ही रह जाते हैं। इन मनोवृत्तियों की विवृति इतनी तीव्र हुआ करती है कि ऐसे क्षणों में किसी भी पुरुष या स्त्री के लिए अपने व्यक्तित्व का संतुलन बनाये रखना दुष्कर हो जाया करता है। व्यक्तित्व की उदात्तता, कुछ समय के लिए तिरोहित हो जाया करती है। ऐसी स्थिति में किसी पुरुष या स्त्री-पात्र के चरित्र का मूल्यांकन अथवा उन चरित्रों का तुलनात्मक विवेचन जटिलता से परिपूर्ण प्रतीत होता है।

नायिकाओं का तुलनात्मक चरित्र विश्लेषण

पूर्व में कालिदास विरचित मालविकाग्निमित्र की ज्येष्ठा नायिका धारिणी के चरित्र का विश्लेषण किया जा चुका है। प्रतिकूल परिस्थिति में भी अपने व्यक्तित्व की गरिमा को बनाये रखने में समर्थ धारिणी के समान दूसरी ज्येष्ठा नायिका अन्य नाटिकाओं में देखने को नहीं मिलती है। अन्य नाटिकाओं की प्रमुख नायिकाओं का भी तुलनात्मक चरित-विश्लेषण कम रोचक नहीं है।

सातवीं शताब्दी में श्रीहर्ष रचित प्रियदर्शिका और रत्नावली से नाटिका साहित्य का श्रीगणेश होता है। अभी दोनों नाटिकाओं में पुराण प्रसिद्ध वत्सराज उदयन एवं उनकी महारानी वासवदत्ता को क्रमशः नायक तथा ज्येष्ठा नायिका के रूप में चित्रित

किया गया है। श्रीहर्ष से पूर्व महाकवि भास ने इन चरित्रों को अपने रूपकों में प्रमुख भूमिका दी है।

नाटिका का इतिवृत्त चूंकि प्रकरण के समान कविकल्पित होता है अतः इसके पात्रों के व्यक्तित्व का विकास स्वभावतः कल्पना मूलक होता है। साथ ही नाटक की तरह, उसके नायक के प्रख्यात राजा होने के कारण कुछ तथ्य परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से पुराण अथवा इतिहास के पृष्ठों से भी लिये गये रहते हैं। विभिन्न नाटिकाओं की प्रमुख नायिकाएं जिस परिस्थिति में अपने-अपने नायक के सम्पर्क में आती हैं, उसके सम्बन्ध में विचार करना अपेक्षित है।

नाटिका के विधान के अनुसार इन नायिकाओं का सम्बन्ध किसी राजवंश से ही माना गया है, जो सर्वथा समीचीन है। यहां पर ध्यान देने की बात है कि कनिष्ठा नायिका को नायक के जीवन में प्रवेश कराने के मुख्य उद्देश्य को नाटिकाकारों ने अत्यधिक महत्व दिया है। विवाहिता पत्नी के विद्यमान रहते किसी अन्य कन्या के साथ पति की प्रणय-लीला को भारतीय मर्यादा के विपरीत माना गया है। नाटिका का कथानक चूंकि उक्त प्रकार के प्रणय को लेकर ही चलता है अतः प्रणय-व्यापार के साथ एक अन्य उद्देश्य को जोड़ दिया जाता है। वह है चक्रवर्त्तित्व की प्राप्ति। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन भारत में एक ऐसा भी युग था, जब राजा की ख्याति उनकी सैनिक शक्ति अथवा राज्य विस्तार या सुनियोजित शासन-व्यवस्था के कारण ही नहीं होती थी, बल्कि ऐसी शुभलक्ष्मी कन्या की प्राप्ति के कारण भी जो आगे चलकर अपने पति को चक्रवर्ती राजा बना सके। दूसरी ओर वत्सराज उदयन के प्रसिद्ध मंत्री यौगन्धरायण जैसे और भी अनेक स्वामिभक्त तथा शुभचिन्तक मंत्री होते रहे होंगे, जो ऐसी कन्या का जिसका परिणेता चक्रवर्ती सम्राट् बनकर ही रहेगा, पता समुद्र लांघकर भी लगा लिया करते थे। राज्यशक्ति को सबल बनाने के क्रम में जिन कतिपय उपायों का अवलम्बन उस युग में किया जाता था, उनमें एक प्रमुख उपाय यह था कि किसी शक्तिशाली राजवंश से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ा जाय। भास ने स्वप्नवासदत्त में मगध की राजकुमारी पद्मावती के साथ उदयन का विवाह किस परिस्थिति में कराया है वह सुविदित है।

श्रीहर्ष की नाटिका प्रियदर्शिका की नायिका के पिता की इच्छा वत्सनरेश उदयन को अपना जामाता बनाने की है, परन्तु इसके कारण का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है उदयन को सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु की हत्या करने के पश्चात् अपने जानते दिवंगत राजा की ही अनाथा कन्या को उदयन के अंतःपुर में ले आया है यह बालिका प्रियदर्शिका ही है जो आरण्यका के नाम से जानी जाती है और जो यथार्थ में दृढ़वर्मा नामक किसी अन्य राजा की पुत्री है। इस कन्या के प्रति उदयन के आकर्षण का कारण बालिका का सौंदर्य एवं तारुण्य मात्र ही है। वासवदत्ता जैसी

रूप और गुण से सम्पन्न पत्नी के रहते प्रियदर्शिका की ओर आकृष्ट होने का कारण उदयन की कामुकता को ही मानना पड़ेगा । श्री हर्ष ने इस नाटिका के नायक के रूप में उदयन को चुना है । जिसके व्यक्तित्व को भास अनेक अलौकिक गुणों से अलंकृत कर चुके हैं ।

रत्नावली नाटिका की नायिका रूप और गुणों से आभूषित होने के साथ पति को चक्रवर्ती राजा बनाने के योग्य लक्षणों से युक्त चित्रित की गई है । आगे चलकर राजशेखर ने भी विद्धशालभंजिका की नायिका को सौभाग्यशालिनी बनाकर ही उसे नायक के साथ परिणय-सूत्र में बांधा है । यद्यपि इस नाटिका के कथानक में नायक और नायिका के मिलन की पृष्ठभूमि में सामान्य स्तर का चमत्कार लाने का प्रयास है, तथापि नायक का मंत्री भागुरायण भी यौगन्धरायण की तरह ऐसी कन्या से, जो एक दिन अपने पति को चक्रवर्ती सम्राट् बना सकेगी, अपने राजा का विवाह कराकर कृतज्ञता का अनुभव करता है ।

विल्हण की कर्णसुंदरी तथा कविराज विश्वनाथ की चन्द्रकला नाटिकाओं की भी नायिकाएं अपने-अपने नायक को भाग्यशाली सम्राट् बनने में योग देती है ।[१२७] कर्णसुन्दरी नाटिका का महामात्य सम्पतकर, यौगन्धरायण से भी बढ़कर बुद्धिमान् तथा नीतिज्ञ है ।[१२८] उसके सत्प्रयास से चालुक्य राज कर्णदेव का कर्णसुन्दरी जैसी सुलक्षणा कन्या से विवाह हो सका हैं । यह बालिका परिणेता राजा के अंतःपुर में मंत्री द्वारा लायी जाती है और बहुविध उपाय करने के पश्चात् नायक राजा उसे पाने में

१२७. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

दृष्टंदेव्या किमपि भुवनाश्चर्यतत्त्वं महत्त्वं
लब्धा लक्ष्मीरिव मनसिजक्ष्माभुव : पक्ष्मलाक्षी
एकच्छत्रं समजनि महीमण्डलं तत्प्रियं मे
किं स्यादस्मात्परमपि वरं यत्तु याचे भवतः ।। ४/२३

विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-१, पृ-५

तेनैवंविधेन व्यतिकरेण मां प्रतिभतुंश्चक्रवर्तित्वमभिहितमासीत् ।

१२८. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**.

प्रणिधिः—अहो किमपि यौगन्धरायणप्रभृतिमहामात्यविजयिनोऽभ्यर्हिता-
मतिरमात्यसंपत्करस्य यथाहि ।
वात्सल्यं न वहत्यपत्यविषये व्याक्षिप्यते न क्षणं
दाक्षिण्येन समीहिते नववधू वर्गेऽपि धीराशयः ।
निष्णातः कुटिले नयाध्वनि चरन्नाचारपूतः प्रभो
दुंसाध्यानपि साधयत्यभिमतानर्थान सुसाध्यानिव ।। १/१४

समर्थ होता है। इसकी तुलना में त्रयोदश शताब्दी के विश्वनाथ की चंद्रकला नाटिका में इसी तथ्य को दूसरे रूप में प्रस्तुत किया गया है। नायिका चंद्रकला के भावी पाणि-ग्रहणकर्त्ता को लक्ष्मी[१२९] दर्शन देकर उसके सारे अभीष्टों की वरदान द्वारा पूर्ति करती है और उन्हें कृतार्थ कर देती है। पारिजातमंजरी नामक अपूर्ण नाटिका की नायिका तो विचित्र परिस्थिति में विलक्षण ढंग से नायक को उपलब्ध होती है। गुर्जरनरेश के साथ हुए युद्ध में बिजयलक्ष्मी की प्राप्ति के अभिनंदन में आकाश से हुई पुष्यवृष्टि के क्रम में एक पारिजात-मंजरी भी नायक के वक्ष पर युद्ध स्थल में ही गिरती है।[१३०] यही मंजरी एक सुंदरी नायिका के रूप में परिणत हो जाती है।[१३१] नटी द्वारा पूछे जाने पर कि क्या इस नाटिका की कथा दिव्यमानुषी है,[१३२] सूत्रधार बालिका की उत्पत्ति का विवरण विस्तार से सुनाता है।[१३३]

---

१२९. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**,

यस्तुभूमिपतिर्भूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति ।
लक्ष्मीः स्वयमुपागत्य वरमस्मै प्रदास्यति ।। १/६

१३०. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-१, पृ-३

सूत्रधारः···जयसिंधुरस्कंधाधिरूढस्य धनुष्मतो······
वक्षसि लोकोत्तरपरिमलामोदवासितदिगंतरा विस्मेरवृंदारक-
वृन्दकुसुमवृष्टिमध्यादेका पारिजातमंजरी पपात ।

१३१. मदन, **पारिजातमंजरी**;

सूत्रधारः—अंन्योन्यं गलहस्तनोपनतयोर्द्वन्द्वेन वक्षोजयोः
कर्णोल्लंघनजांधिकेन नयनद्वन्द्वेन हेवाकिनी ।
वक्त्रं विश्वविलोचनोत्पलवनी चंद्रोदयं बिभ्रतो
साभूद्वाल्यजिगीषुयौवनसुरामाद्यत्तनुःकामिनी । १/५
मनोज्ञां निर्विशन्नेतां कल्याणीं विजयश्रियम्
सदृशो भोजदेवेन धाराधिप भविष्यसि । १/६

१३२. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं १-, पृ-४

नटी—आर्य, तत्किं दिव्यमानुष्या सा कथा ।

१३३. मदन, **पारिजातमंजरी**,

सूत्रधारः—या चौलुक्यमहीमहेंद्रदुहिता देवी जयश्रीःस्वयं
भंगे मृत्युमवाप्य वाष्प-सलिलैरंतःपुरस्योर्मिलैः ।
वप्तुःशोकतमालबालविपिनं चक्रे नदीमातृकं
सेयं स्वद्रुममंजरी किसलये संक्रम्य जातांगना ।। १/७

चौदहवीं शताब्दी में ही रचित श्री शिंगभूपाल की कुवलयमाला नाटिका की कनिष्ठा नायिका की प्राप्ति वाले प्रसंग में परम्परागत प्रणाली से हट कर एक नया प्रयोग किया गया है। इसमें पृथ्वी स्वयं बालिका का रूप धारण कर पुराण प्रसिद्ध नारद मुनि के संरक्षण में आती है। इस रहस्य का उद्‌घाटन नारद स्वयं रुक्मिणी से करते हैं।[134] कथानक के पौराणिक होने से कनिष्ठा नायिका की उत्पत्ति भी अलौकिक बतायी गई है। सोलहवीं शताब्दी की रचना वृषभानुजा नाटिका में इसके रचयिता मथुरादास ने कथानक को सर्वथा विलक्षण बनाकर प्रस्तुत किया है। इसमें ज्येष्ठा या कनिष्ठा नायिका आदि के झमेले में न पड़ कर उन्होंने इसकी नायिका राधा को नायक की प्रथम पत्नी के रूप में चित्रित किया है और साथ ही नायक और नायिका के परस्पर आकर्षण को मर्यादित धरातल पर लाकर इतिवृत्त को आगे बढ़ाया है। नाटिकोपयुक्त अन्य प्रसंगों के सन्निवेश के लिए लेखक ने कुछ नये ढंग के पात्रों की सृष्टि की है।[135] अठारहवीं शताब्दी की मलयजाकल्याण नाटिका के नायक को कन्या प्राप्ति के परिणामस्वरूप किसी नये राज्य की प्राप्ति तो नहीं होती, किन्तु राज्य में घुसे प्रतिपक्षियों की पराजय द्वारा उसके राज्य के निष्कंटक होने का संकेत अवश्य मिलता है।

चार अंकों में रचित विवेकचन्द्रोदय के प्रथम अंक के आरम्भ में सूत्रधार ने भगवान् श्रीकृष्ण के गुणानुवाद एवं राजनीति की प्रधानता बतायी है।[136] यद्यपि नायक को नायिका रुक्मिणी की प्राप्ति इस नाटिका के कथानक का प्रमुख अंश है (और इसे चतुर्थ अंक के अन्त में फलप्राप्ति के रूप में दिखलाया भी गया है), फिर भी शिव कवि ने सूत्रधार के मुख से उक्त उद्देश्य की पूर्ति को ही फल-प्राप्ति का मुख्य स्थान दिया है।

---

१३४. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**,

जानासि लक्ष्मि ! भगवच्चरणारविन्द-
सेवासखीं वसुमतीं भगिनीं पुरा ते।
सैवाधुना त्वमिव देवहिताय धात्रा
सम्प्रार्थिता कुवलयावलिराविरासीत्॥४/१०

१३५. नाटिका की नायिका शीर्षक अनुभाग में विस्तार से विवेचन किया गया है।

१३६. शिवकवि, **विवेकचन्द्रोदय**, अं-१, पृ-१

सूत्रधार—वयं श्रीमद्‌भगवद्‌गुणानुवादपूर्वकं राजनीत्यनुगतधर्मशास्त्रा-
नुसारिणा नाटकीयप्रवन्धेनानुरंजनीया इति।

इन नाटिकाओं की कनिष्ठा नायिका का जीवन आन्तरिक द्वन्द्व से पूर्ण होता है। एक अदृष्टपूर्व राजा के अन्तःपुर में आकर अपरिचितों के बीच अपना सन्तुलन सर्वथा बनाये रखना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य रहा होगा। राजकीय पितृकुल में लालित-पोषित किसी राजकुमारी के लिए दूसरे का शरणापन्न होने की अवस्था अवश्य ही शोचनीय रही होगी। जीवन में इस प्रकार की आकस्मिक घटना के कारण इन राजकुमारियों की कोई भी प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही कही जा सकती है। दूसरे के घर में आकर स्नेह या सम्मान की प्राप्ति आश्रयदाता की उदारता या अनुदारता पर निर्भर करती है। अथच किसी भी आकस्मिक परिस्थिति से निपटने की क्षमता व्यक्ति का एक विशेष गुण होता है जो सभी में समान रूप से नहीं पाया जाता। नाटिका कीं कनिष्ठा को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है और उनसे समझौता करना पड़ता है। व्यक्तित्व की परख के लिए ऐसी कठोर कसौटी पर कसा जाना जब वयस्कों के लिए भी एक समस्या बन सकती है, तो फिर इन अपरिपक्व किशोरिय के लिए तो यह और भी दुष्कर कार्य हो जाता होगा। अधिकांश नाटिकाओं की कनिष्ठा नायिका के जीवन में इसी प्रकार की विकट परिस्थिति आती है और इन्हें अपने व्यक्तित्व की परीक्षा देनी पड़ती है।

श्रीहर्ष की दोनों नायिकाओं—प्रियदर्शिका और रत्नावली—को उदयन के अन्तःपुर में पहुंचने के पश्चात् विधाता के विधान को नतशिर स्वीकार करना पड़ता है। द्वितीय अंक में पहली बार मंच पर उपस्थित आरण्यका बनी प्रियदर्शिका स्वगत-भाषण में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई कहती है कि मेरा जन्म ऐसे घराने में हुआ था जहां मैं स्वयं आदेश दिया करती थी और आज मुझे स्वयं दूसरे की आज्ञा का पालन करना पड़ रहा है। रत्नावली में यही प्रतिक्रिया एक विलक्षण ढंग से अभिव्यक्त होती है। मदनोत्सव के अवसर पर सागरिका के रूप में आयी हुई रत्नावली को जब महारानी वासवदत्ता उद्यान से वापस कर देती है तो अपने पितृ-गृह में होने वाली कामपूजा और यहां की पूजा में अन्तर जानने के लिए वह वहां से थोड़ी दूर हट कर लता की ओट में छिपकर पूजा को देखना चाहती है। सिंहल में तो चित्र की पूजा होती है, किन्तु यहां सम्मुख उपस्थित उदयन को ही साक्षात् कामदेव मानकर वह सोचती है कि भारत में कामदेव की मूर्त्ति की पूजा होती है।[१३७] किन्तु जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि यह मूर्ति कामदेव की नहीं, अपितु स्वयं महाराज उदयन ही हैं,

---

१३७. श्रीहर्ष, रत्नावली, अं-१, पृ-४७

सागरिका—कथं प्रत्यक्ष एव भगवान्कुसुमायुध इह पूजां प्रतीच्छति। अस्माकं तातस्यान्तःपुरे पुनश्चित्रगतोऽर्च्यते।

तो वह आश्वस्त हो जाती है और अपनी आन्तरिक प्रतिक्रिया यह कह कर व्यक्त करती है कि दूसरे की आज्ञा का अनुवर्तन करने के कारण दूषित होने पर भी, अब उसे अपने जीवन से ममत्व होने लग गया है; क्योंकि उसे उस उदयन के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिसके हाथों में उसके पिता उसे समर्पित करना चाहते थे। स्पष्ट है कि अपन दासी-जीवन के प्रति वितृष्णा के भाव सागरिका और आरण्यका दोनों में विद्यमान हैं। परन्तु एक ओर, सागरिका अपनी उस मनःस्थिति पर आसानी से शीघ्र ही सन्तुलन पा लेती है तथा उदयन के सान्निध्य के कारण अपनी परतन्त्रता की स्थिति को नगण्य समझने लगती है तो दूसरी ओर, आरण्यका की प्रतिक्रिया कुछ अधिक उग्र दीख पड़ती है। उसे पश्चात्ताप है कि महान् राजपरिवार की कन्या होकर इस स्थिति तक पहुंचने के पहले उसने आत्मघात क्यों नहीं कर लिया? इस प्रकार एक ही नाट्यकार की सृष्टि होकर भी दोनों नायिकाएं दो भिन्न व्यक्तित्व का परिचय देती हैं।

नाटिका की नायिका चूंकि उच्चवंशोत्पन्न हुआ करती है, अतः उससे यह अपेक्षा की जाती है कि ललितकला के किसी न किसी अंग से उसका परिचय हो। अतः इन नाटिकाओं के अधिकांश रचयिताओं ने यह प्रयास किया है कि ललितकला के परिवेश में इन नायिकाओं का व्यक्तित्व विकसित हो। जहां तक श्री हर्ष की प्रियदर्शिका और रत्नावली का प्रश्न है, ये दोनों नायिकाएं ललितकला के अंगविशेष से पूर्ण परिचित हैं। नायिका प्रियदर्शिका यदि अभिनयकला[१३८], संगीतकला[१३९] और

---

१३८. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका, अं-३, पृ-५३

वासवदत्ता—आरण्यके, एतैरेव मदंगपिनद्धैराभरणैर्नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं प्रसाधय।

१३९. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका,

आरण्यका—

घनबन्धनसंरुद्धं गगनं दृष्ट्वा मानसमेतुम्।
अभिलषति राजहंसो दयितां गृहीत्वात्मनो वसतिम्॥३/८
अभिनवरागक्षिप्ता मधुकरिका वामकेन कामेन
उत्ताम्यति प्रार्थयमाना द्रष्टुं प्रियदर्शनं दयितम्॥३/९

वीणावादन[१४०] में दक्ष है तो रत्नावली चित्रकला[१४१] में निपुण है। सांकृत्यायनी द्वारा लिखित तथा उदयन और वासवदत्ता के जीवन पर आधारित रूपक में प्रियदर्शिका (आरण्यका) वासवदत्ता के रूप में प्रशस्य अभिनय करती है। अभिनय के ही क्रम में आरण्यका द्वारा गाये गये दोनों लघुगीत मधुर और मार्मिक हैं। यहां नायक और नायिका के परस्पर आकर्षण से उत्पन्न मनोगत भावों को दो भिन्न प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। राजहंस यदि अपनी प्रेयसी हंसी को लेकर मानसरोवर उड़ जाना चाहता है, तो भ्रमरी अपने ऐसे प्रेमी से मिलने के लिए बेचैन है। प्रिय के समागम को नितान्त दुर्लभ जानकर भी भ्रमरी अपने सुभग प्रियतम से मिलने की प्रार्थना किए ही जा रही है। आरण्यका के ये दोनों गीत उसके हृदय में अन्तर्हित प्रियानुराग की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति हैं। दूसरी ओर सागरिका उदयन की प्रियच्छवि को रंग और तूलिका के सहारे अनायास अंकित कर डालती है। चित्रकला में पूर्ण अभ्यस्त नायिका ही इस प्रकार सहज ढंग से चित्र बना सकती है।

श्री हर्ष के पश्चात्, द्वादश शताब्दी के रुद्रचन्द्रदेवकृत उषारागोदया में ज्येष्ठा नायिका की वीणावादन एवं संगीतकला विषयक निपुणता का अंकन है।[१४२] देवी ही नहीं उसके परिजन और दासी भी संगीत में निपुण हैं। तृतीय अंक में नायिका उषा अपने प्रियतम अनिरुद्ध को चित्रफलक में देखकर अपना मन बहलाना चाहती है। चित्रकला नाम की उसकी परिचारिका उसे एक चित्रफलक देती भी है। चित्रकार कौन है यह तो स्पष्ट नहीं है, किन्तु अन्तःपुर में चित्रांकन में रुचि रखनेवाली स्वामिनी तथा परिचारिकाओं की कमी नहीं है। संगीत का तो इस नाटिका में प्रचुर प्रयोग

---

१४०. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका** अं-३, पृ-५८,

आरण्यका—

कांचनमाले, उपनय मे घोषवतीम्; यावदस्यास्तन्त्रीः परीक्षे।

१४१. श्रीहर्ष, **रत्नावली** अं-२, पृ-५९

सुसंगता—एषा में प्रियसखी सागरिका। किं पुनरेषा गुरुकानुरागोत्क्षिप्तहृदयेव किमप्यालिखन्ती न मां प्रेक्षते भवतु। तद्यावदस्यादृष्टिपथं परिहृत्य निरूपयिष्यामि किमेषाऽऽलिखति।

१४२. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, अं-२, पृ-२५

विदूषकः—एषा वीणानिबद्धपंचमरागमूर्च्छानुसारेण गीयमाना सखीजनेन सह इत एवागच्छति। तच्छृणोतु कुमारः गीतम्।

किया गया है। रुक्मिणी[१४३], कुमार अनिरुद्ध[१४४], वैतालिक[१४५] तथा स्वयं कनिष्ठा नायिका उषा सभी संगीत को भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपनाती हैं।

सोलहवीं सत्ररहवीं शताब्दी की रचना वृषभानुजा नाटिका में नायक श्रीकृष्ण को ही अपनी प्रिया राधा का चित्र फूलों के रस से तमाल पत्र हर आंकते[१४६] हुए पाया जाता है। इस नाटिका के रचयिता मथुरादास ने ललितकला के किसी भी अंग में नायिका राधा की रुचि नहीं दिखलायी है। फलस्वरूप रचयिता ने इस नाटिका में भाव-सौंदर्यपूर्ण स्थितियों के अंकन का उपयुक्त अवसर खो दिया है।

अठारहवीं शती की रचना मलयजाकल्याणम् की नायिका मलयजा भी हर्ष की प्रियदर्शिका की तरह संगीतकला के प्रति अभिरुचि रखनेवाली है।[१४७] राजकुमारी

---

१४३. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**,

रुक्मवती (गायति)
प्रथमं मानिनीमानःविलसति ततः कुन्दवनलक्ष्मीः।
उत्कण्ठितजनहृदये दृश्यते पश्चात् खलु नवलतिकानाम् ॥२/१६

१४४. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**,

लोकलोचनतुरंगवागुरा
सा व्यधायि वडिशं मनोभुवः
चित्तमत्तगजलोलशृंखला।
कामिमीनहतये स्वयम्भुवा ॥३/१८

१४५. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**,

उत्सर्पन्तीह जालैरगरुविरचिताःकेशसंस्कारधूमाः
सम्पूर्यन्ते कुटीषु प्रमदरतविधौ वासताम्बूलगन्धाः॥ ३/१३

१४६. मथुरादास, **वृषभानुजा**,

मूर्तिर्मयात्र लिखिता दयिते तवेयं
रूपं यथा तव तथा च यथा कथंचित्।
आलिख्यते कथमपांगविलासलीला-
लावण्यमंगवलनं च सविभ्रमं ते ॥३/५

१४७. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**,

भद्र पियालतरो तव पुष्पैःबिना न भाति मधुसमयः।
न खलु शोभते मध्यानां पूर्णःकामो न कामदेवस्य ॥२/२१

मलयजा ही नहीं उसकी दोनों सखियां केरलिका और मंजरिका भी इस कला में निपुण हैं।[१४८] वीणा बजाते समय वादिका की अंगुलियों को कोमल एवं स्निग्ध रखने के लिए फूलों का रस प्रायः व्यवहार में लाया जाता है। केरलिका बकुल पुष्प के पराग से बायें हाथ की अंगुलियों को कोमल बनाने का परामर्श नायिका को देती है और स्वयं उस पुष्प की मंजरी लाकर उसे देती भी है।[१४९] आशय यह है कि मलयराज के अन्तःपुर में संगीतकला में न्यूनाधिक अभिरुचि प्रायः सभी में है।

उपरिर्चाचित नायिकाओं की ललितकला के प्रति जो अभिरुचि दीख पड़ती है वह विद्धशालभंजिका, कर्णसुन्दरी, पारिजातमंजरी, चन्द्रकला, कुवलयावली, वृषभानुजा तथा विवेकचन्द्रोदय नाटिकाओं की नायिकाओं में परिलक्षित नहीं होती।

मिलन और विरह की अवस्थाओं में नायिका एवं नायक के मनोगत भावों एवं इनके माध्यम से उनके व्यक्तित्व के विवेचन का पर्याप्त अवसर उपलब्ध होता है।

श्रीहर्ष की नाटिकाएं भास एवं कालिदास की रचनाओं से विशेष प्रभावित हैं। कालिदास ने पुष्प-रसलम्पट भ्रमर के आक्रमण से शकुन्तला की रक्षा नायक दुष्यन्त के द्वारा करवायी है जो नायक और नायिका के प्रथम मिलन के अवसर पर ही घटित होती है।[१५०] श्री हर्ष को नायिका प्रियदर्शिका भी दुष्टभ्रमर द्वारा पीड़ित किये जाने पर नायक उदयन की सहायता से त्राण पाती है।[१५१] नायक और नायिका

१४८. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-२, पृ-१८, १९

केरलिका—सखि, गीयते निवारणम्।

मंजरिका—भैरविकाया इदानीं प्राप्तकालता।

१४९. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-२, पृ-१८

केरलिका—(सलीलं वकुलमंजरीं गृहीत्वा मलयजायै निवेद्य)

सखि, कलय अस्मिन् मुहूर्ते वामांगुलीम्॥

१५०. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-१, पृ-१६

उभे (सस्मितम्)—के आवां परित्रातुम्। दुष्यन्तमेवाक्रन्द।

राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।

१५१ श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**,

राजा—(स्वोत्तरीयेण भ्रमरान्निवारयन्)

अयि विसृज विषादं भीरु भृंगास्तवैते
परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति।
विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायताक्षी
कुवलयवनलक्ष्मीं तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति॥२/८

का प्रथम मिलन उद्यान के सरोवर में नीलकमल तोड़ने के लिए नायिका के आने के पश्चात् होता है। भ्रमर के आक्रमण से रक्षा के लिए सखी इन्दीवरिका को पुकारती हुई प्रियदर्शिका के कानों में विदूषक के शब्द पड़ते हैं कि सारी पृथ्वी के रक्षक महाराज उदयन ही जब समीप में खड़े हों तो फिर इन्दीवरिका को बुलाने की क्या आवश्यकता।[१५२] प्रियदर्शिका का मन एक बार अपने पिता के प्रति कृतज्ञता के भाव से विगलित हो उठता है, क्योंकि उन्होंने उसे उदयन जैसे सुयोग्य पात्र को सौंपना चाहा था।

प्रथम दर्शन में ही नायिका नायक के प्रति अनुरक्त हो जाती है। सन्ध्या हो जाने के कारण अन्तःपुर में लौट चलने के लिए आग्रह करती हुई चेटी से, उदयन के निकट से हटने की अनिच्छा के कारण प्रियदर्शिका कहती है कि सरोवर के जल की शीतलता के कारण उसकी जंघा शिथिल हो गयी है। अतः वह शीघ्रता से चलने में असमर्थ है। शकुन्तला का भी वल्कल कांटों में उलझ जाता है, फलतः वह शीघ्रता से चल नहीं पाती। कुश के नुकीले अंकुरों के कारण भी उसको चलने में कष्टहो रहा है ऐसा वह प्रकट करना चाहती है।[१५३] प्रियदर्शिका का मन भी उदयन में उलझ चुका है। वह जैसे अपने में है ही नहीं। इसी कारण कौमुदी महोत्सव के ठीक एक दिन पहले अभिनीत नाटक में प्रियदर्शिका अपना अभिनय अच्छी तरह[१५४] नहीं कर सकी है। प्रिदर्शिका अपने ही भीतर घुट रही है। उदयन रूप-गुण से इतने सम्पन्न हो

---

१५२. श्री हर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-१, पृ-३६

विदूषक—भवति, सकलपृथ्वीपरित्राणसमर्थेन
वत्सराजेन परित्रायमाणा चेटीमिन्दीवरिकामाक्रन्दसि।

१५३. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल,**

दर्भांकुरेण, चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्॥ २/१२

१५४. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-४१

मनोरमा-···

अद्य पुनर्वासवदत्ताभूमिकया तया यदि तथा क्रियते
ततोऽवश्यं देवी कोपिष्यति।

कर भी उसे क्यों सन्ताप दे रहे हैं, यह बात उसकी समझ में नहीं आ रही है।[१५५] वह कहे भी तो किसको ? मृत्यु[१५६] ही छुटकारे का उपाय है। अपनी प्रिय सखी मनोरमा से भी वह अपने मन का रोग छिपाना चाहती हैं, क्योंकि इससे महारानी के कानों तक बात के पहुंच जाने का भय है। एकान्त में उसके विरहोद्गार को मनोरमा सुन लेती है। यह परिचारिका महाराज के स्वभाव को अच्छी तरह जानती है अतः प्रियदर्शिका को आश्वस्त करती हुई वह कहती है कि महाराज अब तुम से मिलने का उपाय स्वयं ढूढेंगे क्योंकि उन्होंने अपनी आँखों से तुम्हें देख लिया है[१५७] अन्तः पुर के भीतर गन्धर्वशाला में होने वाले अभिनय में वासवदत्ता की भूमिका करती हुई आरण्यका को मनोरमा की इस योजना का पता नहीं है कि मनोरमा की जगह स्वयं महाराज मंच पर अभिनय करने वाले हैं अन्यथा वह यह नहीं कहती कि मनोरमा का स्पर्श मेरे अंगों को अवश कर रहा है।[१५८] इस तरह पहली बार प्रमदवन में सरोवर के किनारे और दूसरी बार मंच पर आरण्यका को नायक के बिलकुल निकट आने का अवसर मिलता है। नायिका की प्रतिक्रिया सीमित और मर्यादित ही है। वह अपनी बात अपने मन में रखना चाहती है, किन्तु जब एकान्त में वह मनोरमा से अपने को नहीं छिपा पाती तो अपनी लज्जा का बिलकुल त्याग कर, उसे अपनी मनः स्थिति से अवगत कराती[१५९] हुई हृदय की बातें उससे कह डालती है। लज्जाशीला शकुन्तला भी इस

---

१५५. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-४२

आरण्यका—(सास्रम्) कथं तथा नाम शोभन-दर्शनो भूत्वा
महाराज एवं सन्तापयति माम् ।आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

१५६. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-४३

आरण्यका—सर्वथा मरणं वर्जयित्वा कुतो मे हृदयस्यान्या निर्वृत्तिः।

१५७. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-४४

मनोरमा—यदि दृष्टा महाराजेन त्वं तदलं सन्तापितेन ।
स एवेदानीं दर्शनोपायपर्याकुलो भविष्यति ।

१५८. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-७०

आरण्यका—(स्पर्शविशेषं नाटयन्ती, आत्मगतम्) हा धिक् हा
धिक् एतां मनोरमां स्पृशन्त्या अनर्थमेव मेंऽगानि
कुर्वन्ति ।

१५९. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अंक-३, पृ-४४

आरण्यका—(सलज्जमात्मगतम्) हा धिक् हा धिक् । सर्वं श्रुतमेतया
तदत्र युक्तमेव प्रकाशयितुम् । ······

तरह अपने मन की बात प्रियंवदा और अनसूया से कह डालती है।[१६०] इतना ही नहीं शकुन्तला तो अपनी सखियों से इतनी अधिक खुल जाती है कि दुष्यन्त की अनुकम्पा दिखलाने के लिए अनुकूल करने का उनसे आग्रह भी करती है।[१६१]

श्रीहर्ष की दूसरी नायिका रत्नावली का यथार्थ परिचय नायक उदयन के परिवार को चूँकि बहुत विलम्ब से होता है; अतः अन्तःपुर में इसकी स्थिति प्रियदर्शिका से कुछ विलक्षण ढंग की है। वह महारानी वासवदत्ता की परिचारिका मात्र बन कर वहां है। उसके राजकन्या होने का ज्ञान अभी किसी को भी नहीं है। इसलिए रत्नावली यह सोचती भी नहीं कि वह एक दिन उदयन की प्रेयसी भी बन सकेगी। उसका काम है महारानी की सेवा करना। वह वासवदत्ता की आज्ञा की अनुर्वात्तिनी है। रत्नावली के तारुण्य और रूप-गुण को देखते हुए तथा अपने पति के स्वभाव को अच्छी तरह जानते हुए वासवदत्ता के मन में चोर घुस चुका है। अतः वह धोखे से भी रत्नावली को महाराज के सामने आने देना नहीं चाहती है।[१६२] वासवदत्ता के मन की बात वसन्तोत्सव के अवसर पर अपने मुंह से उस समय झुंझलाहट के रूप में निकल पड़ती है, जब अच्छी तरह समझा दिये जाने पर भी रत्नावली कामदेव-पूजन के समय अन्य दासियों के साथ उद्यान पहुंच जाती है। महारानी झट उसे डांट कर वहां से भगा देती है कि वह जाकर सागरिका की देखरेख करे[१६३] किन्तु, स्वाभाविक उत्सुकता के कारण रत्नावली अपने पितृगृह सिंहल की और यहां की वसन्तपूजा में अन्तर जानने के लिए लता की ओट में छिप जाती है। पूजा के विधान में किसी अन्तर का दर्शन उसे हुआ

---

१६० कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-३, पृ-४६

शकुन्तला—सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थाऽस्मि संवृत्ता।

१६१. कालिदास, **अभिज्ञानशाकुन्तल**, अं-३, पृ-४६

शकुन्तला—तद्यदि वामनुमतम् तदा तथा वर्तेथाम् यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि।

१६२. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-१, पृ-४१

वासवदत्ता— अहो प्रमादः परिजनस्य। यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्येव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत।

१६३. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-१, पृ-४१

वासवदत्ता—तत्रैव लघु गच्छ।

या नही यह तो वही जाने, किन्तु पूजा-ग्रहण करते समय उदयन के रूप में कामदेव का दर्शन उसे हो ही जाता है।[१६४] वहां की सारी स्थिति जान लेने पर वह स्वयं भी उदयनरूपी कामदेव को अपनी ओर से प्रेम-श्रद्धा के सुमन अर्पित कर देती है। इस तरह प्रथम मिलन के पूर्व प्रथम दर्शन में ही रत्नावली पुष्पार्पण के माध्यम से अपने भावप्रवण हृदय को मानों उन्हें अर्पित कर डालती है। मन को अर्पित तो वह कर डालती है, किन्तु सुस्थिर होते ही उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप होने लगता है। अपने दास्यभाव को स्मरण कर वह कांप उठती है। दूसरी ओर उसे यह भी अच्छी तरह स्मरण है कि उसके पिता सिंहलनरेश इसी उदयन को उसे सौंपना चाहते थे।[१६६] भाग्य की कैसी बिडम्बना है। इस प्रकार रत्नावली का अन्तर भावनाओं के वात्याचक्र में खो जाता है। वह कभी अपने हृदय को तो कभी कामदेव को कोसने लगती है।[१६७] प्रियदर्शिका को मनोरमा से आश्वासन मिलता है. इसलिए उसकी समस्या उतनी तीक्ष्ण नहीं है, जितनी कि रत्नावली की। रत्नावली समुद्र की दुर्घटना में फंस गयी थी। उससे बचकर भी वह अभी तक सागर जैसी विस्तृत और अथाह अपने जीवन की समस्याओं से जूझ ही रही है। वह शरीर से ठोस धरातल पर स्थिर रह कर भी मन से सागर की गहराई में ही अब तक निमग्न है। यही कारण है कि दिन-रात साथ लगी रहने वाली अपनी सहेली सुसंगता को भी वह अपने मन की बात की भनक नहीं मिलने देना चाहती। एकान्त में अपने मन को बहलाने के क्रम में उदयन की छवि अंकित करती जब उसे सुसंगता देख लेती है, तब भी वह कामदेव का चित्र कह कर उसे बरगलाना ही चाहती

---

१६४. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-१, पृ-४७

सागरिका—कथं प्रत्यक्ष एव भगवान् कुसुमायुध इह पूजां प्रतीच्छति।

१६५. श्रीहर्ष **रत्नावली**, अं-१ पृ-४७

सागरिका—………। (कुसुमानि प्रक्षिप्य) नमस्ते
भगवन्कुसुमायुध ………………।

१६६. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-१, पृ-४६

सागरिका—कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता।

१६७. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-२, पृ-५६-५७

सागरिका—…किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन।
अन्यच्च येनैव दृष्टेन त ईदृशः सन्तापो ननु वर्धते
तमेव पुनरपि प्रेक्षितुमभिलषसीत्यहो ते मूढता।

है। बात उसकी ओर से तब स्पष्ट होती है जब चित्र की बगल में सुसंगता रति के बहाने रत्नावली का चित्र बना डालती है। सुसंगता को सभी बातें मालूम हैं यह जानते ही सागरिका इस रहस्य को छिपा रहने के लिए उसके सामने गिड़गिडाने लगती है। इस प्रकार प्रियदर्शिका और रत्नावली ये दोनों नायिकाएं दो भिन्न मनः स्थितियों से गुजरती हैं।

राजशेखरकृत विद्धशालभंजिका की नायिका मृगांकावली की मूर्ति तथा चित्र ही देखकर नायक विद्याधरमल्ल मोहित हो जाता है। इसके पहले वह स्वप्न में उसे दर्शन देती है और राजा विदूषक चारायण के साथ उस स्वप्नसुन्दरी को अन्तःपुर के भीतर ढूंढ़ता फिरता है। अन्तःपुर में प्रायः सभी स्थानों में परिजन समेत महारानी के चित्र अंकित हैं। यहां तक कि देवी का स्नानागार भी एकतरह से चित्रागार ही है। विदूषक का काम है नायिका के चित्रवाले स्थान को खोजना और रोजा का काम है उन्हें देख-देख कामुक उद्गारों को व्यक्त करना। इस प्रकार इस विचित्र कथानक में लेखक ने नायक ओर नायिका का मिलन तीसरे अंक के अंत में कराया है। नायिका यथार्थ में बालकवेश में रहने के कारण अपने अन्तर की भावनाओं को खुल कर व्यक्त करने में प्रायः विवशता का अनुभव करती है। तीसरे अंक में मिलन के बाद ही देवी की ओर से महाराज को मूर्ख बनाकर परिहास करने का आयोजन होने लगता है, जिसमें मृगांकवर्मन् को बालिकावेश में महाराज के साथ परिणयसूत्र में बांधने की योजना है।

स्पष्टतः रत्नावली या प्रियदर्शिका नायिकाओं के समान मृगांकावला की मानसिक स्थिति की विवृति में उल्लेख्य कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता।[१६८]

एकादश शताब्दी की रचना कर्णसुन्दरी नाटिका की नायिका भी पहले स्वप्न में,पुनः चित्र में और तदुपरान्त प्रत्यक्षरूप में नायक को दृष्टिगोचर होती है। स्वप्न में नायक के द्वारा देख लिये जाने के साथ ही नायिका की प्रतिक्रिया की मार्मिकता व्यक्त होने लगती है। स्वप्न में ही देखी गयी नायिका की विरहाकुल चेष्टाओं का वर्णन

---

१६८. 'नाटिका की नायिका' वाले अनुभाग में इस नायिका के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया गया है।

राजा बिदूषक से करता है ।[१६९] राजा स्पष्ट देखता है कि वह स्वप्नसुन्दरी विरह के ताप से सन्तप्त अपने हृदय को बहती आँसुओं की धारा से शीतल करना चाहती हैं । उसके वक्षस्थल पर शोभित हार के मोतियों में अटके आंसुओं के कणसमूह दूसरे हार के रूप में दिखाई पड़ते हैं । विरहदग्ध सुन्दरी अपने गले में लता का फांस डालकर मरने को प्रस्तुत है । राजा उसे रोकने के उद्देश्य से उसका आंचल पकड़ने के लिए जैसे ही अपना हाथ बढ़ाते हैं, वह सुन्दरी एकाएक अदृश्य हो जाती है । दूसरी ओर चित्र में अंकित कर्णसुन्दरी के प्रति राजा की आसक्ति देखकर ही महारानी का प्रकोप उग्र होने लगता है । चूंकि राजा अभी तक स्वप्न या चित्र में ही नायिका को देख सका है; अतः अपने प्रति नायिका के अनुराग की जानकारी के लिए वह विदूषक को नियुक्त करता है । नायिका के विरह-ताप के लिए शीतलोपचार लेकर जाती हुई तरंगवती सखीं से विदूषक[१७०] की भेंट होती है । सखी नायिका के विरह का वर्णन करती हुई कहती हैं कि उसकी सन्तापतरल आँखों को न तो चन्द्रमा से शीतलता मिलती है और न उसके शरीर को कमल-दलों को बनी शय्या से

---

१६९. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

राजा—

एवं पुनःपुनरुदीर्य विदीर्यमाणं
वज्राग्रभिन्नमिव सा हृदयं दधाना ।
मोहं गता कुचतटे नयनाम्बुलेशै-
रासूत्रितत्रिचतुरापरहारलेखा ।। १/३७

....

अथ कथमपि संज्ञां प्राप्य दीर्घं श्वसन्ती
कुचपरिसरनृत्यत्तारहारावलीका ।
विचकिलवनगुल्मे नूतनीभूतवल्ली-
वलयनिगलिता सा पाशबन्धे प्रवृत्ता ।। १/३८

१७०. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-२, पृ-१९

विदूषक—

भवति, कुताऽन्यतो गम्यते ।
अहं तव शशिलेखाया इव मार्गं प्रलोकयामि ।
त्वं राहुमिव मां परिहरसि''' ।

विश्राम ।[१७१] कुचस्थली पर मलयज का प्रलेप भी धूलि में परिणत हो जाता है । इस प्रकार दोनों ओर से अनेकविध विलाप-प्रलाप के पश्चात्, दूसरे अंक में नायक और नायिका एक दूसरे के निकट पहुंच पाते हैं । किन्तु, यह मिलन तब सम्भव हो पाता है जब नायिका विरह-ताप के कारण सुधिहीन हो जाती है । सखी के आग्रह पर राजा अपने हाथ के स्पर्श से नायिका की चेतना लौटाता है । उत्तररामचरित में भी वियोग के कारण संज्ञा शून्य होते हुए राम की चेतना छाया सीता के हस्तस्पर्श से लौटती है ।[१७२] इस प्रकार कवि विल्हण ने नायिका कर्णसुन्दरी की विरहावस्था को कवित्वमय हृदयावर्जक शैली में चित्रित किया है ।

विश्वनाथकृत चन्द्रकला की नायिका महामात्य सुबुद्धि की सम्बन्धिनी के रूप में महाराज चित्ररथदेव के अन्तःपुर में रखी गयी है । इसप्रकार प्रियदर्शिका अथवा रत्नावली से उसका परिवेश विलक्षण ढंग का है । उसे महारानी की आज्ञा की अनुगामिनी बन कर अपनी हीन अवस्था के लिए सन्तप्त होने की आवश्यकता नहीं है । प्रत्युत महामात्य की प्रतिष्ठा के अनुरूप महारानी चन्द्रकला को अपनी निकटतम सहेली बना कर रखती है ।[१७३] चूंकि वह रूपयौवन से सम्पन्न है, अतः महारानी बराबर सावधान रहती है । महाराज के शारीरिक सौन्दर्य को ललचाई आंखों से दूर से ही देखती हुई चन्द्रकला महारानी की विश्वस्त परिचारिकाओं के द्वारा देख ली जाती है ।[१७४] फलतः नियन्त्रण की मात्रा जितनी ही बढ़ती जाती है नायक-नायिका के पारस्परिक

---

१७१. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

यत्तारारमणोऽपि निर्वृतिपदं नास्याश्चलच्चक्षुषो
यद्गात्रं शतपत्रपत्रशयनेप्युत्फालमुद्वेल्लति ।
शीतं यच्च कुचस्थलीमलयजं धूलीकदम्बायते
किं वान्यत्तदनंगमंगलमयी भंगी कुरंगीदृशः ।। २/१

१७२. भवभूति, **उत्तररामचरित**,

तमसा— त्वमेव ननु कल्याणि संजीवय जगत्पतिम् ।
प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैष निरतोजनः ।। ३/१०

१७३. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-१, पृ-६

सुनन्दना—आर्यं गौरवनियन्त्रितया देव्या प्रियसखीपदे स्थापिता वर्तते ।

१७४. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-१, पृ-७

सुनंदना—तत इयं मंथरतरलतारकं महाराजं आलोकयन्ती ससम्भ्रमं देवीपरिजनैर्दूरतो नीता ।

अनुराग की तीव्रता उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है।[१७५] दूसरी ओर, नायिका को महाराज की ओर से निराशा ही निराशा दिखलायी पड़ती है।[१७६] सखी सुनन्दना सहकार पादप से लिपटने को प्रस्तुत बाल माधवीलता को देखने का आग्रह करती है, किन्तु उस ओर तटस्थता के भाव प्रकट करती हुई नायिका देख भर लेती है। रचनाकार ने बड़े विलक्षण ढंग से नायिका के द्वारा चुने गए फूलों का उपहार नायक को हाथों-हाथ दिलवाकर प्रथम मिलन के लिए माधुर्य से परिपूर्ण परिवेश की सृष्टि की है।[१७७] इस नाटिका के नायक ने अपने लिए नायिका चन्द्रकला की प्राप्ति को पृथ्वी के एकच्छत्र राजा और इन्द्र के पद से भी अधिक सुखद बतलाया है।[१७८]

दूसरी ओर, नायिका और नायक के मिलन में बाधाओं का अन्त भी नहीं है। दूसरी बार के मिलन के कुछ ही क्षण पश्चात् नायिका के पदचिह्नों को देखकर दासी रतिकला महारानी को किसी अभिनव नायिका के साथ महाराज के प्रेममिलन का संकेत करती है।[१७९] वस्तुतः रतिकला अन्तःपुर की प्रत्येक गतिविधि का विश्लेषण करने की क्षमता से सम्पन्न है। रत्नावली, प्रियदर्शिका, कर्णसुन्दरी आदि नायिकाओं की गतिविधि का इतना सूक्ष्म अध्ययन करने वाली परिचारिका अन्तःपुर में दूसरी नहीं

---

१७५. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, पृ. ७-

सुनन्दना—मदनानलभ्रमितान्तरो वर्त्तते महाराजः।

१७६. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, - अं-१, पृ. १३

चन्द्रकला—अपि नाम एष महाराजः
पुनरपि मे लोचनपथालङ्करणं भवेत्।

१७७. विश्वनाथ, **चन्द्रकला** अं-१पृ. १९

राजा—उपनयतु मे सुकृतपादपस्य परिणतं
फलमिदं प्रेयसि।

१७८. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**,

राजा—

एकातपत्रं वसुधाधिपत्यमैन्द्रं पदं वामरवृन्दवन्द्यम्
मनोरथोऽध्यासितुमुत्सहेत न चेद्दृशश्चारुदृशोऽनुरागः। २/१४

१७९. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-२, पृ. ४०

रतिकला—सखि, यथा इहाभिनवसुलक्षणाया कस्या इव
पदपद्धतिर्दृश्यते तथा तर्कयामि त्वां गोपयन् भर्ता
कस्या अपि कामिन्या आसक्तो वर्तते।

है। इस तरह एक ओर, महारानी द्वारा नायिका को जितना ही अधिक कठोर बंधन में रखा जाता है, दूसरी ओर, नायक को अपने सहायक विदूषक द्वारा दोनों के मिलन का उतना ही अधिक आश्वासन दिया जाता है। [१८०] इधर नायिका की मनःस्थिति ऐसी है कि अपने प्रियतम के द्वारा अपनाये जाने की बात पर उसे विश्वास ही नहीं होता। वह अच्छी तरह समझती है कि देवी के सामने पड़ते ही भय से महाराज सब कुछ भूल जायेंगे। [१८१] यथार्थ में होता भी यही है। इस प्रकार, इस नायिका को आरम्भ से लेकर नायक के प्रति समर्पण तक अनेक बार प्रेम-मिलन की देहली तक पहुंचकर भी निराशा का सामना करना पड़ता है। उसे बार-बार आत्मग्लानि का अनुभव होता है। यहां तक कि आत्म-हत्या के लिए भी वह कई बार उद्यत हो जाती है।

उषारागोदया का कथानक कविकल्पित न होकर विष्णुपुराण पर आधारित है, इसका उल्लेख पहले ही कर दिया गया है। इस कारण इसकी नायिका को अन्य नाटिकाओं में वर्णित परिस्थिति में कुछ विलक्षण परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। नायक और नायिका दोनों शोणितपुर (कन्या के पितृगृह) में जी भर कर एक-दूसरे से मिल चुके हैं। नायक के लिए नायिका के या नायिका के लिए नायक के तड़पने की स्थिति तो बहुत बाद में आती है। सखी चित्रलेखा बिना किसी विघ्न-बाधा के दोनों को मिलाने में सफल हो चुकी है, इस बात की भनक तक किसी को नहीं मिलती। वस्तुतः दोनों नायक-नायिका एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आ चुके हैं। नायिका से मिलने के लिए कभी उद्यान में तो कभी किसी सरोवर के तट पर इस नायक को अन्धेरी रात में छिपकर खड़ा होने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। नायिका भी ज्येष्ठा की कोपाग्नि में झुलसने की स्थिति से नहीं गुजरती। अपने पिता के घर में ही सखी चित्रलेखा के प्रयास से नायिका कुमार अनिरुद्ध को बुलवा चुकी है। अतः वैसा कोई भी प्रसंग नहीं आया है, जिसके चलते विरह की तीव्रता के कारण नायिका को आत्महत्या करने का प्रयास करना पड़े। ज्येष्ठा रानी पर भी नारद मुनि के आदेश

---

१८०. विश्वनाथ, चन्द्रकला, अं-२, पृ. ४४

विदूषक—.........यथा देवी प्रसादं

गच्छति यथा तव चन्द्रकलया पुनः समागमो
भवति तथाहमेव सम्पादयामि।

१८१. विश्वनाथ, चन्द्रकला, अं-३ पृ. ६२

चन्द्रकला—सखि, सुनन्दने, देवीं प्रेक्ष्य सर्वं खलु विस्मरिष्यति महाराजः।

का अंकुश है, जिससे वह भी अन्य ज्येष्ठाओं की तरह विघ्न नहीं डालती। इन्हीं विशेषताओं के चलते ज्येष्ठा महान् दीख पड़ती है। कुमार स्वयं उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि सपत्नी के आगमन के कारण क्रोध होने पर भी महारानी विनयशीला बनी हुई है।[१८२] हां, तीसरे अंक में लेखक ने प्रयत्नपूर्वक विरह की व्यथा और मिलन के आनन्द को व्यक्त करने का अवसर ढूंढ निकाला है। नायक का चित्र बनाकर उषा असुरकन्या होकर भी संयत ढंग से अपने मन की बात प्रकट करती है।[१८३] वह कुमार का चित्र देखकर कहती है कि यह वही व्यक्ति है जिसके रूप-लावण्य पर मोहित होकर मैं गुरुजनों के सामने ही लज्जा खो बैठी। इस तरह कवि ने इस विरह-प्रसंग का थोड़ा विस्तार भी किया है। इसके चलते कथानक में यह अंश आरोपित सा लगता है। कुमार के लिए ही तो उषा को उसके पितृगृह से द्वारका लाया गया है और साथ ही नारद की आज्ञा से रुक्मवती नववधू के गृहप्रवेश की तैयारी कर ही रही है; तो फिर बीच की इस अल्पावधि में ही उषा की इतनी व्यग्रता कुछ अस्वाभाविक सी लगती है।

उपरिवर्णित नायिकाएँ मनुष्य वर्ग की हैं, किन्तु पारिजातमंजरी की नायिका दिव्यमानुषी है। इसकी उत्पत्ति और उपलब्धि दोनों ही कुछ विलक्षण प्रकार की हैं। चालुक्य नरेश की दिवंगता कन्या दिव्याकृति ग्रहण करके स्वर्गस्थ पारिजातवृक्ष की एक कलिका के भीतर अवस्थित हो रहस्यमय ढंग से अपने नायक को प्राप्त होती है।[१८४]

---

१८२. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**,

विनयः सत्यपि क्रोधे सत्यपि प्रेम्णि धीरता।
चरितं सर्वथा धन्यं मन्ये कुलनतभ्रुवाम्॥४/१५

१८३. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**,

उषा—स खल्वयं जनो यस्य लावण्यमोहिता—
लिखितेव सर्वकालं भूतगृहीतेव नष्टविज्ञाना।
तिष्ठामि विगतलज्जा गुरुजनदृष्टापि हन्त मुग्धेव॥ ३/७

१८४. मदन, **पारिजातमञ्जरी**,

सूत्रधारः—प्रिये, न खल्वेवम् किं तु।
या चौलुक्यमहीमहेन्द्रदुहिता देवी जयश्रीः स्वयमंगे मृत्युमवाप्य वाष्पसलिलैरन्तः पुरस्योर्मिलैः।
वप्तुः शोकतमालबालबिपिनं चक्रे नदीमातृकं
सेयं स्वद्रुममंजरी किसलये संक्रम्य जातांगना॥१/७

नाटिका के आरम्भ में सूत्रधार और नटी दोनों ने नायक अर्जुनदेववर्मन् के विलास-वैभव और प्रताप का वर्णन [१८५] जिस विलक्षणता से किया है उसे ध्यान में रखते हुए नायिका की लौकिक उत्पत्ति का औचित्य स्वतः ही सिद्ध हो जाता है। पारिजात पुष्प से जिसकी सृष्टि हुई हो उसका सम्पोषण रतिपति के हाथों कराकर कवि ने इस नायिका के कोमल व्यक्तित्व को और भी अधिक मृदुल बना दिया है। महारानी द्वारा वर्द्धित एवं पोषित सहकारमंजरी को अपने हाथों ग्रहण करते हुए महाराज ने जिस विलक्षणता से प्रस्तुत कुसुममंजरी के महत्त्व का वर्णन किया है और विदूषक अपनी ओर से जो कुछ भी उसमें जोड़ता है, वह प्रतीक रूप में नायिका पारिजातमंजरी की अलौकिक सुकुमारता की व्याख्या बन जाता है। [१८६] ताटंकवाले दृश्य में, लता की ओट से राजा द्वारा अपनी मुखच्छवि देख लेने पर अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करती हुई नायिका कहती है कि बादलों के बीच में चन्द्रमा का थोड़ी-थोड़ी देर में छिप जाना और फिर दिखलाई पड़ना चकोरी को जिस दयनीय

---

१८५. मदन, परिजातमंजरी,

सूत्रधारः— ....

हयाननतरंगितत्रिविधवीरचूड़ामणि-
प्रगीतरसरंजितां रतिमवेक्ष्य मोट्टायिते।
यदीयविरुदं स्मरः परपुरंध्रिबन्धुर्जगौ
स एष नृपसुन्दरो जयति जैत्रचैत्रोत्सवे ॥ १/९

(सविस्मयम्) अन्तःपुरवनिताश्च द्विरदघटाश्चाशु गुर्जरेन्द्रस्य।
शृंखलिता यदनीकैः स एष सुभटक्षितीन्द्रसुतः ॥ १/१०

१८६. मदन, पारिजातमंजरी,

राजा :— ....

त्वयोपनीयमानोऽयं सहकारांकुरो मया
आत्तः पुष्पायुधस्येषुराज्ञास्वीकारलांछनम् ॥ १/१३
अपि कुसुमे नवकलिकाव्यपदेशः पेशलांगि युक्तस्ते
फलमेव कुसुममपि मे प्रसन्नया यत्त्वया दत्तम् ॥ १/१४
या मन्मथस्य जयितोऽभिनवास्त्रदेवी-
भूता पपात हृदये मम युद्धभूमौ।
भंग्या मनोहरतनुं विजयश्रियं तां
प्राणेश्वरीमयमुदाहरते वयस्यः ॥ १/१५

स्थिति में डाल देता है, वही स्थिति मेरी भी हो रही है।[१८७] यहां रानी, राजा और नायिका तीनों की परस्पर सांकेतिक प्रतिक्रियाएं बहुत मार्मिक हैं। राजा में होने वाले परिवर्तन को लक्ष्य कर रानी क्रोधित होती है और वहां से चल पड़ती है। किंकर्त्तव्यविमूढ राजा विदूषक से परामर्श करता है कि रानी को मनाने अन्तःपुर तक वह जाय अथवा कहीं सामने छिपी हुई नायिका का मनुहार करे। विदूषक के कहने पर राजा नायिका के पास पहुंचकर उससे मिलता है।[१८८] अर्जुनवर्मदेव प्रथम नायक है जो कुपित हुई रानी की उपेक्षा कर नायिका के अनुरंजन को प्राथमिकता देता है। इतना होते हुए भी नायिका के मन से भय तथा निराशा नहीं जाती और वह आत्महत्या तक की बात सोचने लगती है।[१८९] इस प्रकार कवि पारिजातमंजरी के कोमल व्यक्तित्व के अनुरूप सभी कुछ जुटाकर भी आत्महत्या की भावना से उसे मुक्त कर सका है और उसे इस प्रकार रत्नावली, प्रियदर्शिका, चन्द्रावली आदि सामान्य मानुषी नायिकाओं की कोटि में रख दिया है।

चौदहवीं शताब्दी की रचना कुवलयावली की कनिष्ठा नायिका की उत्पत्ति भी पौराणिक कथा की नायिका की तरह अलौकिक पृष्ठभूमि में हुई है। ब्रह्मा का आदेश और पृथ्वी के द्वारा एक कन्या का रूप ग्रहण आदि कथानक को दिव्य बना देता है। इसके अतिरिक्त नाटिकोपयुक्त अद्भुत रस की सृष्टि के लिए कवि ने नायिका के हाथ में रत्नमुद्रिका नारद के द्वारा दिलवायी है, ताकि दर्शकों को आश्चर्यानुभूति के साथ ही आनन्दोपलब्धि भी हो सके। नायिका को श्रीकृष्ण के अन्तःपुर में

---

१८७. मदन, पारिजातमंजरी,

नायिका—

चन्द्रस्येव तव मेघान्तरे क्षणदर्शनेन या सस्मिता
सीदामि सा चकोरीव पुनरपि त्वय्यन्तर्यति। २/५४

१८८. मदन, पारिजातमंजरी, अं-२, पृ.-२०

विदूषकः—वयस्य मारितस्य भुक्तस्य चैकमेव नाम।
स्तोको बहुर्वापराधोऽपराध एव।
तत्संभावय महाभागिनीं पारिजातमंजरीम्।

१८९. मदन, पारिजातमंजरी, अं-२ पृ.-२७

नायिका—तदिदानीं यद्देव्या कारयितव्यं तदहं स्वयमेव
करिष्यामि मन्दभागिनी।

लाकर रख देने की, नारद की योजना की कटु आलोचना सत्यभामा करती है।[१६०] दूसरी ओर सखी चन्द्रकला कुवलयावली को श्रीकृष्ण के अन्तःपुर में रखने के नारद के इस कार्य को औचित्यपूर्ण एवं प्रशंसनीय बतलाती है।[१६१]

वृषभानुजा नाटिका की नायिका राधा और नायक श्रीकृष्ण दोनों का प्रथम मिलन दूसरे अंक में उस समय होता है जब राधिका के द्वारा मदनपूजा समाप्तप्राय हो चुकी है और सभी सखियां हाथ जोड़कर प्रिय सखी राधा के लिए सुदर्शन पति की प्रार्थना कर रही हैं। समीप के किसी कुंज में छिपे श्रीकृष्ण सखियों के मधुर आलाप को सुन रहे हैं और उपयुक्त अवसर देखकर राधा के सामने आकर खड़े हो जाते हैं। इस पर राधा एक मुग्धा बाला की तरह लज्जा से सिहर उठती है, सखियों की ओर से आखें बचाकर नायक को देखती है और अपने पिता के समक्ष वृन्दा द्वारा श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में कही गई बातों को स्मरण भी करती जाती है।[१६२] राधा के मन के संशय को दूर करती हुई सखी चम्पकलता उससे कहती है कि नव-जलधर के मध्य विद्युल्लता के समान, तमालवृक्ष की सुवर्णयूथिका के समान तुम भी

१६०. शिङ्गभूपाल, कुवलयावली, अं-१ पृ.-५

सत्यभामा—.........

आर्यपुत्रस्य चित्तरंजनैकशीलः
कपटनाटकनिर्वहणस्तुतिवादः खलु स सुरर्षिः।
तेन कम्पत इव मे आत्मा।

१६१. शिङ्गभूपाल, कुवलयावली, अं-१ पृ.-१०

चन्द्रलेखा—अन्यथा कन्यकारत्नं त्वां त्रिभुवनैकमल्लस्य
क्षत्रियकुमारस्य भुजान्तरालैकमण्डनं कुर्वन्
माणिक्यमिव मंजूषायां नारदमहर्षिरन्तः
पुरे स्थापयति।

१६२. मथुरादास, वृषभानुजा, अं-१ पृ.-१५

राधा—(आत्मगतम्) अपि नाम वदेदियं तमेव दुर्लभजनं
मामधिकृत्य यो भगवत्या वृन्दया तदा तातस्य
समीपे प्रसंगेनाभिहित आसीत्।.........

अपने अनुरूप वल्लभ के समीप ही विद्यमान हो।[१६३] चम्पकलता की यह उक्ति कितनी उपयुक्त है। नवीन जलद, तमालवृक्ष और श्रीकृष्ण तीनों ही श्यामल हैं, तो विद्युल्लता, सुवर्णयूथिका और राधा ये तीनों स्वर्णकान्तिमती हैं। इसीलिए नायक श्रीकृष्ण ने भी सुवर्णयूथिका को आलिंगन में बांधने वाले तमाल को अधिक भाग्यवान् बताया है।[१६४] दूसरी ओर नायिका राधा श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि सुनकर आत्मविभोर होती हुई कहती है कि इस वंशीनाद से अमृत और विष दोनों की सृष्टि होती है, क्योंकि श्रवणेन्द्रिय से जब इसका संयोग होता है तो यह नाद अमृतवर्षी हो जाता है और वियोग की स्थिति में यह मरण का कारण बन जाता है।[१६५] इस प्रकार प्रथम मिलन के लिए, नायक और नायिका दोनों में समान और स्वाभाविक आकुलता दीख पड़ती है।

प्रियदर्शिका या रत्नावली आदि नाटिका की नायिकाओं की अपेक्षा राधा के समक्ष कुछ विलक्षण ढंग की परिस्थिति है, क्योंकि यहां ज्येष्ठा नायिका का भय या तज्जन्य आतंक न तो नायिका को है और न नायक को ही। ईर्ष्या, द्वेष तथा बन्दी बना लिए जाने की संभावना आदि से नायिका सर्वथा मुक्त है। यहां भय या आतंक नायिका में यदि है भी तो वह अन्य प्रकार का है। नायिका राधा को भय है तो अपनी कुलीनता और मर्यादा का, जिन्हें ध्यान में रखने पर कोई भी युवती कन्या स्वेच्छा से प्रेम प्रसंग में आगे नहीं बढ़ सकती। ऐसी स्थिति में अभिभावक की स्वीकृति ही सर्वोपरि होती है। विरहसंतप्त अवस्था के कारण क्षीण होती हुई राधा को पूर्ण स्वस्थ रखने का आदेश उसकी माता की ओर से चम्पक-

---

१६३. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-१, पृ.-१६

चम्पकलता—···त्वं किल कस्याप्यनुरूपवल्लभस्य समीपे
नवजलधरस्य विद्युल्लतेव यथा तमालविटपसंगता
सुवर्णयूथिका लता शोभमाना सुखं क्रीडन्ती तिष्ठसीति।

१६४. मथुरादास, **वृषभानुजा**.

कृष्णः—धन्यस्त्वमसि तमाल स्पृष्टस्तन्व्या लतावदनया यत्।
अद्य स्थावरजन्मा जातस्त्वं जंगमादधिकः॥ २/७

१६५. मथुरादास, **वृषभानुजा**,

राधा—संयोगेऽमृतसंकाशो वियोगे विषसंनिभः।
नादोऽयं सखि हेतुर्मे जीवने मरणेऽपि वा॥ ४/११

लता जैसे ही पाती है,[१९६] वैसे ही उपयुक्त उपचार का आयोजन करने लग जाती है।[१९७] सखियों के सहयोग और प्रयास से नायक और नायिका दोनों का एकान्त में मिलन होता है। अन्य कनिष्ठाओं की तरह यह मिलन भय और आतंक के बीच प्रछन्नरूप से नहीं होता है,[१९८] बल्कि ये दोनों पूर्ण आश्वस्त होकर ही मिलते हैं। नायक गान्धर्व-विधि से विवाह का प्रस्ताव नायिका के समक्ष स्वयं रखता है और राधा का मौनावलम्बन ही स्वीकृति बन जाता है। श्रीकृष्ण अपने हाथों राधा को फूलों और रंगों से अलंकृत करते हैं। इतना ही नहीं, राधा की कबरी को संयमित करते हैं और पुष्पों से उसे सजाते हैं।[१९९] इस प्रकार यह नायिका अन्य नायिकाओं से भिन्न परिवेश में चित्रित की गई है।

नायिका मलयजा अन्य नायिकाओं की श्रेणी की होकर भी अपने वैयक्तिक गुणों के कारण विशिष्ट दीख पड़ती है। 'लव् एट् फर्स्ट साइट' की स्थिति प्रत्येक नाटिका में देखी जाती है और यह स्थिति राजा के अन्तःपुर में ही विद्यमान किसी कुमारिका

१९६- मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-४ पृ.-४४

चम्पकलता—तदाज्ञप्तं देव्या—'यथा जीवितसर्वस्वं वत्सा
मे राधिका प्रकृतिमापद्यते तथा कुरु।

१९७. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-४ पृ.-४४

तमालिका—सखि, सुविहितं त्वया।
शीघ्रं नेतव्या सा प्रियसखीदानीं तत्र।

१९८. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-४ पृ.-५५

कृष्णः—अयि मुग्धे, कथं बिभेषि। नन्वनेककन्यकाजनस्य
गान्धर्वविवाहो जात इति प्रसिद्धम्।
अथाहं तव विधेयः।

१९९. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-४ पृ.-५५

कृष्णः—प्रिये, यद्यपि समाकुलास्ते मूर्धजा मुहुर्मुखाग्रे
निपतितैर्लोलालकैरत्यलंकरणाय, तथापि
कुसुमैर्नवैरलकर्तुमिच्छामि।
वेणीं ते प्रसमीक्ष्य चित्रकुसुमैरुद्भासितां बर्हिणो
लज्जन्ते निजबर्हवृन्दमधिकं भारं विदित्वा परम्।
निर्याताः शनकैरिति स्वनिलयाद्दूरे निलीय स्थिताः
पश्यैतानपि लज्जयेव मधुपान्पल्लीर्विहायोद्गतान्॥ ४/२३

युवती और नायक के बीच रहती है। किन्तु मलयजाकल्याण और वृषभानुजा इन दोनों नाटिकाओं की नायिकायें अन्तःपुर से दूर किसी लताकुञ्ज में अपने-अपने नायक को देखती हैं और दर्शनमात्र से ही उनके प्रति मौन आत्म-समर्पण कर डालती हैं। इन दोनों नायिकाओं का यह समर्पण प्रकृति-कन्या शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त के प्रति आत्म-समर्पण का स्मरण कराता है। वृषभानु की कन्या राधा शकुन्तला की तरह गान्धर्व-विधि से विवाह के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करती है। किन्तु मलयजा के समक्ष इस प्रकार का कोई प्रस्ताव नहीं रखा गया है, अतः परम्परया महारानी की स्वीकृति के पश्चात् नायक और नायिका का परिणय आर्षविधि से सम्पन्न कराया जाता है। जहां तक मलयजा के वैयक्तिक गुणों का प्रश्न है, वह वीणावादन में पूर्ण निपुण है और माता के आदेश से वीणावादन द्वारा प्रियालवृक्ष को पुष्पगुच्छ से भर देती है।

नायक देवराज के प्रति मलयजा का अनुराग एकपक्षीय है अथवा उभयपक्षीय इसका निश्चय जब तक मलयजा को नहीं होता तब तक वह दोहरी अशान्ति का अनुभव करती है। नायिका के मन में पहली अशान्ति है नायक के दर्शन के पश्चात् की, जो आकर्षण के उदय के कारण स्वाभाविक ही है। दूसरी अशान्ति है अपनी विवशता के कारण, जिसका अनुभव उसे एक कुमारी होने के नाते हो रहा है। उसकी कुछ सीमा है जिसे लांघकर वह अपने प्रति नायक के प्रेम का परीक्षण करने में असमर्थ है।[200] एतद्विषयक उसकी चिन्ता को दूर करने का उपाय सखी केरलिका बताती है कि वीणावादन के द्वारा यदि वह प्रियाल वृक्ष में फूल खिला दे तो उसके मनोरथ के पूरा होने का प्रमाण मिल जायेगा।[201] विवेकचन्द्रोदय की नायिका रुक्मिणी की चर्चा पूर्व में हो चुकी है। नाटिका के अनुरूप कन्या की प्राप्तिरूपी उद्देश्य को फल प्राप्ति मानकर भी लेखक ने इस रचना को कई दृष्टियों से विलक्षण बनाने का प्रयास किया है और इसमें वह सफल भी हुआ है। जरासंध आदि खलप्रकृति के राजाओं के समर्थन के बल पर शिशुपाल जहां रुक्मिणी को अपना बनाना चाहता है वहां रुक्मिणी स्वयं

---

२००. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-२ पृ.-१७

मलयजा—...हा किमिति दुष्टदैवेन एषा निर्माणविषयीकृतास्मि।
अथवा केन जन्मांतरपरिणामेन स्त्रीजन्माप्तवत्यस्मि।
यद्यपि यौवनारम्भवाहिना गृहीता दुर्लभविषयाकुला
सलज्जमानहृदया त्वया आश्वास्यते।

२०१. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-२, पृ.-१८

केरलिका—हला, यदि त्वं पुष्पलक्ष्मीमुत्पादयसि तदा
तव फलसिद्धौ न संशयः।

श्रीकृष्ण को वरण करना चाहती है। कन्या का पिता भीम यदि रुक्मिणी की इच्छा की पूर्ति के लिए चिन्तित है तो कन्या का अग्रज रुक्म अपने पिता और भगिनी की अभिरुचि के विरुद्ध शिशुपाल को अपना समर्थन देने की तत्परता दिखलाता है। रुक्मिणी सारी स्थिति पर गंभीरता से विचार कर चुपके से श्रीकृष्ण के साथ निकल भागती है। जरासंध आदि के सहयोग से शिशुपाल यदि युद्ध के मैदान में श्रीकृष्ण के विरुद्ध खड़ा हो जाता तो संभव है कि एक-दूसरे महाभारत की सृष्टि सम्भव हो जाती। अथच पिता भीम और पुत्र रुक्म दोनों के दो पक्षों के समर्थक होने के नाते एक अलग गृह-युद्ध की भूमिका प्रस्तुत हो जाती है। परन्तु ऐसी विकट स्थिति को अपनी बुद्धि के बल से टालकर रुक्मिणी ने जिस दूरदर्शिता का परिचय दिया है, उससे वह सामान्य नायिकाओं की पंक्ति से स्वयं को अलग कर लेती है। युद्ध होता है और खूब जमकर होता है, तथापि यह युद्ध श्रीकृष्ण के नेतृत्व में नहीं, बल्कि इनके अग्रज बलराम और शिशुपाल आदि के बीच होता है। यह युद्ध होता भी है तो इसलिए कि रुक्मिणी और श्रीकृष्ण इस बीच आसानी से द्वारका पहुंच सकें। इस प्रकार रुक्मिणी एक प्रबुद्ध नायिका है जिसमें स्वयं निर्णय करने की शक्ति है। वह कठिन परिस्थिति से भी निकल जाने की क्षमता रखती है। चतुर्थ अंक के आरम्भ में अपने दूत वृद्धश्रवा के हाथ जिस पत्र को भेजकर रुक्मिणी श्रीकृष्ण को आमन्त्रण देती है, वह मात्र प्रेम-पत्र नहीं है, बल्कि श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए उत्साहित और प्रेरित करने का बीजमंत्र है। रुक्मिणी नरहरि श्रीकृष्ण के सम्मुख चैद्य-शिशुपाल को गोमायु से अधिक नहीं समझती है।[२०२] उसके पत्र से ही प्रेरणा प्राप्त कर श्रीकृष्ण चैद्य और जरासंध को नष्ट कर डालने की प्रतिज्ञा करते हैं।[२०३]

---

२०२. शिवकवि, **विवेकचन्द्रोदय,**

आशास्यमेव तव दास्यमुपास्यमूर्त्ते-
र्देव्यम्बिका फलतु मे फलमद्वितीयम्।
प्राणप्रभोरलसतोऽद्य हरन्तु मत्ता
गोमायवो नरहरे ! न हरेर्विभागम् ।। ४/१४

२०३. शिवकवि, **विवेकचन्द्रोदय,**

गत्वाद्यैव विमर्द्य चैद्यमशकं हत्वा जरासंधकं
कृत्वांगेषु विलक्षणं च बहुधा तद्भ्रातरं रुक्मिणम्।
जित्वाऽन्यानपि भीमभूमिरमणं सम्भाव्य सत्कारतः
सम्भूयास्य सुहृदगणैः प्रियतमां तां रुक्मिणीमानये ।। ४/१६

यदि विवेकचन्द्रोदय को प्रतीकात्मक नाटिका माना जाए तो इसकी नायिका में प्रियदर्शिका, रत्नावली आदि नाटिकाओं की प्रमुख नायिकाओं के साम्य या वैषम्य ढूंढने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती; क्योंकि इसके कथानक का विकास ही एक विलक्षण प्रकार से हुआ है। इसमें न ज्येष्ठा महारानी का उल्लेख है ओर न ही उसके मान, ईर्ष्या या भय का आतंक नायक अथवा नायिका को होता है। ऐन्द्रजालिक के द्वारा आकाश से विमान के अवरोहण, मन्त्री उद्धव के द्वारा अपने विचित्र स्वप्न के वर्णन (जिसमें प्रतीक रूप में अधर्म पर धर्म की विजय दिखलाना आदि बातें विस्मय उत्पन्न करने वाली हैं) में मूल कथानक खो सा गया है। नायक श्रीकृष्ण और नायिका रुक्मिणी से सम्बद्ध कथांश प्रथम और अन्तिम अंक में वर्णित है।

———

नायिकेतर नारीपात्र

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में कुछ भी घटित होता है उसका बिम्ब प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से साहित्य में अवश्य प्रतिफलित होता है। साहित्यकार की दृष्टि उन बिम्बों को रचनाफलक पर अपनी ही रुचि के अनुसार ग्रहण करती है। नाटिका जो रूपक साहित्य का एक अंग हैं, का परिवेश राजभवन का अन्तःपुर होकर भी समाज के सामान्य जीवन से कटकर सर्वथा किसी अपरिचित लोक से जुड़ा नहीं रह सकता है। नाटिका के मुख्य नारी पात्रों का विवेचन किया जा चुका है। प्रस्तुत खण्ड में नायिकेतर नारी पात्रों का विश्लेषण अभीष्ट है। नाटिका के नायिकेतर नारीपात्रों की एक यह विशेषता परिलक्षित होती है कि वे अपने स्वामी या स्वामिनी की छाया मात्र बनकर नहीं रहतीं अपितु उनका अपना भी व्यक्तित्व है। नाटिका के नारीपात्र सामान्यतः तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम वर्ग में उन नारी-पात्रों को लिया जा सकता है जिनका राजकुल से सीधा सम्बन्ध है। इस श्रेणी की—ज्येष्ठा और कनिष्ठा—दोनों प्रकार की नायिकाओं के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। दूसरे वर्ग में वे नारी-पात्र हैं जो वयस्क और अनुभवी हैं। ये अन्तःपुर में महारानी की अन्तरंग बनकर उनके सुख या दुख में उचित परामर्श दिया करती हैं। इस वर्ग में मालविकाग्निमित्र नाटक की कौशिकी नाम की परिव्राजिका, प्रियदर्शिका नाटक की सांकृत्यायनी, पारिजातमंजरी की वसन्तलीला और वृषभानुजा की वृन्दा को लिया जा सकता है। इस वर्ग की वसन्तलीला कनिष्ठा नायिका की धात्री बनकर उचित भूमिका निभाती है और वृन्दा नायक और नायिका के परस्पर विवाह के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करती है। तृतीय वर्ग में वे सभी नारियां आती हैं जो अन्तःपुर में महारानी अथवा कनिष्ठा नायिका की सेविका बनकर जीवन बिताती हैं। दासीवृत्ति की होने पर भी कथानक के विकास में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम द्वितीय वर्ग के नारी-पात्रों का विवेचन किया जायेगा। मालविकाग्निमित्र के इतिवृत्त की प्रकृति चूँकि नाटिका के इतिवृत्त के समकक्ष है, अतः इस वर्ग के नारी-पात्रों में उक्त नाटिका की परिव्राजिका कौशिकी को भी परि-

गणित कर लिया गया है। यह परिव्राजिका भी एक उच्च राजन्य कुल की ही कन्या है। मालविकाग्निमित्र के पंचम अंक में वह राजा अग्निमित्र को स्वयं अपना परिचय देती हुई कहती है कि वह वैदर्भनरेश माधवसेन के मंत्री सुमति की विधवा भगिनी है। वह एक तो वैधव्य दुःख से पहले से सन्तप्त थी ही, दूसरे राजा माधवसेन के बन्दी बना लिए जाने पर उसके मंत्री और अपने अग्रज सुमति और मालविका के साथ आते समय विदिशा मार्ग में आक्रमणकारी डाकुओं के हाथों मालविका की रक्षा करते हुए उसके भ्राता सुमति वीरगति को प्राप्त हो गये। अतः विदिशा-नरेश अग्निमित्र के राज्य में प्रवेश करने के पश्चात् उसने एक परिव्राजिका[1] का वेश धारण कर लिया है। इस प्रकार परिव्रजिका बनी कौशिकी सांसारिक अनुभव प्राप्त एक प्रबुद्ध महिला है और वह तब तक अपने अथवा मालविका के परिचय को रहस्य ही बना कर रखती है, जब तक कि उपयुक्त अवसर नही आ जाता। जहां तक इसके व्यक्तिगत गुणों का प्रश्न है, वह संगीत, नृत्य और शृंगार प्रसाधन की कलाओं में निपुण है।[2] आचार्य गणदास और हरदत्त दोनों के कला-विषयक ज्ञान की श्रेष्ठता के निर्णय के लिए महाराज अग्निमित्र कौशिकी को ही निर्णायक बनाते हैं। कौशिकी के लिए पंडित[3] विशेषण का प्रयोग राजा और विदूषक दोनों ही करते हैं। वह बड़े धैर्य और आशा से अपने स्वर्गीय अग्रज के अवशिष्ट कार्य को पूरा करती है। मालविका के सम्बन्ध में कहे गये दैवज्ञ के कथन पर विश्वास कर तटस्थ भाव से वह महारानी धारिणी के अन्तःपुर में निवास

---

१. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-५, पृ.-३५०

परिव्राजिका—ततो भ्रातुःशरीरमग्निसात्कृत्वा पुनर्नवी
कृतवैधव्यदुःखया मया त्वदीयं देशमवतीर्य
इमे काषाये गृहीते।

२. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-५ पृ.-३४१

विदूषकः—अद्य किल देव्यैवं पण्डितकौशिकी भणिता-भगवति !
यत्त्वं प्रसाधनगर्वं वहसि तद्दर्शय मालविकायाः शरीरे विवाह-
नेपथ्यमिति। तथा सविशेषालंकृता मालविका।

३. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-१ पृ.-२७२

राजा—मौद्गल्य, अमुं प्रस्तावं निवेद्य पण्डितकौशिक्या सार्धमाहूयतां
देवी।

कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-५ पृ.-३४१

विदूषक—अद्य किल देव्यैवं पण्डितकौशिकी भणिता—भगवति।

करती है और समय आने पर ही अपना या मालविका का परिचय किसी को देती है।[४] इस प्रकार कौशिकी का व्यक्तित्व मालतीमाधव की बौद्ध-संन्यासिनी कामन्दकी तथा प्रियदर्शिका की सांकृत्यायनी, दोनों से ही उच्च है। कामन्दकी के सम्बन्ध में देखा जा चुका है कि किस प्रकार वह प्रेमी और प्रेमिका दोनों के प्रणय और परिणय के अनुकूल वातावरण की सृष्टि करने में अपनी विशेष अभिरुचि दिखलाती है।[५] वह किसी कुमारी को उसके पिता के विरुद्ध उभाड़ सकती है, तथा स्वयं अपनी शिष्या को भी प्रेम का पाठ पढ़ा सकती है। किन्तु वस्तुतः इस प्रकार के असामान्य विषयों में परिव्राजिका कौशिकी की अपनी दृष्टि है। वह सभी प्रकार से मर्यादा की रक्षा करने वाली नारी है और कालिदास की लेखनी की एक विशेष सृष्टि है। अपने स्वर्गीय भ्राता के आश्रयदाता राजा की युवती कन्या की तटस्थ अंगरक्षिका बनकर यह परिव्राजिका एक बार पुनः राजकीय अन्तःपुर में पूर्ण सांसारिक परिवेश में रहना स्वीकार कर लेती है, जिसका एकमात्र उद्देश्य है दैवज्ञ के कथनानुसार मालविका के जीवन को सुव्यवस्थित करने में सहायक होना। मालविका को धारिणी के आश्रय में पहुंचकर सेवा-कार्य में नियुक्त होते देख वह दैवज्ञ की भविष्यवाणी के प्रति पूर्ण विश्वास करके एक वर्ष की अवधि की पूर्णता की प्रतीक्षा करती है।

परिव्राजिका कौशिकी के पश्चात् श्रीहर्ष की प्रियदर्शिका नाटिका की सांकृत्यायनी की व्यक्तिगत विशेषताओं का विवेचन किया जायेगा। सांकृत्यायनी कौशिकी की तरह किसी राजकुल से सम्बद्ध नहीं है। मुख्यतः वह एक बौद्ध संन्यासिनी है। सांकृत्यायनी का परिचय सर्वप्रथम दासी मनोरमा के मुख से, तीसरे अंक के आरम्भ में मिलता है।[६] वत्स-नरेश उदयन और वासवदत्ता के विवाह के पूर्व वाले वृत्तांत को अभिनीत करने के प्रयास से सांकृत्यायनी के काव्य-रचना-विषयक ज्ञान का पता चलता है। उसके इसी गुण के कारण महारानी वासवदत्ता उसे सम्मान की दृष्टि से देखती है। इसके द्वारा लिखित रचना इतनी कवित्वमयी है कि वासवदत्ता सांकृत्यायनी से कहती है—'भगवती, आपका कवित्व धन्य है। स्वयं अपने जीवन की अनुभूत घटना

---

४. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-५, पृ.-३५१

इयं पितरि जीवति केनापि देवयात्रागतेन सिद्धादेशकेन साधुना
मत्समक्षं समादिष्टा आसंवत्सरमात्रमियं प्रेष्यभावमनुभूय ततः
सदृशभर्तृगामिनी भविष्यतीति।

५. संस्कृत-नाटिका-विमर्श पृ.-१३२

६. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ.-४१

मनोरमा—सांकृत्यायन्यार्यपुत्रस्य मम च वृत्तान्तो नाटिकोपनिबद्धः।

भी अदृष्टपूर्व प्रतीत हो रही है अतएव अत्यन्त रोचक लग रही है।'[७] सांकृत्यायनी धर्मशास्त्र पर भी अधिकार रखती है। अभिनय काल में वासवदत्ता जब क्रुद्ध होकर वहां से भागने लगती है तो वह उसे कहती है कि गान्धर्व-विवाह धर्मशास्त्र सम्मत है, इसमें लज्जा की बात ही क्या है?[८] किन्तु जैसे ही इस रहस्य का भंडा फूटता है कि मनोरमा के बदले उदयन स्वयं अपनी भूमिका कर रहे हैं, तो सांकृत्यायनी अपना क्रोध व्यक्त करती हुई वहां अब एक क्षण के लिए भी रुकना नहीं चाहती।[९] उदयन के प्रति उसकी इस प्रतिक्रिया से उसके प्रखर स्वभाव का परिचय मिलता है। उसे लगता है कि उदयन की इस धूर्तता के पीछे महारानी को शंका हो कि इसमें सम्भवतः मेरा हाथ है।

चतुर्थ अंक में अपनी माता की ओर से भेजे गए पत्र को पढ़कर महारानी वासवदत्ता अपने मौसा दृढवर्मा के संकट के प्रति उदयन के उपेक्षात्मक भाव के कारण दुःखी होकर जब अपना आक्रोश व्यक्त करती है, तो सांकृत्यायनी प्रयास करती है कि गृह-कलह जड़ न पकड़ने पाये। वह झट वासवदत्ता से कहती है कि तुम्हारे प्रति उदयन के स्नेह में कोई अन्तर नहीं आया है;[१०] और जब उदयन के द्वारा की गई दृढवर्मा की सहायता का ज्ञान वासवदत्ता को हो जाता है तो सांकृत्यायनी व्यंग्य करती

---

७. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३ पृ.-५१

वासवदत्ता—भगवति, अहो ते कवित्वम्, येनैतद्गूढवृत्तांतं नाटकोपनिवद्धं सानुभवमप्यस्माकमार्यपुत्र—चरितमदृष्टपूर्वमिब दृश्यमानमधिकतरं कौतूहलं वर्धयति।

८. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं.३, पृ.-७१

सांकृत्यायनी—राजपुत्रि, धर्मशास्त्रविहित एष गान्धर्वो विवाहः किमत्र लज्जास्थानम्।

९. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ.-७४

सांकृत्यायनी—कथमन्यदेवेदं प्रेक्षणीयकं संवृत्तम्! अभूमिरियमस्मद्विधानाम्।

१०. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-४ पृ.-८४

सांकृत्यायनी—अलं राजपुत्रि रुदितेन। नेदृशो वत्सराजः।

हुई कहती है कि मैं तो उदयन की पक्षपातिनी हूं न।[११] आशय यह है कि सांकृत्यायनी एक तटस्थ महिला होकर भी उस राज-परिवार की एक अनुभवी वयस्क सदस्या जैसी बनकर रहने की क्षमता से सम्पन्न है।

सांकृत्यायनी की काव्यरचना की क्षमता से इसका संकेत मिलता है कि अन्तः-पुर में मनोरंजन के लिए छोटी-मोटी रचनाएँ हुआ करती थीं। कभी-कभी ऐसी रचनाएँ भी होती थीं जिनका अभिनय एक बार में सम्भव नहीं था।[१२]

पारिजातमंजरी नाटिका की वसन्तलीला तीसरी उल्लेख्य नारी है, जो धारा-नरेश अर्जुनदेव वर्मन् के वृद्ध कंचुकी कुसुमाकर की पत्नी है। सूत्रधार ने वसन्तलीला के लिए योगक्षेमकारिणी विशेषण का प्रयोग किया है।[१३] यह एक महत्वाकांक्षिणी पर वात्सल्यमयी महिला है। वसन्तलीला पारिजातमंजरी नायिका की संरक्षिका ही नहीं है, बल्कि ममतामयी माता की तरह उसका पोषण भी करती है तथा एक सम-वयस्क सखी की तरह उसके होने वाले पति अर्जुनदेव वर्मन् को इसके प्रति आकर्षित करने का साधन भी जुटाती है। सहकार वृक्ष और माधवीलता के विवाहोत्सव में उप-स्थित रानी के समक्ष ही ताटंकवाली घटना का आयोजन कर महाराज को नायिका पारिजातमंजरी के प्रति कलात्मकता से उन्मुख करती है। पारिजातमंजरी के पीछे-पीछे वह छाया की भांति डोलती फिरती है। दूसरे अंक के अन्त में जब नायिका पारि-जातमंजरी आत्महत्या का विचार करती है, तो वह उसे जानकर सब प्रकार से उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर दीखती है।[१४] परिव्राजिका कौशिकी या सांकृत्यायनी के व्यक्तित्व से यद्यपि वसन्तलीला के व्यक्तित्व का कोई साम्य नहीं है, फिर भी यह

---

११. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-४, पृ.-९२

सांकृत्यायनी—वत्सराजपक्षपातिनी खल्वहं न किंचिदपि ब्रवीमि।

१२. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ.-५१

मनोरमा—अतिकोपने, उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ !
नर्तितव्यमस्माभिस्तस्यैव नाटकस्य नर्तितशेषम्।

१३. मदन, **पारिजातमञ्जरी**, अं-१, पृ.-४

······सा कुसुमश्रीकंजुकिन······स्वगृहिणीं
योगक्षेमकारिणीं दत्वा स्थापिता।

१४. मदन, **पारिजातमञ्जरी**, अं-२, पृ.-२७

वसन्तलीला—नूनमेतया किमप्यमंगलमध्यवसितम्।
तत्सर्वथा धारयिष्यामि।

वृद्धा इस अपूर्ण नाटिका में उक्त दोनों महिलाओं से कम महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाती ।

मथुरादासविरचित 'वृषभानुजा' नाटिका में वृन्दा नाम की एक वृद्धा महिला की अवतारणा की गई है, जो नायक श्रीकृष्ण और नायिका राधा दोनों के परिणय की पृष्ठभूमि तैयार करती है । नाटिका के आरम्भ में ही सूत्रधार नटी से कहता है कि मधुरप्रिय नाम का मेरा शिष्य वृन्दा का तथा रंगमंगल नाम का मेरा मित्र वनरक्षिका का वेष बनाकर प्रस्तुत है, अतः हम दोनों भी रंग-प्रवेश के लिए प्रस्तुत हो जायँ ।[१५] वृन्दा एक अनुभवी और वयस्क महिला है और गोकुल ग्राम का प्रत्येक व्यक्ति उसे सम्मान की दृष्टि से देखता है ।[१६] वह संस्कृत में ही वार्तालाप करती है । सामाजिक कार्यों में उसकी विशेष अभिरुचि दीख पड़ती है । उसकी इसी प्रवृति के कारण वृषभानु अपने महल में उसका आगमन सुनते ही पुत्री राधा के साथ उसके स्वागत में उपस्थित हो जाते हैं और राधा को उसे प्रणाम करने को कहते हैं । वृन्दा जब नन्द के घर जाती है, तब नन्द भी उसे पूर्ण सम्मान देते हैं ।[१७] वृन्दा की भूमिका इस नाटिका में उतनी ही अवधि की है, जितनी में राधा और कृष्ण एक दूसरे के अतिनिकट आ जाते हैं । दोनों के अभिभावकों की अभिरुचि एवं नायक और नायिका का परस्पर आकर्षण जब वह देख लेती है तो इस सम्बन्ध में स्वयं पूर्ण आश्वस्त हो जाती है ।

नाटिकाओं में वर्णित महिलाओं के तीसरे वर्ग में उन सभी पात्रों का आकलन

---

१५. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-१, पृ.-४

सूत्रधारः— ...नन्वेष विरचितवृन्दावेषः समागत एवं ममान्तेवासी
मधुरप्रियो गृहीततत्सहचरी-वनरक्षिका भूमिकश्च
सखा मे रंगमंगलः । तदावामपि गत्वा रंगप्रवेशाय
संनद्धीभवावः ।

१६. मथुरादास, **वृषभानुजा**,

अत्रान्तरे स वृषभानुरुपाजगाम
श्रुत्वा ममागमनमाशु तयानुयातः ।
वत्से, समानय करौ सबहुप्रणामं
तामित्यभाषत ततश्च मया स उक्तः ॥ १/६

१७. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-१, पृ.-६

वृन्दा—ततश्च समुचितातिथिसत्कारसम्भारैरुप-
कल्पितोपचारां माम्............... ।

किया गया है जो नायिकाओं की या तो सहचारियां हैं या फिर सेवा कार्य में नियुक्त परिजन हैं। अन्तःपुर में महारानी या महाराज की सभी प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति करना ही इस वर्ग की स्त्रियों का कर्त्तव्य है। इनके अपने विवेक या विवेचना के महत्त्व का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। राजाओं के विलासमय जीवन का जैसा चित्रण नाटिका-जगत् में मिलता है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि युवती कन्याओं को अपनी बासना पूर्ति का साधन बनाने के लिए राजकीय प्रासादों में नयी-नयी योजनायें बनायी जाती हैं। किसी राजकन्या की उपलब्धि को चक्रवर्त्तित्व की प्राप्ति से जोड़ने की कवियों की कल्पना मर्यादा-मात्र के बलात् पालन के लिए है। अन्तःपुर का कण-कण इससे अवगत है कि महाराज की दृष्टि जब किसी सुन्दरी युवती कन्या पर पड़ गई तो फिर उसका बच निकलना असंभव हो जाता है। इन्हीं दासियों में से कोई ऐसी निकल आती है जो महाराज को इस कार्य में सहायता पहुंचाती है, प्रियदर्शिका नाटिका की मनोरमा नायिका आरण्यका से कहती है कि जब महाराज उदयन की दृष्टि तुम पर पड़ गई है तो तुम निश्चिन्त रहो, वे तुमसे मिलने के लिए स्वयं कोई योजना बनायेंगे।[१८] विदूषक जो उदयन का अन्तरंग है, वह भी उसके कामुक स्वभाव तथा राज्य-कार्य के प्रति उसकी उपेक्षा को लेकर ताना कसता है।[१९] इस प्रकार महाराज या महारानी की इच्छा के अनुसार दासों और दासियों को इशारों पर नाचने वाली कठपुतली की तरह आचरण करना पड़ता है। हम देखते हैं कि जो विदूषक उदयन की उक्त प्रकार से कटु आलोचना करता है, वही फिर आरण्यका के पीछे दीवाना बने उदयन के आदेश पर अन्तःपुर का कोना-कोना छानता फिरता है कि कहां वह आरण्यका को देखे और उदयन तक इसकी सूचना पहुंचावे।[२०] आशय यह है कि

---

१८. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका, अं-३ पृ.-४४

मनोरमा—यदि दृष्टा महाराजेन त्वं तदलं सन्तापितेन।
स एवेदानीं दर्शनोपायपर्याकुलो भविष्यति।

१९. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका, अं-३, पृ..४७

विदूषकः—अतिमहान् खलु प्रियवयस्यस्यारण्यकाया उपर्यनुरागः येन परित्यक्तराजकार्यस्तस्या एव दर्शनोपायं चिन्तयन्नात्मानं विनोदयति।

२०. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका, अं-३, पृ.-४८

विदूषकः—यदा तावन्मया गुरुमदनसंतापनिस्सहस्य प्रियवयस्यस्या—
-स्वस्थवचेनन देव्योर्वासवदत्तापद्मावत्योरन्यासां च देवीनां
भवनान्यन्विष्यता न सा दृष्टा ....।

अन्तःपुर वासना और विलास का एक ऐसा केन्द्र है, जहां युवती कन्यका को अपने स्वामी के लिए सुलभ बनाना राजसेवा का एक प्रमुख अंग समझा जाता है।

इस प्रसंग में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि एक ओर जहां महाराज की इच्छा की पूर्ति का प्रबन्ध इन्हीं दास-दासियों पर निर्भर रहता है, वहीं दूसरी ओर इन्हें महारानी की कोपभरी दृष्टि से भी बचकर रहना पड़ता है। महाराज के नित नये प्रेम व्यवहार को देखकर महारानी का उन पर कुपित या असन्तुष्ट होकर मान करना या कोप-भवन का आश्रय लेना पति-पत्नी के बीच की बात हो सकती है, किन्तु दास दासी के लिए तो विकट स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि वे किस प्रकार एक के विरुद्ध दूसरे को सहायता पहुंचाकर भी अपनी आजीविका को अक्षुण्ण बनाए रखें।

उपरि विवेचित नाटिकाओं में महारानी के कोप का भाजन दासी को ही नहीं, बल्कि महाराज के मुंह लगे विदूषक को भी बनना पड़ता है। विश्वनाथ रचित चन्द्रकला नाटिका के तृतीय अंक में दासी सुनन्दना और विदूषक को महारानी एक ही साथ बंधवाती है।[२१] ऐसी परिस्थिति में, अन्तःपुर में, राज-परिवार का सेवक या सेविका बनकर रहना तलवार की धार पर चलने से कम दुष्कर प्रतीत नहीं होता। प्रियदर्शिका नाटिका की दासी मनोरमा की ही योजना है कि अभिनयकाल में स्वयं उदयन चुपके से परिधान बदलकर अपनी भूमिका करेंगे।[२२] इधर विदूषक की गलती से वासवदत्ता के द्वारा उदयन रंगे हाथों पकड़ लिए जाते हैं, तब मनोरमा स्वयं तो साफ-साफ बच निकलती है, पर बेचारे विदूषक को महारानी की कोपाग्नि में झोंक

---

२१. विश्वनाथ, चन्द्रकला, अं.३, पृ.-६३

देवी—सखि रतिकले, चेटि माधविके, एष खलु दुष्टब्राह्मणः
इयं गर्भदासी सुनन्दना द्वे अपि एकेनैव लतापाशेनैकी-
कृत्य बद्ध्वा गृह्णीताम्।

इयं च दुष्टकन्यका आत्मन एवोत्तरीयेण हस्ते सुदृढमा-
पीड्य आनीयताम्॥

२२. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका, अं-३, पृ.-५०

मनोरमा—वसन्तक एवमिव! (कर्णे कथयति)

विदूषकः—साधु प्रियसखि, साधु। यावदेव युवां नेपथ्यग्रहणं कुरुथः
तावदेवाहमपि वयस्यं गृहीत्वागच्छामि।

देती है।[२३] मनोरमा को नायिका आरण्यका उदयन के प्रति अपने अनुराग की बात तभी बताती है, जब उसे विश्वास हो जाता है कि इस संबंध में मेरे स्वगत भाषण को इसने सुन लिया है।[२४] इसी प्रकार विश्वनाथ रचित चन्द्रकला नाटिका की नायिका को महामंत्री अपनी सम्बन्धिनी बतलाकर अन्तःपुर में रखता है तथा सुनन्दना नाम की दासी को सारा रहस्य बतलाता ही नहीं है, अपितु यह भार भी सौंपता है कि किस प्रकार महाराज की दृष्टि चन्द्रकला पर पड़े और वे उस पर आसक्त हो जायँ। जब सुनन्दना महामन्त्री के आदेश का पालन करने में सफल हो जाती है और महारानी को इसका पता चल जाता है तो वह नायिका को अन्तःपुर में ही छिपा डालती है। इसके लिए उसे जो स्थान सबसे अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है वह है सुनन्दना का आवास।[२५] आशय यह है कि दासी सुनन्दना एक ओर महारानी की विश्वस्त दासी बनी हुई है और दूसरी ओर महारानी के आदेश से या पुरस्कार के लोभ से नायिका के रूपजाल में महाराज को फँसाने के लिए भी तिकड़म भिड़ाती है। इसी तरह अन्य दासियां भी एक दूसरी की चुगली खाकर महारानी से पुरस्कार पाने के सुअवसर की ताक में लगी रहती हैं। 'प्रियदर्शिका' की माधविका सुनन्दना की चुगली खाकर महारानी से पुरस्कार पाने को उत्सुक दीखती है।[२६]

---

२३. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ.-७२

मनोरमा—भट्टिनि, न खल्वहमत्रापराध्यामि।
एतेन खलु हताशेन वलादलंकरणानि गृहीत्वा
द्वारस्थितेनेह निरुद्धा। न पुनर्ममाक्रन्दन्त्याः
शब्दो मूर्खनिर्घोषान्तरितः केनापि श्रुतः॥

२४. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ.-४४

आरण्यका—हा धिक् हा धिक् सर्वं श्रुतमेतया।
तदत्र युक्तमेव प्रकाशयितुम्।

२५. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-३, पृ.-४५

विदूषकः—तयैवेदानीं चन्द्रकला अविदितदोषा सुनन्दनाया गृहे
गोपितेति कथितं मे सुनन्दनया।

२६. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-३, पृ.-४७

माधविका—(स्वगतम्) तया पुनर्गर्भदास्या सुनन्दनया कथमेवं
दुष्करमाचक्ष्यते।
तद् देव्यै निवेद्य प्रसादं लप्स्ये।

विद्धशालभंजिका में विचक्षणा एक दासी का जीवन बिताती हुई भी अपने गम्भीर व्यक्तित्व के कारण महामन्त्री भागुरायण का विश्वासपात्र बन जाती है एवं दुष्कर और गोपनीय कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसे प्रतिनियोजित किया जाता है।[२७] इसी नाटिका में दासियों को महाराज के लम्पट स्वभाव की आलोचना करते भी देखा जाता है।[२८] महारानी जब विनोदार्थ महाराज का कपट-विवाह रचाती है तो उसमें दासियां भी निर्भय होकर सम्मिलित होती हैं। दासी विचक्षणा इस परिहास में सोत्साह भाग लेती दीखती है, क्योंकि यह कार्य महामन्त्री और उसके मन के अनुकूल ही हो रहा है। वह अच्छी तरह जानती है कि मृगांकावली यथार्थ में बालिका है, बालक नहीं। शतरंज की यह आखिरी गोटी है जिससे महारानी स्वयं मात होने जा रही हैं। कर्णसुन्दरी नाटिका में महाराज को बेवकूफ बनाने के लिए नायिका का असली वेष बनाकर जाती हुई महारानी के इस कार्य में दासी बकुलावली निःशंक होकर हाथ बंटाती है।[२६] दास या दासी का कार्य है सेवा करना, न कि महाराज और महारानी द्वारा एक दूसरे को मूर्ख बनाने या उपहास का पात्र बनाने में किसी एक का साथ देना।

इन घटनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजाओं अथवा महारानियों की स्थिति कम से कम अन्तःपुर के भीतर मर्यादा का उल्लंघन करती प्रतीत होती है। रत्नावली नाटिका में महाराज उदयन दासी सुसंगता का हाथ पकड़कर

---

२७. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३, पृ.-५८

विचक्षणा—तस्मात् शृणु ! अहमेकदा भगवता भागुरायणेन सबहुमानं भणिता, विचक्षणे ! अस्माकं राज-रहस्ये त्वया साहाय्यं कर्त्तव्यम् इति।

२८. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-४, पृ.-१०६

अन्या—अयि सुलक्षणे ! किमिव लक्षणं मन्त्र्यते। यतः सहस्राणां पाणि ग्राहितस्य क एव कौतूहल हल हलकः ?

अपरा—प्रियवयस्ये ! विचक्षणासि, किन्तु खल्वनभिज्ञासि कन्दर्पचरितानाम् ? यदिदानीं नवं नवं कौतूहलं कामिजने।

२६. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-३, पृ.-३७

बकुलावली—···देव्या सर्वमपि श्रुत्वाहं भणिता। अद्य मया कर्णसुन्दरीरूपेण त्वया तस्याःसखीरूपेण गत्वार्यपुत्रो वंचयितव्यः।

नये प्रेम-व्यापार की सूचना महारानी को न देने के लिए मिन्नतें करते हैं।[30] सच तो यह है कि राजाओं की वासना और विलासिता विकृत रूप को प्राप्त कर चुकी है, जो उनके नैतिक पतन का संकेत देती हैं। पारिजातमंजरी में भी दासी कनकलेखा के सामने विक्रमी महाराज अर्जुनवर्मदेव को गिड़गिड़ाते हुए देखा जाता है। महाराज स्वयं इस दासी से कहते हैं कि आज सारा दिन तुम्हारी राह देखते हुए मैंने बिता दिया है। देवी को प्रसन्न करने में तुम्हारे सिवा कौन मेरी सहायता कर सकेगा।[31] उधर उसी कनकलेखा को जो महारानी का उपालम्भ महाराज को सुनाने और महारानी के साथ ही रात बिताने का उनसे आग्रह करने के लिए आई हुई है, महाराज भी महारानी का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए नियुक्त करना चाहते हैं।[32] दो परस्पर विरोधी कार्यों का भार अपने ऊपर आया देख कर कनकलेखा कहती है कि इधर महाराज ने मुझे देवी को भ्रम में रखने का कार्यभार सौंपा है, उधर उन्हीं को देवी के आदेश पर मैं अनुकूल करने चली हूं। स्वामी और स्वामिनी दोनों के विरोधी आदेश का पालन करना इस समय सचमुच कितना दुष्कर हो रहा है।[33]

मलयजाकल्याणम् नाटिका में महारानी की विश्वस्त दासी वल्लरिका नायिका मलयजा की प्रियसखी के हाथ से, गुप्तमिलन के लिए, नायक के नाम प्रेषित पत्र को

---

३०. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-२, पृ.-६५

राजा—(सुसंगतां हस्ते गृहीत्वा) सुसंगते! क्रीडामात्रमेवैतत्।
अकारणे त्वया देवी न खेदयितव्या।
इदं ते पारितोषिकम्।

३१. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-२, पृ.-२४

राजा—भद्रे! अद्य खल्वकारणकुपिताऽपि देवी प्रसादनीयेति
त्वामेव प्रतिपालयतामस्माकमत्र दिनमतिक्रान्तम्।
त्वत्सहायकसापेक्षं ह्येतत्कार्यम्।

३२. मदन, **पारिजातमंजरी**, अं-२, पृ.-२४.

राजा—(स्मित्वा) कनकलेखे! उभयमप्येतत्कार्यं त्वयि
एव आयतते। तत्किं प्रष्टव्यं भवत्या?

३३. मदन. **पारिजातमंजरी**, अं-२, पृ.-२४

कनकलेखा—स्वामिनियोगस्यावश्यं करणीयता।
येनैव देवीं वंचयितुम् अभ्यर्थिता तमेव महाराजं
देव्या नियोगेनोल्लुण्ठिष्यामि।

छल से लेकर महारानी को देने और पुरस्कार पाने को सोचती है।[३४] पुनः यही दासी महारानी के साथ नायिका की सखी मंजरिका बनकर महाराज को ठगने चलती है। आशय यह है कि ये दासियां महाराज की ओर से महारानी को या महारानी की ओर से महाराज को उलटा सीधा समझाने या एक के विरुद्ध दूसरे को उभाड़ने में किसी प्रकार का संकोच अनुभव नहीं करती हैं। अन्तःपुर की दुःस्थिति का आकलन ऐसे प्रसंगों के उल्लेख से स्वयं स्पष्ट हो जाता है।

नाटिका के नायक को स्वभाव से धीरललित और अभिरुचि की दृष्टि से कलाप्रिय होना अपेक्षित है और तदनुसार इन कवियों ने कलात्मक परिवेश के बीच ही नाटिकाओं के कथानक को विस्तार देने का प्रयास किया है। उद्यान, उपवन, उत्फुल्ल सरसिज श्रेणी से मनोरम जलाशय, नायिका के द्वारा वसन्तोत्सव, मदनपूजा, दोहद क्रिया की सम्पन्नता, नृत्य संगीत आदि का समावेश आदि, अपने रूप-लावण्य से स्वर्ग-सुन्दरियों को भी लजा देने वाली ललनाओं से भरा-पूरा अन्तःपुर, वैभव और विलास की सुनहरी धूप में अंगड़ाइयां लेता हुआ यौवन—ये सभी जिस मधुमय आनन्द-लोक की सृष्टि करते प्रतीत होते हैं, उसमें पलने वाली दासियां निम्न वर्ग की होकर भी अपने में कुछ असाधारण विशेषताओं से अवश्य सम्पन्न रहा करती होंगी। सेवाकार्य में नियुक्त इन सेविकाओं का मधुरभाषिणी होने, चाटुकारिता या वक्रोक्ति में निपुण होने के अतिरिक्त ललित कलाओं में भी अभिरुचि दिखलाना अपेक्षित रहा होगा। अतः नाटिकाओं के रचयिताओं ने बराबर यह ध्यान में रखा है कि अवसर आने पर ये दासियां अपना सहयोग इस दिशा में भी दें और नाटिका के वातावरण को शृंगारिक आकर्षण से भरपूर बनाए रखें। इसमें संशय नहीं कि अन्तःपुर के ये परिजन ललितकलाओं में प्रवीण हैं।

मालविकाग्निमित्रम् की नायिका मालविका के एक पैर में महावर लगाकर दासी बकुलावलिका उससे पूछती है कि कहो यह महावर लगाने की कला तुमको पसंद है? मालविका इस कला में उसकी अत्यधिक निपुणता देखकर पूछती है कि इस कला में ऐसा चमत्कार तुमने सीखा है किससे? इस पर बकुलावलिका कहती है कि मैंने यह कला स्वयं महाराज अग्निमित्र से ही सीखी है। मैं इस कला में उन्हीं

---

३४. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-३, पृ.-२३

वल्लरिका—(स्वगतम्) एतद्देव्यै निवेद्य पारितोषिकं गृहीष्यामि।
(प्रकाशम्) तत् विसर्जय माम्।

की शिष्या हूं ।[३५] इससे स्पष्ट है कि अन्तःपुर की दासियों को कलाविशेष में निपुण बनाकर रखने की ओर महाराज तथा महारानी का विशेष ध्यान रहता है। कलात्मज निपुणता दिखलाने में थोड़ी सी असावधानी हो जाने पर, प्रियदर्शिका नाटिका की वासवदत्ता के नायिका आरण्यका पर क्रोधित होने की संभावना से ही भयभीत होती हुई दासी मनोरमा तीसरे अंक के आरम्भ में देखी जा सकती है।[३६] मनोरमा को महाराज उदयन की भूमिका मिलती है और उससे आशा की जाती है कि पूर्ण क्षमता के साथ वह अभिनय कर सकेगी। अन्तःपुर के भीतर इन असूर्यम्पश्याओं के मनोरंजन के लिए इन दासियों का विभिन्न ललित कलाओं में पारंगत होना आवश्यक है। मनोरमा आरण्यका से कहती है कि उसी नाटक के बचे हुए अंश का अभिनय हम लोगों को आज करना है।[३७] इससे यह भी सिद्ध होता है कि राजकीय प्रासादों के भीतर प्रेंक्षागृह में महारानियों के मनोरंजन के नए-नए साधन बराबर जुटाए जाते रहे होंगे और इनमें दासियों की ही प्रमुखता रहती होगी। अन्यथा संगीत या नृत्य के किसी अभिनय-प्रदर्शन में बहुविध कलाकारों की आवश्यकता को पूरा करना असम्भव हो जाता। उदयन के प्रेक्षागृह की सजावट की प्रशंसा सांकृत्यायनी मुक्त कंठ से करती हुई कह उठती है कि स्वर्णनिर्मित स्तम्भों पर मोतियों की लड़ियां झूल रही हैं ।[३८]

---

३५. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-३, पृ.-३०३

बकुलावलिका—अपि रोचते ते रागरेखाविन्यासः !
मालविका— केन प्रसाधनकलायाभभिनीतासि ।
बकुलावलिका—अत्र खलु भर्त्तुः शिष्यास्मि ।

३६. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ.-४१

मनोरमा—अद्य पुनर्वासवदत्ताभूमिकया तया यदि तथा क्रियते
ततोऽवश्यं देवी कोपिष्यति ।

३७. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ.-५१

मनोरमा—अतिकोपने, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ
नर्तितव्यमस्माभिस्तस्यैव नाटकस्य नर्तितशेषम् ।
तदेहि ! प्रेक्षागृहमेव गच्छावः ।

३८. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**

सांकृत्यायनी—अहो प्रेक्षणीयता प्रेक्षागृहस्य,
आभाति रत्नशतशोभितशातकुम्भ-
स्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदामरम्यम् ।
अध्यासितं युवतिभिर्विजिताप्सरोभि:
प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत् ॥ ३/२

विविध वर्ण की मणियां उन पर टंकी हुई हैं, अप्सराओं को लज्जित करने वाली युवतियों से यह प्रेक्षागृह[३९] देवविमान की तरह सुशोभित हो रहा है।

श्रीहर्ष स्वयं संगीतकला के ज्ञाता प्रतीत होते हैं। प्रियदर्शिका नाटिका के तीसरे अंक में नायिका के वीणा-वादन और गीत को सुनकर उदयन अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के क्रम में संगीत के पुष्प, कल, तल आदि दस प्रकार के प्रहारों का, द्रुत-मध्य विलम्बित इन तीन प्रकार के लयों का, समा-स्रोतोगता-गोपुच्छ नामक तीन प्रकार की यतियों का एवं तत्त्व, ओध और अनुगत नामक वाद्य के तीन-तीन प्रकारों का उल्लेख करते हैं।[४०] श्रीहर्ष का भी दृष्टिकोण यही है कि शृंगार रस प्रधान नाटिका में विभिन्न ललित-कलाओं का समावेश किसी न किसी प्रसंग के माध्यम से होना चाहिए। रत्नावली नाटिका में नायिका उदयन का चित्र बनाती है जिसके पार्श्व में सुसंगता दासी स्वयं रत्नावली का चित्र बड़े सहज भाव से तत्क्षण बना डालती है।[४१]

---

३९. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ.-५६

कंचुकी—... इयं सा वासवदत्ता वीणाहस्तया कांचनमालयानुगम्यमाना
गन्धर्वशालां प्रविष्टा।
[प्रेक्षागृह को गन्धर्वशाला भी कहा जाता है।]

४०. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**,

राजा—साधु राजपुत्रि साधु ! अहो गीतमहो वादित्रम्। तथा हि—
व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धाधुना
विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधायं लयः।
गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण यतयस्तिस्रोऽपि सम्पादिता-
स्तत्त्वौघानुगताश्च वाद्यविधयः सम्यक्त्रयो दर्शिताः॥ ३/१०

४१. श्रीहर्ष, **रत्नावली**; अं-२, पृ-५९

सुसंगता—···कथं भर्त्ता लिखितः !
साधु सागरिके, साधु। ·········

श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-२, पृ-६०

सुसंगता—अहो तो निपुणत्वम्। किं पुनः
शून्यमेव एतत् चित्रं प्रतिभाति।
तदहमप्यालिख्य रतिसनाथ करिष्यामि।
(वर्त्तिकां गृहीत्वा नाट्येन रतिव्यपदेशेन सागरिकां लिखति।)

श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-२, पृ-६१

सखि, किमकारणं कुप्यसि ? यादृशस्त्वया कामदेव
आलिखितस्तादृशी मया रतिरालिखिता।

राजशेखरकृत विद्धशालभंजिका नाटिका का तो मेरुदण्ड ही चित्रकला पर आधारित है। पहले अंक में विदूषक राजा से केलिकैलास नामक भवन में चलने का आग्रह करता है, जहाँ स्फटिक की बनी भित्तियों पर चित्रों की भरमार है। रानी के साथ राजा के शयनगृह में प्रवेश करते समय हाथों में पानदान लिए खड़ी नागवल्ली दासी और चंवर डुलाने वाली प्रभंजनिका का चित्र मन को बरबस आकर्षित कर लेता है।[४२] इतना ही नहीं, स्नानागार में अपने परिजन के साथ स्नान करती हुई देवी का चित्र भी वहीं एक ओर अंकित है।[४३] चित्रों में अंकित कार्य के अनुरूप ही दासियों का नामकरण किया गया है। ताम्बूलवाहिनी दासी का नाम नागवल्ली, चंवर से वायु-संचार करने वाली का प्रभंजनिका सदृश अन्वर्थक संज्ञा का प्रयोग कवि की सूक्ष्म दृष्टि का सूचक है, किन्तु इस नाटिका में दासी विशेष की चित्र या संगीत-कला विषयक निपुणता का उल्लेख नहीं है।

कर्णसुन्दरी नाटिका में दासी को नृत्यसंगीतादि में तो नहीं, किन्तु काव्यरचना में निपुण बताया गया है। नायिका कर्णसुन्दरी कामव्यथा से अपने को अस्त-व्यस्त मानसिक स्थिति में पाकर अपनी एक सखी से आग्रह करती है कि तुम्हीं मेरी ओर से दो पद्य लिखकर राजा के पास भेज दो।[४४] यह दासी, जो नायिका की अन्तरंग सखी है, तरंगवती है। पारिजातमंजरी नाटिका में किसी दासी को ललितकला में पारंगत नहीं दिखलाया गया है, किन्तु वसन्तोत्सव के अवसर पर पौरांगनाओं को पुष्पाभरणों से अलंकृत कराकर उनके नृत्य कराने का संकेत अवश्य है। फूलों से अपने शरीर को अच्छी तरह सजाकर, सिन्दूर रेखा से अपने अलकपाश को आकर्षक बनाकर सुधिहीन सी होती हुई नगरवनिताएं ताल और लय के साथ नाच रही हैं; किन्तु उनकी आंखें

---

४२. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-१, पृ-२२

विदूषकः—प्रियवयस्येतस्तावद् आलिखितस्फटिकगर्भभवनभित्तिचित्र-
कर्मणि निवेश्यतां दृष्टिः।······
एषापि तम्बूलकरण्डवाहिनी नागवल्ली, एषापि
चामरग्राहिणी प्रभंजनिका,······।

४३. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, पृ-२६

विदूषकः—इतो देवी मज्जनव्यतिकरे गृहे सपरिवारालिखिता।

४४. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-२, पृ-३०

नायिका—त्वमेव शक्ता श्लोकयुगलं कुरुष्व।
मम मन्मथरससंकल्पविकल्पैरन्तर्यंते प्रणिधानदृष्टिः।

अपने-अपने प्रिय पर टिकी हुई हैं, जो मुरजवादन द्वारा उनकी संगति कर रहे हैं।[४५] नगर की वधुएं ही नहीं, सभी श्रेणी के पुरवासी आनन्द और उल्लास के साथ वसन्तोत्सव में भाग ले रहे हैं। कोलाहल करते हुए ये नागरिक कहीं रंग उड़ा रहे हैं तो कहीं कस्तूरी और श्रीखण्ड के चूर्ण।[४६] कश्मीरी द्रवासव के पान से अथवा गुलाब जल आदि के छिड़काव से उनके चेहरे तर हो रहे हैं। इस प्रकार विविध प्रकार से ये नागरिक आत्मविभोर हो रहे हैं। इस नाटिका के दूसरे अंक में नायिका की धात्री वसन्तलीला के द्वारा ताटंक वाले दृश्य का आयोजन कितना चमत्कारपूर्ण है, यह नाटिका की नायिका शीर्षक अध्याय में सविस्तर दिखाया जा चुका है।

वीरराघव रचित मलयजाकल्याणम् नाटिका की केरलिका और मंजरिका संगीत कला में अतिकुशल हैं। वीणा वादन के द्वारा प्रियालवृक्ष की दोहद पूर्ति के निमित्त महादेवी की ओर से पुत्री मलयजा का आदेश मिलता है।[४७] वह वीणा बजाकर दोहद का कार्य सम्पन्न करती है। नायिका वकुलफूल के रस बाँए हाथ की उंगलियों को चिकनाकर स्वर-सन्धान करती हुई पहले मांगलिक समाप्त करती है।

---

४५. मदन, **परिजातमञ्जरी**,

पौष्पैराभरणैर्मनोज्ञतनवः स्वैरं दधत्याऽधुना
सैन्दूरीमरुणीकृतालकलतां लेखां ललाटीतटे।
नृत्यन्त्यो मदविह्वलं लयविसंवादेषु पौरांगनाः
क्रीडामौरजिकस्वकांतवदनान्यालोकयन्ति स्मिताः॥ १/२१

४६. मदन, **परिजातमञ्जरी**,

सिन्दूरं क्वचिदट्टहासनिनदैरुद्दण्डमुड्डीयते
कस्तूरीनिकरः क्वचित्क्वचिदपि श्रीखण्डरेणूत्करः।
काश्मीरद्रवसीकरैर्दृतिमुखोन्मुक्तैरतिव्याकुलः
पौरैः स्वैरमनेकधायमधुनारब्धो मधोरुत्सवः॥ १/२०

४७. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-२, पृ-१७

पुरुषः—वत्से मलयजे;······

'स्त्रीणां गीत्या प्रियालो विकसति चेति दोहदं समामनन्ति,
प्रीयते च पुष्पितेन वृक्षेण वसन्तदेवता वत्सायाः।

मंजरिका उसे समय के अनुकूल भैरविका राग में गाने का परामर्श देती है। इस प्रसंग में केरलिका और मंजरिका दोनों के सहयोग से नायिका के द्वारा प्रियालवृक्ष की दोहद पूर्ति की व्यवस्था कराना यह सूचित करता है कि सामान्य वर्ग की स्त्रियाँ भी संगीत कला में अभिरुचि रखती हैं और उन्हें कालविशेष के उपयुक्त राग-रागिनी के गाये जाने का पूर्ण ज्ञान भी रहता है।[४८]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नाटिका के कथातत्त्व को जिस स्रोत से जीवन-रस प्राप्त होता है, वह विभिन्न ललितकलाओं से उद्भूत है और इसमें परिजन वर्ग का पर्याप्त योगदान है।

---

४८. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-२, पृ-१९

मंजरिका—भैरविकाया इदानीं प्राप्तकालता।

तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति

समुदायविशेष की सांस्कृतिक उन्नति अथवा अवनति का आकलन नारी के प्रति सामान्यजन के दृष्टिकोण से किया जा सकता है। नारी-वर्ग के प्रति अनास्था समाज की हीनता का द्योतक है। भारतीय सभ्यता के अरुणोदय से ही समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। स्मृतिकार ने कहा है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है वहां देवगण निवास करते हैं।[1] अन्यथा घर या समाज में सम्पन्न सारी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। नारी को सम्मान की दृष्टि नहीं देखने वाला घर या समाज उलझनपूर्ण विसंगतियों का केन्द्र बन जाता है। नारी का उच्चाशय होना तथा मर्यादाओं का पालन करना समाज को सुव्यवस्थित रखने की पहली शर्त है। किन्तु इस प्रकार की आदर्श-व्यवस्था का पालन नारियों के लिए तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक पुरुष वर्ग की ओर से भी उन्हें इस कार्य में सहयोग नहीं मिलता। पुरुष और नारी दोनों के सन्तुलित प्रयास से सामाजिक व्यवस्था मर्यादित रखी जाती है। पति और पत्नी के पारस्परिक सहयोग के प्रति सर्वाधिक आग्रह दिखाने वाले महाकवि कालिदास के अनुसार दम्पती वैसे ही परस्पर सम्बद्ध हैं जैसे शब्द और अर्थ। शब्द से पृथक् अर्थ का अथवा अर्थ से छिन्न शब्द का अस्तित्व नहीं रह सकता।[2] इसी भाव को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए महाकवि ने कुमारसम्भव महाकाव्य में संकेत किया है कि ब्रह्मा जब स्त्री और पुरुष की सृष्टि करने चलते हैं उस समय वे ही स्त्री और पुरुष की आकृतियों में परिणत हो जाते हैं। वे ही सारे

---

१. **मनुस्मृति,**

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।। ३/५६

२. कालिदास, **रघुवंश,**

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।। १/१

संसार के माता और पिता बन जाते हैं।[3] ब्रह्मा को इस प्रकार सृष्टि के माता और पिता दोनों के रूप में प्रतिष्ठित कर कालिदास ने प्रतीक रूप से समाज रूपी व्यवस्था सर्जन में पुरुष और नारी दोनों के सन्तुलन की महत्ता आंकी है।[4]

मानव मात्र में ऐहिक जीवन में आनन्द को महत्त्व देने की प्रवृत्ति देखी जाती है, किन्तु उस आनन्द की प्राप्ति सर्वांशतः उसे तब तक नहीं हो सकती है, जब तक वह अपने को नारी के सहयोग से दूर रखता है। इस प्रकार लौकिक सुख-समृद्ध स्त्री और पुरुष दोनों के सम्मिलित प्रयास का फल है। दोनों के दायित्व प्रकृति के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हुए भी, उनके निर्वाह में दोनों के पारस्परिक सहयोग की नितांत आवश्यकता होती है। कालिदास के अतिरिक्त भास भी अपनी रचनाओं के माध्यम से बार-बार यही कहना चाहते हैं कि पति और पत्नी के सहयोग से जैसे गार्हस्थ्य-जीवन पूर्णता को प्राप्त करता है उसी प्रकार सामान्य रूप से पुरुष और नारी दोनों के सम्मिलित प्रयास से ही सामाजिक जीवन सुव्यवस्थित रह सकता है। स्वप्नवासवदत्त नाटक का मूल कथ्य है, वासवदत्ता के द्वारा अपने पति उदयन को दिया गया सहयोग। मन्त्री यौगन्धरायण के परामर्श को मानकर वासवदत्ता ने जो कुछ सहन किया और भविष्य में सापत्न्य कष्ट को सहने के लिए अपने को जिस रूप में उसने प्रस्तुत किया यथार्थ में वह अनोखी घटना है। वासवदत्ता के त्याग और बलिदान में जीवन का रहस्य जिस प्रकार भास ने अनुस्यूत कर प्रदर्शित किया है, वही यथार्थ में विशुद्ध भारतीय दाम्पत्य है। व्यक्ति जैसे समाज की इकाई है, उसी प्रकार दाम्पत्य और पारस्परिक सहयोग भी सम्पूर्ण सामाजिकता की इकाई है।

अश्वघोष जिन्हें विशुद्ध बौद्ध और गार्हस्थ्य-जीवन से विच्छिन्न कवि समझा जाता है, उन्होंने भी दाम्पत्य प्रेम की महिमा बार-बार गायी है। सौन्दरनन्द महाकाव्य का मूल स्वर यद्यपि सांसारिकता के प्रति अनास्था के पक्ष में है, फिर भी नन्द की पत्नी सुन्दरी के विलाप वाले सर्ग में कवि बार-बार ऐसा अनुभव करता है कि एक

---

३. कालिदास, **कुमारसम्भव**,

स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ ॥ २/७

४. कालिदास, **कुमारसम्भव**,

तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृ प्रतिपादिता ॥ ६/७९

दूसरे से कटकर पति और पत्नी की मानसिक अवस्था सामान्य नहीं रह जाती, साथ ही यह स्नेहमय दाम्पत्य बन्धन इतना सबल होता है कि इसे ज्ञान द्वारा ही भंग किया जा सकता है।[५] कवि के सामने प्रसंग तो वैराग्य का है, किन्तु गार्हस्थ्य-स्नेह की प्रबलता भी प्रकारान्तर से उन्हें स्वीकार है। सुन्दरी की मर्माहत अवस्था का वर्णन करते समय वे उपमानों की परम्परा खड़ी कर देते हैं।[६] सौन्दरनन्द के सम्पूर्ण षष्ठ और सप्तम सर्गों में क्रमशः सुन्दरी और नन्द की वियोगजन्य मार्मिक भावाभिव्यक्ति हुई है। उसका मूल काम को मानते हुए अश्वघोष ने, यद्यपि बाह्य रूप से उनके प्रति अपनी वितृष्णा व्यक्त की है, किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सुन्दरी और नन्द की पारस्परिक भावाभिव्यञ्जना द्वारा उन्होंने दाम्पत्य के अनिवार्य आकर्षण को रेखांकित किया है।

निर्विवाद है कि कालिदास, भास एवं अश्वघोष ने अपनी रचनाओं में नारी की महिमा को महत्त्व दिया है। अन्य कवियों में श्रीहर्ष (सप्तम शताब्दी) राजशेखर (दशम शताब्दी) आदि की रचनाओं में नारी के चित्रण से उसकी सम्मान पूर्ण स्थिति का संकेत नहीं मिलता। हाँ अष्टम शताब्दी में भवभूति की रचनाओं में नारी पुनः प्रतिष्ठित दीख पड़ती है। नारी के सम्बन्ध में कालिदास का जो स्वर रघुवंश महाकाव्य में अज के माध्यम से सुनाई पड़ता है,[८] वही स्वर भवभूति के कण्ठ से पुनः एक बार सुना जा सकता है।[९] ध्यान देने की बात है कि भास ने वासवदत्ता

---

५. अश्वघोष, **सौन्दरनन्द,**

छित्वा च भित्त्वा च हि यान्ति तानि स्वपौरुषाच्चैव सुहृद्बलाच्च।
ज्ञानाच्च रौक्ष्याच्च विना विभक्तुं न शक्यते स्नेहभवस्तु पाशः ॥ ७/७५

६. अश्वघोष, **सौन्दरनन्द,**

सा चक्रवाकीव भृशं चुकूज श्येनाग्रपक्षक्षतचक्रवाका।
विस्पर्धमानेव विमान-संस्थैः पारावतैः कूजनलोलकण्ठैः ॥ ६/३०

७. कृष्णमाचार्य एम, हिस्ट्री आफ क्लासिकल लिटरेचर. पृ-६१८

८. कालिदास **रघुवंश**

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किन्न मे हृतम् ॥ ८/६७

९. भवभूति, **उत्तररामचरित,**

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्त्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥ १/३८

को जिस परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा है । सातवीं शताब्दी में श्रीहर्ष की वासवदत्ता और उदयन के युग के आते-आते उसमें अन्तर परिलक्षित होने लगता है । किसी युग का साहित्य यदि तत्कालीन समाज का दर्पण माना जाए तो उक्त अन्तर को दोनों कवियों की रचनाओं में स्पष्टतया देखा जा सकता है । यह तर्क की नाटिकाओं का परिवेश विलासिता की पृष्ठभूमि में पोषित होता है और इसी कारण वासवदत्ता का ऐसा परिवर्तित रूप श्रीहर्ष, की नाटिकाओं में देखने को मिलता है, स्वीकार्य नहीं हो सकता । यदि नाटिका की प्रकृति के ही कथानक वाले मालविकाग्निमित्र की ज्येष्ठा नायिका महारानी धारणी के महनीय चरित्र को देखें तो यह मानना पड़ेगा कि नारी के प्रति कालिदास और श्रीहर्ष के समाज के दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर है ।

वस्तुतः समाज की पृष्ठभूमि में यदि नारी को देखना-परखना है, तो उसका आकलन तभी किया जा सकता है जब किसी अवधिविशेष में नाटिका में वर्णित सामाजिक धार्मिक परिवेश को देखा जाय ।

श्रीहर्ष की दोनों नाटिकाओं के पर्यालोचन से स्पष्ट है कि धार्मिक आचार-व्यवहार में नारी की पूर्ण आस्था है । प्रियदर्शिका के दूसरे अंक के आरम्भ में नियमोपवास से क्षीण देवी वासवदत्ता की शरीर-यष्टि का वर्णन किया गया है ।[१०] व्रतकाल में राजकीय आभूषणों को त्यागकर वे मंगलसूत्रमात्र धारण करती हैं । व्रत की अवधि में अथवा समाप्ति पर ब्राह्मणों को स्वस्तिवायन देने की प्रथा है ।[११] तंत्र-मंत्र पर पूर्ण आस्था रहने के कारण ही आरण्यका को विष के प्रभाव से मुक्त कराने के लिए वासवदत्ता उदयन को उसकी चिकित्सा के लिए बुलवाती है । यह चिकित्सा किसी औषधि विशेष के प्रयोग से नहीं करायी जाती बल्कि उदयन मनोरमा

---

१०. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका,

राजा—क्षामां मंगलमात्रमण्डनभृतं मन्दोद्यमालापिनी-
मापाण्डुच्छविना मुखेन विजितप्रातस्तनेन्दुद्युतिम् ।
सोत्कण्ठां नियमोपवासविधिना चेतो ममोत्कण्ठते
तां द्रष्टुं प्रथमानुरागजनितावस्थामिवाद्य प्रियाम् ।। २/१

११. श्रीहर्ष, प्रियदर्शिका, अं-२पृ-२२

विदूषकः—(सगर्वम्) भो ईदृशः खलु ब्राह्मणः यश्चतुर्वेदपंचवेद-
षड्वेदब्राह्मणसहस्रपर्याकुले राजकुले प्रथममहमेव
देवीसकाशात्स्वस्तिवायनं लभे ।

के शरीर पर जल छिड़कते हैं और उस पर अपना हाथ रखकर मंत्र पढ़ते हैं।[12] कामदेव की पूजा यद्यपि धार्मिक कृत्य में परिगणित नहीं की जाती फिर भी इससे इतना स्पष्ट है कि पूजन-प्रथा का प्रचलन स्त्री समाज में पर्याप्त है। अन्तःपुर में आने के पश्चात् प्रियदर्शिका का मुख्य कार्य है, वासवदत्ता के निमित्त पुष्पचयन करना।[13] यह पुष्पचयन अवश्य दैनिक पूजन-अर्चन के लिए रहा होगा; क्योंकि कामदेव की पूजा तो किसी विशेष अवसर पर ही की जाती थी।

राजशेखरकृत विद्धशालभंजिका के रचना काल तक ऐसा जान पड़ता है कि नारी में अन्धश्रद्धा रूढ़ होने लगी है। इस नाटिका के तृतीय अंक में महारानी की धात्रीपुत्री मेखला को जीवन-दान देने के लिए ब्राह्मण विदूषक चारायण के सामने महारानी को भी गिड़गिड़ाते हुए देखा जा सकता है।[14] गन्धर्ववेद के ज्ञाता ब्राह्मण के दोनों चरणों के बीच से निकल जाने पर आसन्नमृत्यु कोई व्यक्ति जीवन-दान पा सकता है।[15] ऐसा विश्वास मेखला तथा स्वयं महारानी को भी है। इसी प्रसंग में दासी विचक्षणा सुलक्षणा से कहती है कि मुनि लोग भी कहते हैं कि ब्राह्मण अपने चरण से दूसरों को पवित्र करते हैं, धन्य हैं ब्राह्मणों का कपट नाटक। दो दासियों के इस वार्तालाप से यह स्पष्ट है कि एक ओर ऐसी नारियां भी हैं, जिन्हें विश्वास है कि भूत-प्रेत तथा ब्राह्मणों की सहायता से किसी को मृत्यु से बचाया जा सकता है तो दूसरी ओर विचक्षणा जैसी

---

१२. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-४, पृ-१०२

विदूषकः—भोः, एतत्सलिलम्। (राजोपसृत्य प्रियदर्शनाया उपरि हस्तं निधाय मन्त्रस्मरणं नाटयति)

१३. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-२, पृ-३०

चेटी—(कमलिनीपत्रग्रहणं नाटयन्ती) आरण्यके, अपचिनु त्वं पद्मानि। अहमप्येतस्मिन्नलिनीपत्रे शेफालिकाकुसुमान्यवचित्य देवीसकाशं गमिष्यामि।

१४. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-३, पृ-६८

देवी-- आर्य चारायण ! देहि मे धात्रेयिकाभिक्षां, जीवय मेखलाम्।

१५. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-३, पृ-६३

सुलक्षणा—तत्र मयैवं भणितम्, यदि गन्धर्ववेदविचक्षणं ब्राह्मणं गुरुणाऽर्चनासत्कारेणाभिनन्द्य पादयोः पतन्ती जंघान्तरमार्गद्वारेण संचरसे ततस्ते जीवितावलम्ब इति।

सेविका भी है जो ऋषि-मुनियों ब्राह्मणों की कटु आलोचना निःसंकोच भाव से करती है।[१६] इसी नाटिका में महारानी की उक्ति को विदूषक की भार्या दुहराती है कि श्रेष्ठ कुल में जन्म लेने वाली महिला के लिए वही कार्य आत्मतृप्ति-कारक होता है, जो उसके पति को प्रिय हो।[१७] इसप्रकार एक ओर जहाँ महारानी पति को देवतुल्य मानती है, वहीं दूसरी ओर अपनी दासी की बेटी मेखला के साथ विदूषक के द्वारा किए गए साधारण से मजाक का प्रतिकार अपने पति का विवाह, अपने जानते, स्त्री की वेश-भूषा में सजे एक लड़के से सम्पन्न कर करती है।

इन सारी घटनाओं पर दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज की नारियों में धार्मिक श्रद्धा अथवा गुरुजनों के प्रति आस्था का पूज्यभाव रखने के प्रति उपेक्षाबुद्धि आ गयी है। इसी परिस्थिति के अनुकूल राजकुल में विधिवत् परिणीता पत्नी के रहते हुए भी अनेक देशों की सुन्दरियों से विवाह कर अन्तःपुर को भरने की प्रवृत्ति भी राजाओं में पायी जाती है। महारानी स्वयं आठ देश की कन्याओं का नाम गिनाती है, जिनके साथ उसके पति महाराज विद्याधरमल्ल का विवाह हुआ है।[१८] इस नाटिका में वर्णित पात्रों का जैसा चित्रण राजशेखर ने उपस्थापित किया है, उससे स्पष्ट होता है कि नारी हीन मनोवृत्ति से ग्रस्त हो चुकी है।

राजशेखर की दूसरी कृति कर्पूरमंजरी में भी नारी को महिमामण्डित चित्रित करने का प्रयास नहीं किया गया है। भैरवानन्द योग एवं इन्द्रजाल आदि द्वारा जिस वातावरण की इसमें प्रस्तुति करता है, उससे स्पष्ट है कि राजकुल में ऐसे योगियों को सम्मान का स्थान प्राप्त है, जो योगबल से किसी युवति का अपहरण प्रयोजन-विशेष की पूर्ति के लिए कर सकते हैं और ऐसे ही व्यक्ति महारानी के

---

१६. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं- ३, पृ-६३

विचक्षणा—अहो ते वैचक्षण्यम्। यतो मुनयोऽप्येव स्मरन्ति
पादेभ्यो ब्राह्मणाः पवित्रयन्ति सर्वम्। अहोकपटनाटक-
कवित्वं ब्राह्मणस्य

१७. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-४ पृ-९४

ब्राह्मणी—...यतो महाकुलप्रसूतानां भर्तुःप्रियमेवाऽऽत्मनः प्रियमिति।

१८. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-४, पृ-९४

ब्राह्मणी—तद्यथा, मगधाधिपसुतामनंगलेखाम्, मालवनरेन्द्रदुहितरं
रत्नावलीं; प्रियदर्शनां च।

धर्मगुरु भी हो सकते हैं।[१९] भैरवानन्द अपने योगबल की प्रशंसा में स्वयं कहता है कि मैं न कोई मन्त्र जानता हूँ और न कोई तंत्र। ज्ञान-ध्यान से भी मेरा कोई नाता नहीं। गुरु की कृपा मुझ पर है और मेरा कार्य है मद्यपान तथा युवतियों का सहवास और इन्हीं के सहारे मोक्ष प्राप्त करना। यही मेरा कुलाचार है।[२०] दूसरी ओर धार्मिक लोकाचार के प्रति महारानी की आस्था का भी स्थान-स्थान पर संकेत किया गया है। विदूषक द्वितीय जवनिकान्तर में देवी के द्वारा गौरी की पूजा[२१] तथा वटसावित्री उत्सव[२२] मनाने का भी उल्लेख करता है।

द्वादश शताब्दी की कृति उषारागोदया नाटिका में धार्मिक लोकाचार के प्रति स्त्रियों की निष्ठा की अभिव्यक्ति का कोई विशेष अवसर तो नहीं है किन्तु, प्रथम अंक में, महारानी रुक्मवती की मदनपूजा से इतना संकेत मिलता है कि कामदेव की प्रतिमा वनवाकर उसकी पूजा का प्रचलन हो चुका है। लगभग सभी नाटिकाओं में वसन्तपूजा, मदनपूजा आदि का उल्लेख मिलता है, जो नाटिकाओं की शृंगारिक प्रकृति के अनुकूल है। किन्तु कामदेव की विधिवत् प्रतिमा बनाकर[२३] उसके पूजन का उल्लेख इस नाटिका के अतिरिक्त अन्यत्र नही मिलता है। देवी रुक्मवती दासी

१९- राजशेखर, **कर्पूरमञ्जरी**, अं-४, पृ-१७५

सारंगिका—देव्या पद्मरागमणिमयी गौरी कृत्वा भैरवानन्देन
प्रतिष्ठापिता, स्वयं च दीक्षा गृहीता ······।

२०. राजशेखर, **कर्पूरमञ्जरी**

मन्त्रो न तन्त्रं न च किमपि ज्ञानं
ध्यानं च नो किमपि गुरुप्रसादात्।
मद्यं पिबामो महिलां रमयामो
मोक्षं च यामः कुलमार्गलग्नाः॥ १/२२

२१. राजशेखर, **कर्पूरमञ्जरी**, अं-२, पृ-८७

विदूषकः—अद्य हिन्दोलनचतुर्थी, तत्र देव्या गौरीं कृत्वा
कर्पूरमंजरी हिन्दोलके आरोहयितव्या।

२२. राजशेखर, **कर्पूरमञ्जरी**, अं-४, पृ-१६८

सारंगिका—जयतु जयतु भर्त्ता! देव! देवी विज्ञापयति-
अद्य चतुर्थदिवसे भाविवटसावित्रीमहोत्सवोपकरणानि
केलिविमानप्रासादमारुह्य प्रेक्षितव्यानि।

२३. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, अं-१, पृ-१५

देवी—रूपलेखे! प्रतिमां विधत्स्व यत्र मदनमर्चयिष्ये।

रूपलेखा को मदन की प्रतिमा बनाने का आदेश देती है, जिस पर दासी उत्तर देती है कि यहाँ तो कुमार अनिरुद्ध के रूप में साक्षात् कामदेव ही विराजमान हैं। आप उन्हीं को क्यों नहीं पूजती हैं ? देवी मुस्कराकर वैसा ही करती है। इस प्रसंग से स्पष्ट है कि समाज में किसी आराध्य देव-देवी की मृण्मयी मूर्ति बनाकर पूजन का प्रचलन है। साथ ही यह भी संकेत मिलता है कि अपने पति को उपास्य मानकर प्रतीक रूप में उसका अर्चन करना स्त्री के लिए श्रेयस्कर एवं मान्य है। धार्मिक लोक व्यवहार की चर्चा के इस प्रसंग में यह उल्लेख करना अपेक्षित जान पड़ता है कि दान-पुण्य के कार्य में संलग्न व्यक्ति की प्रशंसा बड़े सम्मान के साथ की गयी है। वसन्तोत्सव मनाते समय नागरिकों के वैभव-विलास की प्रशंसा कुमार अनिरुद्ध विदूषक से करते हैं। इस पर विदूषक कहता है कि आप तो नागरिकों के वैभव-विलास की प्रशंसा का पुल बाँधे जा रहे हैं, किन्तु मैं तो समझता हूँ कि इस नगर में एक श्रेष्ठी ही प्रशंसा का पात्र है, जिससे सभी नागरिक जनों की अभिलाषा की पूर्ति होती है।[२४] कुमार भी इसका अनुमोदन करते हैं कि तुम ठीक कह रहे हो। वह वैश्यसमुदाय धन्य है, जो व्यवहार में पूर्ण कुशल होते हुए राजा में अत्यधिक स्नेह होने के कारण नगर को अलंकृत किये रखता है। ब्राह्मणों के प्रति पूज्य भाव नारियों में विद्यमान हैं। उषा और कुमार के विवाह मण्डप पर देवी रुक्मवती बड़े सम्मान के साथ ब्राह्मण विदूषक को आर्य पद से सम्बोधित करती है और कहती है कि मैंने सबसे पहले आपके ही चरण-युगल को प्रणाम किया है।[२५] देवी अच्छी तरह जानती है कि राजा का यह मुंहलगा ब्राह्मण कितने पानी में है और राजकुल में रहकर यह अपने ब्राह्मणत्व की कितनी रक्षा करता है। फिर भी ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने के कारण देवी अपने पति से पहले उसे ही प्रणम्य मानती है।

उषारागोदया के चतुर्थ अंक में नारदमुनि देवी रुक्मवती की प्रशंसा करते

---

२४. रुद्रचन्द्रदेव, उषारागोदया, अं-२, पृ-२३

विदूषक—प्रियवयस्य ! त्वं बहु वर्णयसि नागरिकजनानां विलसितम्।
अहं पुनर्जाने खलु एको धन्य एष वैश्रवणश्रेष्ठी यस्य गृहात्
सकलोऽपि नागरिकजनः यथाभिलषितं लभते।

२५. रुद्रचन्द्रदेव, उषारागोदया,

कुमार—गिरिवर ! सम्यगालोचितवानसि ;
बहुभागधेयवन्तो……… ॥ २/१३

नहीं अघाते।[२६] विदर्भनन्दिनी ने अपने स्वभाव, पातिव्रत्य और आत्मसन्तोष से पिता और पति के कुलों को प्रशस्य बनाया है। कठोर सापत्न्य दुःख को सहकर और मत्सरता को त्याग कर उसने अपने उदारतापूर्ण आचरण से लोगों को आश्चर्य से भर दिया है।[२७] इस प्रकार इन प्रसंगों से स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज की दृष्टि में नारी में पतिभक्ति एवं ब्राह्मण के प्रति पूज्य-भाव प्रशंसनीय गुण हैं।

विश्वनाथकृत चतुर्दश शताब्दी की रचना चन्द्रकला नाटिका में तत्कालीन समाज की नारी की स्थिति का कुछ भी उल्लेख नहीं दीख पड़ता। पुरुष वर्ग की दृष्टि में नारी वासना-तृप्ति के साधन से कुछ अधिक महत्त्व की नहीं है। नायिका चन्द्रकला को अपनी आँखों से देख लेने पर महाराज अपना संयम खो बैठेंगे इसका पूर्ण विश्वास महामन्त्री सुबुद्धि[२८] और अन्तःपुर की परिचारिका सुनन्दना दोनों को अनायास हो आया है। महारानी भी महाराज के इस स्वभाव के कारण सशंकित हैं। विदूषक तो महाराज के मुंह पर ही उनके स्त्री-लंपटस्वभाव का उल्लेख करता है।[२९] यदि सुयोग्यमन्त्री मिल जाए तो राजाओं का कार्य रमणी-विहार के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं। ध्यान देने की बात है कि महामन्त्री जैसे सम्मानपूर्ण पद को अलंकृत करने वाले व्यक्ति द्वारा न्यास रूप में सौंपी गयी, सम्बन्धिनी युवति के प्रथम दर्शन

---

२६. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, अं-४,पृ--५०

नारदः—वत्से! विदर्भनन्दिनि! त्वया सहजदुर्विषह्यं सापत्न्यमत्सर-
मपहाय मदाज्ञामुपपादयन्त्या किं किं न सम्पादितम्—शीलेन
कुलद्वयं, पतिव्रतात्वेन चात्मसन्तोषेण च ममानन्दातिशयः,
इतरजने चाश्चर्यम्।

२७. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**. अं-४,पृ-४९

देवी—आर्य! मया प्रथममेव वन्दितं तव पदयुगम्।

२८. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-१,पृ-६

सुबुद्धिः—अन्तःपुरचारिणीमिमामवलोक्य स्वयमेव परिग्रही-
ष्यति स्वामीति विचिन्त्य मम वंशजा इयं सखीपदे
स्थापयित्वा परिपालनीयेति सादरं समर्पिता देव्यै।

२९. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-१, पृ-९

विदूषकः—उत्पाटिताशेषकण्टकस्य राज्यपालननियुक्त-
धीसचिवस्य कलितरतिमात्रकौतूहलस्य न खलु ते
धरणीचिन्ता किन्तु तरुणीचिन्ता।

के पश्चात् ही महाराज उसे वासना-तृप्ति का साधन बना लेने को व्यग्र हो उठते हैं। महाराज स्वयं भी विदूषक के सामने स्वीकार करते हैं कि जब से उसको देखा है कामाग्नि में झुलस रहा हूं।[30]

नाटिका के दूसरे अंक में अन्तःपुर के केलिवन में बघेरा के घुस आने वाले प्रसंग में जब महाराज उसे अपनी आंखों से देखने या स्वयं मारने की बात कहते हैं तो महारानी ऐसा करने से उन्हें रोकती है।[31] महारानी सामान्य नारी की तरह महाराज को इस खतरे वाले काम से अलग रखना चाहती है। वह अपने भीतर की दुर्बलता को छिपाने में असमर्थ हो जाती है। इस प्रसंग में महारानी का स्वभाव जितना कोमल दीख पड़ता है, उतना ही सरल भी। वह अपने पति को साधु आचरणवाला मानती है। महाराज और चन्द्रकला के गुप्त-प्रेम की चर्चा करने वाली अपनी विश्वस्त दासी को फटकार कर वह अपनी सरलता का परिचय देती है।[32] किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् जब वह अपने कानों से सब कुछ सुन लेती है, तो पुरुष-वर्ग को कोसने से भी नहीं चूकती।[33] पुरुष-वर्ग के लम्पट स्वभाव के प्रति आक्रोश अन्तःपुर की परिचारिका को भी है।[34]

---

३०. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-१, पृ-११

राजा—सखे, किमन्यत्। अनया खलु बध्वा निजगुणसंघैर्भृशं
समाकृष्टचेतसः प्रसभं हृदये दिवानिशं मे भवति
मदनानलो ज्वालितः,

३१. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-२, पृ-२९

देवी– आर्यपुत्र ! एतैर्मारयित्वा इत आनीत एव प्रेक्षितव्य एषः।
अलन्ते तत्र गमनपरिश्रमेण।

३२. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-२, पृ-४०

देवी—सखि, कथं त्वया ईदृशेन खलवचसा अविचारितेनाचक्ष्यते।
यया जन्मनः प्रभृति अक्षुण्णता सानुरागस्यार्यपुत्रस्यापि
ईदृशोऽप्यमनोवृत्ति सम्भावनीयोऽतिक्रमो मम दुर्घट
उत्पाद्यते।

३३. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-२, पृ-४३

देवी—अहो, सर्वथा अविश्वसनीया एव पुरुषाः।

३४. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-३, पृ-६२

रतिकला—सखि ! पुरुषभ्रमराणां स्वभाव एषः यत्
किल नवं नवमेवानुधावन्ति।

तात्कालिक सामाजिक परिवेश का परिचय अन्तःपुर की दासियों के आचरण से भी मिलता है । महामन्त्री चन्द्रकला की प्राप्ति को अपने महाराज के भाग्योदय से सम्बद्ध मानता है तथा इस कार्य में दासी सुनन्दना का सहयोग प्राप्त कर लेता है। सुनन्दना राजा की उन्नति को काम्य मानकर इस निपुणता से यह कार्य करती है कि किसी को उस पर सन्देह नहीं होता । इसी दासी के माध्यम से नायिका और महाराज की प्रेमलीला पनपती है । उधर यह दासी सुनन्दना महारानी की भी इतनी विश्वास-पात्र बनी हुई है कि महारानी नायिका को उसी के घर में छिपाकर रखती है ।

श्री शिंगभूपाल विरचित चतुर्दश शताब्दी की कुवलयावली नाम की नाटिका प्रस्तावना में ही नटी और सूत्रधार के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों के लिए पतिपरायण होना सभी प्रकार के व्रत-नियम से श्रेयस्कर समझा जाता है । सूत्रधार नटी से कुवलयावली नाटिका के अभिनय के लिए उपयुक्त नेपथ्य ग्रहण का आग्रह करता है ।[३५] उत्तर में नटी कहती है कि तुम्हारे मन का अनुसरण करने के अतिरिक्त मेरा काम्य भी क्या हो सकता है ?[३६] नटी की इस उक्ति से प्रसन्न हो सूत्रधार तपाक से कह उठता है कि वैसे तो अनेक प्रकार के व्रतों के महत्त्व का वर्णन किया है परन्तु कुलीना के लिए पति के मन के अनुकूल आचरण करने से बढ़कर दूसरा कोई भी व्रत नहीं हो सकता ।[३७] श्री शिंगभूपाल के काल में पत्नी को पतिचित्तानुरा-गिणी होने की परम्परा के कारण ही प्रस्तावना वाले प्रसंग का आरम्भ इस प्रकार के वार्तालाप से किया गया है । सम्भवतः लेखक के मन में मनु की ये पंक्तियां गूंज रही होंगी जिनमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया है [३८] कि स्त्रियों के लिए न कोई पृथक् यज्ञ है,

---

३५. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-१, पृ-३

सूत्रधारः—······तदनुसन्धीयतां भूमिकापरिग्रहः

३६. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं- १, पृ-३

नटी—आर्यपुत्र ! तव चित्तानुसरणं विना मम किमन्यदस्ति ?

३७. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**,

सूत्रधारः—साधु कल्याणशीले ! साधु !

व्रतानि वर्णनीयानि सन्त्वन्यानि सहस्रशः ।
परं व्रतं पुरन्ध्रीणां पतिचित्तानुरंजनम् । १/६

३८. **मनुस्मृति**,

नास्ति स्त्रीणां पृथक्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ।। ५/१५५

न कोई व्रत है, न कोई उपवास ही। एक मात्र पति की शुश्रूषा करके ही वे स्वर्ग में सम्मान पाने की अधिकारिणी बन जाती हैं। प्रस्तावना में ही सूत्रधार एक बार पुनः पतिकल्याणकामिनी रुक्मिणी प्रभृति का उल्लेख करता हुआ नटी से कहता है कि अब हम दोनों यहां से दूर हट जायें; क्योंकि कालयवन राक्षस पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण के प्रस्थान करने के पश्चात्, उनके अभ्युदय के लिए सौभाग्यलक्ष्मी की उपासना के हेतु रुक्मिणी आदि देवियां विलासोद्यान में जाती हुई इस ओर ही आ रही हैं।[३९] नटी आदि के दूर चले जाने पर रुक्मिणी परिजनों से पूछती है कि आप लोगों ने स्त्री पुरुष के सम्बन्ध की चर्चा को सुना ?[४०] लेखक पातिव्रत्य-धर्म की महिमा का गुणगान करना चाहता है और सम्भव है अपने समाज के हित में इसका बार-बार उल्लेख करना आवश्यक समझता हो। तत्कालीन समाज की नारी पति को ही देव-तुल्य मानकर उसकी शुश्रूषा करना धार्मिक कृत्य जैसा पुनीत कार्य समझती है। पति के कल्याण के लिए रुक्मिणी आदि के द्वारा चिरण्टिका प्रसाधन करना, इसका संकेत है कि अपने पति की सुरक्षा के निमित्त देवी-देवताओं का आराधन आवश्यक है। विपत्ति से बचने के लिए मनौती मानने का भी प्रचलन है। तीसरे अंक में बभ्रुमुख नाम का कंचुकी रुक्मिणी के कथन को दुहराता हुआ कहता है कि कालयवन-विजय के लिए प्रस्थान करने के पूर्व आर्यपुत्र वासुदेव ने रैवतक पर्वत की कन्दरा में स्थापित भवानी के सामने मनौती मानी कि विजय-यात्रा से लौटकर अपने अन्तःपुर की सभी देवियों के साथ में यात्रा-महोत्सव मनाऊँगा। मनौती मानने की रीति विशेषकर नारी-समुदाय

---

३९. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-१, पृ-४

सूत्रधारः—अये अयं कालयवनविजयाय प्रयाते वासुदेवे तदभ्युदय-
काङ्क्षी विलासोद्याने सौभाग्यलक्ष्मीचिरण्टि-
-काप्रसाधनाय मिश्रितो रुक्मिणीप्रमुखदेवीपरिजनो
महानित एवाभिवर्तते। तदेहि दूरमपसरावः।

४०. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-१, पृ-४

रुक्मिणी—हला ! युष्माभिः श्रुतं स्त्रीपुरुषार्थसारं वचनम्।
रुक्मिणी—हला ! एतन्नारदमहर्षिणापि लक्ष्म्या उपदिष्टम्।

में प्रचलित है। स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा इसका समर्थन तत्कालीन समाज में इसके अत्यधिक प्रचलन की ओर संकेत करता है।[41]

वृषभानुजा नाटिका में तो भक्ति और श्रद्धा की मन्दाकिनी ही बह रही है। श्रीकृष्ण के सान्निध्य के लिए मुनिगण ही नहीं, गोकुल के पशु तक व्यग्र दीख पड़ते हैं। श्रीकृष्ण के मुखपंकजरस के पाने में उनकी दृष्टि मग्न दीखती है। जब पशुओं का यह हाल है तो फिर पुरुषों और नारियों का कहना ही क्या ? नायिका का सखियों के साथ यमुना में स्नान करना और वृन्दावन में जाकर मदनपूजा का आयोजन करना समाज में व्याप्त धार्मिक लोकाचार का परिचायक है।[42] गोकुल की गोवर्धन पूजा तो प्रसिद्ध ही है।[43] कामपीड़ा से व्यथित राधा के पुनः स्वास्थ्य लाभ के लिए वृन्दा विद्रुमलता दासी को भेजकर गोकुल की धूलि और केशितीर्थ का जल मंगवाना चाहती है। वृन्दा को विश्वास है कि गोकुल की मिट्टी औषधि कार्य करेगी और राधा पुनः स्वस्थ हो जाएगी। स्वप्न अच्छा या बुरा फल देने वाला होता है, इसका पूर्ण विश्वास उस युग की नारी में पाया जाता है। चम्पकलता तमालिका से कहती है कि ऐसा जान पड़ता हैं कि हमारी प्रिय सखी राधा के साथ श्रीकृष्ण ने गान्धर्व-विवाह कर लिया है। फिर उसी समय राधा से भी पूछ बैठती है कि सखि, क्या मेरे स्वप्न

---

४१. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**, अं-३, पृ-३४

कंचुकी—आर्य बभ्रुमुख ! पुरा किल कालयवनविजयाय गच्छता
आर्यपुत्रेण संकल्पितमासीत् भगवति ! भवानि !
रैवतककन्दरकदम्बवनवासिनि ! प्रतिनिर्वर्तनानन्तरमेव
मया निखिलपुरन्ध्रिजनानुयातदेवीजनेन तव यात्रामहोत्सवः
कारयितव्य इति।

४२. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-१, पृ-११

प्रियालापः—एतेषु मधुवासरेषु वृषभानुपुरतो भानुनन्दि-
नीमज्जनव्यपदेशेन मदनमहोत्सवं मानयितुं
प्रभाते राधाप्रमुखः कुमारिकाजनो वृन्दाटवीनिकुंज-
वीथिकासंनिवेशमागच्छति ॥

४३. मथुरादास, **वृषभानुजा**, अं-१, पृ-३६

विद्रुमलता—......अहमपि आज्ञप्तास्मि भगवत्या वृन्दया यथा
वत्से विद्रुमलते ! गच्छ शीघ्रम्। कृष्णस्य गोकुलतः
गोधूलिमथ केशितीर्थतः जलमुसीरादिकं च समाहर।

का कोई विशेष फल हुआ है ? इस प्रकार श्रीकृष्ण और राधा के प्रणय और परिणय की कथा पर आश्रित प्रस्तुत नाटिका का वातावरण धार्मिक लोकाचार से व्याप्त है ।

भारतीय प्राचीन साहित्य में जिन कतिपय रूढ़ प्रक्रियाओं अथवा विषयों को कविप्रसिद्धि की कोटि में गिनाया गया है उनका समावेश नाटिका में भी किया गया हैं । इनमें दोहद-क्रिया का प्रमुख स्थान है ।[४४] यों तो किसी गर्भवती स्त्री की किसी विशेष वस्तु को पाने की अभिलाषा को दोहद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । इसके अतिरिक्त किसी युवति के द्वारा अशोक या बकुलवृक्ष में पुष्पोद्गम कराने की प्रक्रियाविशेष को भी दोहद कहा जाता है । कालिदास ने गर्भवती सुलक्षणा की स्पृहा विशेष को दोहद कहा है ।[४५] भवभूति ने भी उत्तररामचरित के प्रथम अंक में गर्भवती सीता की पवित्रसलिला भागीरथी में पुनः अवगाहन करने की इच्छा को दोहद शब्द से अभिहित किया है ।[४६] कवि-ख्याति के अन्तर्गत वृक्ष को बलात् पुष्पित कराने वाले दोहद को भारतीय रूपकों में विशेष महत्त्व दिया गया है । अशोक वृक्ष की दोहद-पूर्ति युवति के पादाघात से मानी गयी है तथा बकुल की दोहद-पूर्ति तब होती है जब कोई युवति अपने मुख में मद्य भर कर उसपर फेंकती है ।[४७] सम्भव है कि युवतियों के चरणप्रहार से अशोक वृक्ष को तथा युवतिमुखवासित मदिरा से बकुलवृक्ष को प्रसन्नता होती होगी जिसे व्यक्त करने के लिए ये असमय में भी फूलों से लद जाते होंगे । इन वृक्षों को अकालपुष्पित कराने का एक अन्य विधान का भी उल्लेख है । किसी युवती के

---

४४. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**, पृ-५१७

पादाघातादशोकं विकसति ७/२४

४५. कालिदास, **रघुवंश**

उपेत्य सा दोहददुःखशीलतां यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम् ।
न हीष्टमस्य त्रिदिवेऽपि भूपतेरभूदनासाद्यमधिज्यधन्वनः ।।
क्रमेण निस्तीर्य च दोहदव्यथां प्रचीयमानावयवा रराज सा ।
पुराणपत्रापगमादनन्तरं लतेव संनद्धमनोज्ञपल्लवा ।। ३/६,७

४६. भवभूति, **उत्तररामचरित**, अं-१, पृ-२५

सीता—आर्यपुत्र ! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहदाया
मम विज्ञपनीयमस्ति ।

४७. **संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ**, पृ-५३७

दोहद=गर्भवती स्त्री की रुचि, वृक्ष की अभिलाषा ।

द्वारा वीणा आदि मधुर वाद्य-यंत्र[४८] के वादन से भी वृक्ष की दोहद-पूर्ति हो सकती है। इस प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि दोहद-पूर्ति का कार्य जिस किसी सामान्य युवती से नहीं कराया जाता। कभी-कभी तो यह कार्य किसी अज्ञातकुलशील वाली युवती की वंश-परीक्षा की दृष्टि से भी करवाया जाता है। मालविकाग्निमित्र में बड़ी महारानी अपनी अस्वस्थता के कारण अशोक की दोहद-पूर्ति छोटी रानी इरावती से न करवाकर मालविका से सम्पन्न करवाती है ताकि उसके कुल और शील की जांच हो जाय। इसप्रकार दोहद की क्रिया पादप्रहार, मुखवासित मदिरा के सिंचन और वाद्य यंत्र वादन तीन विधियों से सम्पन्न होती है। इस प्रसंग में भारतीय समाज में प्रचलित वृक्षपूजा के महत्त्व पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। भारत में आगमन के साथ ही आर्यों का संघर्ष मुख्यतः दो वर्गों से हुआ होगा। एक वर्ग द्रविड़ों का रहा होगा जो संघर्ष में आर्यों से पराजित हुए और दक्षिण भारत की ओर बस गए। दूसरा वर्ग गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि का रहा होगा। ये जातियां सौन्दर्य प्रिय और ललितकलाओं में विशेष अभिरुचि रखने वाली रहीं। इस द्वितीय वर्ग से आर्यों का सम्पर्क सौहार्दपूर्ण रहा। इस वर्ग में अश्वत्थ, बरगद, अशोक आदि वृक्षों की पूजा पहले से ही प्रचलित रही होगी। कामदेव के उपासक होने के कारण अपने उपास्य की पूजा ये जातियां वसन्तोत्सव के रूप में विशेष प्रकार से करती रही होंगी।[४९]

यों तो कामदेव को अपदेवता की श्रेणी में परिगणित किया जाता है; क्योंकि वह अपने पुष्पबाण का लक्ष्य ऋषि-मुनि, देव-दानव सभी को बनाता है। कालक्रम से उक्त जातियों के साथ आर्यों का वैवाहिक सम्पर्क हुआ होगा। इस वर्ग की कन्याएं अपने पितृकुल से अनेक संस्कार लेकर आर्यों के समाज में गृहलक्ष्मी बनकर आयी होंगी। इन संस्कारों में अशोक, अश्वत्थ आदि वृक्षों की पूजा भी सम्मिलित रही होगी।

---

४८. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-२, पृ-१९-२०

केरलिका—अलं तावत् प्रत्यायतु दोहदस्य।

....

सख्यौ—सुष्ठु आलपितं प्रियालकापदेशेन तोण्डीरचन्द्रानुरागदर्श
नाभ्यर्थनम्।
यद्येष अत्र प्रियसख्याः रसनावेदार्थी शृणोति तदा
स एव अस्याः संशयच्छेदी भवतु।

....

किं बहुना प्रियालः एव शक्ष्यति तव मनोरथसिद्धिम्।

४९. द्विवेदी, ह०प्र०, **अशोक के फूल**

वसन्तोत्सव में कामदेव की पूजा और पुष्परहित अशोक का दोहदसंस्कार वैभव और विलास की पृष्ठभूमि राजकीय परिवारों में अधिक प्रशस्य माना गया होगा जिसकी चर्चा संस्कृत के अधिकांश रूपकों में पायी जाती है। एक बात और, उत्सव में वृक्ष-पूजा के विधान के साथ इस संस्कार या विश्वास का जमना कि ये वृक्ष अपदेवता के आश्रय होते हैं, स्वाभाविक लगता है। कदाचित् पादप्रहार को इसी दृष्टि से निषिद्ध प्रक्रिया मानते हुए वीणा आदि वाद्य-यंत्रों के वादन द्वारा इनकी दोहदपूर्ति का प्रचलन नारी समाज में होने लगा होगा। जैसा कि अठारहवीं शताब्दी की रचना मलयजा-कल्याण में देखा जाता है।

जहां तक प्रस्तुत अध्ययन के लिए संकलित नाटिकाओं में वर्णित दोहद की चर्चा का प्रश्न है, मालविकाग्निमित्र के पाँचवें अंक में कालिदास ने इस प्रसंग को उठाया है।[५०] दोहद के सम्बन्ध में रत्नावली नाटिका में एक विचित्र बात देखने को मिलती है। अकालपुष्पोद्गम की क्रिया मन्त्र आदि के द्वारा भी सम्पन्न करायी जाती है। कोई पुरुष भी मन्त्रज्ञान के बल से दोहदपूर्ति कर सकता है।[५१] उदयन ने श्रीपर्वत के श्रीखण्डदास नामक किन्हीं धार्मिक व्यक्ति[५२] से दोहदपूर्ति कराने की शिक्षा ग्रहण की है। फलस्वरूप नवमल्लिका की दोहदपूर्ति कर महारानी वासवदत्ता को ईर्ष्या से भर दिया

---

५०. कालिदास, **मालविकाग्निमित्र**, अं-५ पृ-३५४

धारिणी—(जनान्तिकम्) यन्मयाशोकदोहदनियोगे मालविकायै प्रतिज्ञातम्, तदस्या अभिजनं च निवेद्य मम वचनेनेरावती-मनुनय सत्यान्न विभ्रंशयितव्येति।

५१. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-२, पृ-७१

राजा—वयस्य, कः सन्देहः? अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः।

५२. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-२, पृ-५४

निपुणिका—अद्य किल भर्त्ता श्रीपर्वतादागतस्य श्रीखण्डदासनामधेयस्य धार्मिकस्य सकाशादकालकुसुमसंजननदोहदं शिक्षित्वात्मनः परिगृहीतां नवमालिकां कुसुमसमृद्धिशोभितां करिष्यतीति…।

है; क्योंकि उदयन की फूलों से लदी नवमल्लिका के ठीक सामने ही महारानी की माधवीलता दोहद पूर्ति के अभाव में मन मारे उदास खड़ी है।[५३]

नाटिकाओं के पर्यालोचन से तत्कालीन समाज में विवाहपद्धति के सम्बन्ध में भी बहुत सी बातों का पता चलता है। नाटिका के द्वारा नायिका के विवाह का उसके पतिगृह में ही सम्पन्न होने का संकेत मिलता है। नाटिका के कथानक का यह प्रमुख तत्त्व है कि नायक ज्येष्ठा के भय से छिप-छिपकर नायिका से मिले। अतः जब तक नायक के अन्तःपुर में नायिका कौमारावस्था में ही नहीं आ जाती तब तक भयभीत अवस्था में नायिका से नायक का मिलना, महारानी की नायक एवं नायिका पर कोपभरी मुद्रा, नायक के द्वारा ज्येष्ठा देवी का अनुनय, नायिका का काराबद्ध किया जाना आदि प्रसंगों का समावेश इतिवृत्त में नहीं किया जा सकता। वृषभानुजा ही ऐसी नायिका है जो पितृ-गृह में रहते ही नायक श्रीकृष्ण के सम्पर्क में आती है। मलयजाकल्याण की नायिका भी अपने पिता के देश मलयवन में नायक का परिचय प्राप्त कर लेती है, किन्तु वहां भी भय, कोप, मान आदि की विवृति के लिए नाटिकाकार को प्रयास करना पड़ा है। इसके लिए नायक के पूरे अन्तःपुर को मलयवन में बने शिविर में लाकर रखना पड़ा है। सम्भव है तत्कालीन समाज में पतिगृह और पितृगृह इन दोनों स्थानों में से कहीं भी कन्या का विवाह सम्पन्न होता था।

विवाह के सम्बन्ध में दूसरा तथ्य जो ध्यान आकर्षित करता है वह यह है कि नाटिका की नायिका में कोई ऐसा अलौकिक गुण होना चाहिए जिसके कारण नायक नायिका से विवाह करने को स्वयं उत्सुक हो जाए। मन्त्री आदि को भी कोई ऐसी व्यवस्था करनी या करानी चाहिए जिससे नायिका राजा के सम्पर्क में आ जाय। साधारणतया किसी आकस्मिक घटना के द्वारा भी ऐसी व्यवस्था करने का प्रयास नाटिका में किया जाता है। श्रीहर्ष की रत्नावली ही एक ऐसी नाटिका है जिसमें नायिका के पिता सिंहलनरेश उदयन के अन्तःपुर में अपने विश्वस्त सेवक के साथ उसे भेजते हैं। समुद्र पार करते समय पोतभंग की दुर्घटना होने पर भी भाग्यवश वह किसी तरह उदयन की सभा में पहुंचा दी जाती है। तत्कालीन समाज में पतिगृह में ही कन्या का विवाह सम्पन्न होने की व्यवस्था थी, यह एकान्ततः मान्य नहीं हो सकता। कन्या

---

५३. श्रीहर्ष, रत्नावली

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरतैरातन्वतीमात्मनः।
अद्योद्यानलतामिमां समदनां गौरीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन्कोपविपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम्॥ २/४

के सम्बन्ध में सारे रहस्य प्रकट हो जाने के पश्चात्, पुनः पितृ-गृह में नायिका एवं नायक को बुलाकर पिता के हाथों विधिवत् कन्यादान करवाया जाता था। यह स्वीकार किया जा सकता है कि पति अथवा पिता के घर में विवाह सम्पन्न होने के संबन्ध में तत्कालीन समाज का दृष्टिकोण उदार रहा है।

भारतीय परम्परा में विवाह अष्टविधि माना गया है।[५४] (१) वेद पढ़े हुए सदाचारी वर को स्वयं बुलाकर उसकी पूजा करके वस्त्र-भूषण आदि से वर-कन्या दोनों को अलंकृत करके जो विवाह सम्पन्न होता है उसे ब्राह्मविवाह कहते हैं। (२) ज्योतिष्टोमादि यज्ञ में विधिपूर्वक कर्म करते हुए ऋत्विक् के लिए वस्त्र अलंकार आदि से अलंकृत कन्या का दान करना देवविवाह है।[५५] (३) आर्ष विवाह में वर से धर्मपूर्वक एक गो-मिथुन अथवा गाय-बैल में से कोई एक ग्रहण किया जाता है। यज्ञ आदि धर्म कार्य करने के लिए अथवा कन्या को देने के लिए यह शुल्क वर से लिया जाता है।[५६] यह कन्या का मूल्य नहीं है और न कन्या का पिता इसे धनलाभ की दृष्टि से ही लेता है। इस प्रकार केवल धार्मिक कार्य के लिए वर से पशु लेकर कन्यादान करना आर्य विवाह है। (४) जिस विवाह में कन्या का पिता केवल यह कहे कि तुम दोनों साथ-साथ धर्माचरण करो, और वस्त्रालंकार आदि से वर-कन्या को सत्कृत करके कन्यादान करे उसे प्राजापत्य विवाह कहा जाता है। (५)कन्या के पिता, चाचा आदि को अथवा कन्या को ही यथाशक्ति धन देकर स्वेच्छा से कन्या को स्वीकार किया जाए तो उसे आसुर विवाह कहते हैं। यह निकृष्ट कोटि का है, क्योंकि इसमें एक प्रकार से कन्या का विक्रय हो जाता है। (६) गान्धर्व-विवाह में युवक और युवती के परस्पर आकर्षण से स्वेच्छया संयोग होता है। यह आवश्यक नहीं कि गान्धर्व विवाह के पश्चात् कन्या अपने पति के घर में रहे ही। इसके प्रमाण हैं कि ऋषियों ने कन्याओं से

---

५४. मनुस्मृति

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ ३/२१

५५. मनुस्मृति

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत्।
अल्पोऽप्येवं महान्वाऽपि विक्रयस्तावदेव सः॥ ३/५३

५६. मनुस्मृति

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते॥ ३/२९

विवाह किया तथा वे स्वतंत्र जीवन बिताती रहीं, जैसे मेनका आदि। गान्धर्व विवाह को समाज की स्वीकृति प्राप्त थी तथा इससे उत्पन्न संतान को उत्तराधिकार था जैसे शकुन्तलापुत्र भरत को। (७) कन्या के पक्ष वालों को मारकर या उनका अंगभंग कर रोती-चिल्लाती कन्या को बलात् हरण कर लाना राक्षस विवाह माना गया है। (८) सोयी हुई, मद से व्याकुल, अपने शील की रक्षा करने में असमर्थ कन्या के साथ सहवास करना पैशाच विवाह है। तथा इसकी अत्यन्त निन्दा की गयी है।

जहां तक नाटिकाओं का प्रश्न है, अधिकांश में नायक और नायिका का विवाह विधिवत् सम्पन्न हुआ है। विचारणीय यह है कि इस प्रकार के विवाह को किस कोटि का माना जाय ? प्राचीन या आधुनिक भारत में, प्राजापत्य विवाह को ही श्रेयस्कर माना गया है। प्राजापत्य विधि में सम्पूर्ण दाम्पत्य जीवन की स्वीकृति का आश्वासन कन्या और वर दोनों ओर से कन्या के पिता को अग्नि साक्ष्य में मिल जाता है। प्राजापत्य विवाह को स्पष्ट करते हुए मनु ने लिखा है कि यह विवाह तभी यथार्थ में प्राजापत्य माना जाएगा जब कन्या का अभिभावक वर और वधू को सहधर्मचारण का वचन द्वारा आदेश दे और कन्यादान को पवित्र मानते हुए कन्या को वर के हाथों में समर्पित करे।[५७] नाटिका की नायिका के विवाह को इस श्रेणी में रखा ही नहीं जा सकता; क्योंकि यहां की पृष्ठ-भूमि ही अन्य प्रकार की है। प्राजापत्य विधि से विवाहिता नायिका ही सहधर्मचारिणी हो सकती है और इस पद पर ज्येष्ठा देवी पहले से ही विराजमान रहा करती है। नाटिका में सम्पन्न विवाह को ब्राह्म, देव या आर्ष श्रेणी में भी परिगणित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये विधियां प्रागैतिहासिक काल में ही प्रचलित रही होंगी। जहां तक गान्धर्व विवाह का प्रश्न है उसका संकेत मथुरादास विरचित वृषभानुजा (१६००-१७००) के अतिरिक्त अन्य किसी नाटिका में नहीं है। सखी चम्पकलता नायिका राधा की खिन्न अवस्था को देखकर तमालिका से कहती है कि जान पड़ता है, प्रियसखी ने श्री कृष्ण के साथ गान्धर्वविवाह कर लिया है।[५८]

---

५७. मनुस्मृति

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः॥ ३/३०

५८. मथुरादास, वृषभानुजा, अं-४.पृ-५८

चम्पकलता—(राधां निरूप्य जनान्तिकम्) हला तमालिके,
तर्कयामि अस्याः प्रियसख्याः कृष्णेन सह गान्धर्वविवाहः
संवृत्तः।

दशम शताब्दी की रचना विद्धशालभंजिका नाटिका में महारानी परिहास करने के लिए विदूषक चारायण का कृत्रिम विवाह अपनी दासी की बेटी मेखला की पुत्री अम्बरमाला के साथ अन्तःपुर में ही करवाती है। इसमें लगभग सभी प्रमुख उन विधियों का उल्लेख है, जिनका प्रचलन स्मार्तमतावलम्बी द्विज-कुल में आज भी देखा जाता है। मेखला विदूषक से रक्त परिधान धारण करने और वधू के साथ तारामेलन करने का आग्रह करती है।[५६] महारानी मेखला से कहती है कि जल्दी भांवरे दिलवाओ ताकि प्रज्वलित अग्नि में लाजांजलि पड़ सके।[६०] फिर विदूषक नयी दुल्हन से कहता है है कि ध्रुव और सप्तर्षियों को देखो।[६१] इस प्रकार लाल वस्त्र पहनने, वर-बधू के तारा-मेलन, भांवरे देने, खीलों की आहुति, दाम्पत्य-प्रेम की स्थिरता के सूचक ध्रुव तारा के दर्शन आदि के उल्लेख से सूचित होता है कि तत्कालीन समाज में सामान्यतया इसी स्मार्तविधि से विवाह कार्य सम्पादित कराया जाता रहा होगा। इस नाटिका में और भी बातों का उल्लेख है। यथा विदूषक महामन्त्री से कहता है कि प्रियमित्र (राजा)और मृगांकावली की कलाई में बंधे लाल डोरे आपको नहीं दिख रहे हैं ?[६२] वर के हाथ में कन्या के हाथ को रखकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक कन्यादान करना विशुद्ध आर्य-प्रथा है। विदूषक महारानी की ममेरी बहन कुवलयमाला का हाथ पकड़कर राजा

---

५६. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-२ पृ-४०

(तथा विधाय शिरसि चाघ्राय) आर्य चारायण !

उपरि धेहि रक्तांशुकं कुरु तारामेलनम्।

६०. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-२, पृ-४०

देवी—मेखले ! त्वरितं दापय भ्रामर्यः येन प्रज्वलिते हुतवहे लाजांजलिं मुंचति।

६१. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-२ पृ-४०

विदूषकः—अयि द्वितीयब्राह्मणि, ध्रुवं सप्तर्षिमण्डलं च पश्य।

६२. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-४, पृ-११४

विदूषक :—किं न पश्यसि प्रकोष्ठसंस्थितरक्तसूत्रकंकणं प्रियवयस्यस्य मृगांकावल्याश्च।

के हाथ में रखकर कहता है कि साले की पत्नी तो आधी पत्नी होती है और ऐसा करके मैं इसे आपकी पूरी भार्या बना देता हूं।[६३]

जहां तक विवाह-काल में कन्या की आयु का प्रश्न है, इन नाटिकाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि तारुण्य-प्राप्ति के पश्चात् ही कन्या का विवाह हुआ करता है। नाटिकाओं के कथानक का अनुरोध मानते हुए ये कन्याएं युवावस्था में ही नायकों के समक्ष आती हैं, अन्यथा नायिका की कामनाओं का वर्णन सम्भव ही नहीं हो सकता। नायक और नायिका दोनों के समान रूप से परस्पर तारुण्य सुलभ आकर्षण से अभिभूत होने की परिणति नाटिका में विवाह की व्यवस्था के रूप में होती है। हाँ, एक अपवाद भी देखा जाता हैं। प्रियदर्शिका नाटिका की नायिका आरण्यका जब अपने पिता के कंचुकी द्वारा उदयन की सभा में लायी जाती है तो उस समय के वार्तालाप से ऐसा प्रतीत होता है कि वह अभी पूर्णयौवना नहीं हैं। यशोधरा नाम की अन्तःपुर की दासी से उदयन कहते हैं कि [६४] तुम ही इस कन्या को देवी वासवदत्ता के समक्ष पहुंचा दो और उनसे कहो कि ललितकला की शिक्षा इसे दिलवायें और जब यह विवाह योग्य हो जाय तो मुझे सूचित करें। सभास्थली में इस कन्या को लाने वाला कंचुकी कहता है कि इस कन्या के पिता की इच्छा थी कि इसे वत्सराज को ही सौंपा जाय।[६५] इसी प्रकार रत्नावली, मृगांकावली, कर्णसुन्दरी, उषा, पारिजातमंजरी, चन्द्रकला, कुवलयावली, राधा आदि सभी नायिकाओं का विवाह तारुण्य-प्राप्ति के पश्चात् ही कराया जाता है। रत्नावली,

---

६३. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-४, पृ-११६

विदूषक :—(कुवलयमालाया हस्तं गृहीत्वा राजहस्ते विनिवेश्य) एषा श्यालभार्या अर्धभार्येति बुध्यते, भवतः पुनः सकलभार्या संवृत्ता।

६४. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-१ पृ-१७

राजा—यशोधरे, गच्छ गच्छ! त्वमेव वासवदत्तायाः समर्पय वक्तव्या च देवी—'भगिनीबुद्ध्या त्वयैव सर्वदा द्रष्टव्या। गीतनृत्तवाद्यादिषु विशिष्टकन्यकोचितं सर्वं शिक्षयितव्या यदा वरयोग्या भविष्यति तदा मां स्मारय' इति।

६५. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-४, पृ-६६

कंचुकी—यद्यपि तुभ्यं प्रतिपादितायाः प्रियदर्शिकाया अस्मद्दुहितुः परिभ्रंशान्न मे सम्बन्धो जात इति……

मृगांकावली, कर्णसुन्दरी, उषा, पारिजातमंजरी, चन्द्रकला, प्रियदर्शिका, कुवलयावली, राधा आदि सभी नायिकाओं की कामदशाओं का वर्णन किया गया है।[६६] और लगभग सभी नायिकाओं के विरह-ताप की शान्ति के लिए शीतलोपचार का संकेत है। इन विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राप्तयौवना होने पर ही कन्या के विवाह का प्रचलन है।

नारी की ललितकला की शिक्षा के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। मंच पर नारी के अभिनय करने की परम्परा श्रीहर्ष के काल तक थी। प्रियदर्शिका नाटिका में उदयन के अन्तःपुर की नारियों द्वारा एक नाटक खेला गया है।[६७] रत्नावली की भूमिका में नाचना सूत्रधार के आग्रह पर नटी अस्वीकार करना चाहती है, क्योंकि उसकी एकमात्र पुत्री का विवाह होने जा रहा है और वह इस कारण दुःखी है।[६८] राजशेखर (दशम शताब्दी) की कर्पूरमंजरी में पारिपार्श्विक कहता है कि महाराज

---

६६. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-२, पृ-९०

राजशेखर, **विद्धशालभंजिका**, अं-३, पृ- ८१

विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, २/१

रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, ३/८,९

मदन, **परिजातमंजरी**, २/३५

विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, २/९

श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-२ पृ० ४९,५०

शिगभूपाल, **कुवलयावली**, अं ३, पृ० ३६

मथुरादास, वृषभानुजा, अं ३ पृ०३९

वीरराघव, मलयजाकल्याण, अं-३ पृ० २२

६७. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, अं-३, पृ-५७-६४

६८. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-१, पृ-१२

'''मम पुनर्मन्दभाग्याया एकैव दुहिता। सापि त्वया कस्मिन्नपि देशान्तरे दत्ता। कथमेवं दूरदेशस्थितेन भर्त्रा सहास्याः पाणिग्रहणं भविष्यतीत्यनया चिन्तयात्मापि मे न प्रतिभाति। किं पुनर्नर्तितव्यम्?

की भूमिका आर्य सूत्रधार को और महारानी की भूमिका आर्य-भार्या को करनी है।[६६] षोडश-सप्तदश शताब्दी की रचना वृषभानुजा की भूमिका में सूत्रधार के कथन से ज्ञात होता है कि मंच पर स्त्रियां अभिनय करने के लिए नहीं उतरती हैं। सूत्रधार कहता है कि मधुरप्रिय नाम का मेरा शिष्य वृन्दा का तथा रंगमंगल नाम का मेरा मित्र वनरक्षिका का नेपथ्य ग्रहण कर प्रस्तुत है।[७०]

---

६६. राजशेखर, **कर्पूरमञ्जरी**, अं-१, पृ-१२

तत् भाव ! एहि, अनन्तरकरणीयं सम्पादयावः, यतो
महाराजदेव्योर्भूमिकां गृहीत्वा आर्यं आर्यभार्या च जवनिकान्तरे वर्त्तेते ।

७०. मथुरादास, **वृषभानुजा**, पृ-४

सूत्रधारः—नन्वेष विरचितवृन्दावेषः समागत
एव ममान्तेवासी मधुरप्रियो गृहीततत्सहचरीवनरक्षिका-
भूमिकश्च सखा मे रङ्गमङ्गलः। तदावामपि गत्वा
रङ्गप्रवेशाय संनद्धीभवावः।

पुरुष-पात्र

नाटिका के पुरुष पात्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रधानपुरुषपात्र अर्थात् नायक आता है। द्वितीय वर्ग में वे पात्र परिगणित होते हैं जो नायक के प्रणय-व्यापार तथा राज्य की प्राप्ति एवं उसके संचालन में सहायक हैं। तृतीय वर्ग में वे पात्र हैं जिनका कार्य केवल आदेश पालन करना है। ऐसे पात्रों को सेवक-वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

इन तीन प्रकार के पुरुष पात्रों के अतिरिक्त नाटिकाओं में कुछ ऐसे पात्र होते हैं जिनका सम्बन्ध रंगमंच के संचालन एवं विधान से है। सूत्रधार तथा नटसदृश पात्र इस कोटि के हैं। ये पात्र रूपक की कथावस्तु को अभिनीत करने में कोई भाग नहीं लेते हैं। इस दृष्टि से इन्हें रूपक के पात्रों के रूप में परिगणित नहीं करना चाहिए। पुरुष पात्रों के विवेचन के क्रम में ऐसे पात्रों पर विचार करना अपेक्षित नहीं माना गया है।

नायक

उपरिनिर्दिष्ट प्रथम वर्ग के पुरुष पात्रों में रत्नावली और प्रियदर्शिका नाटिका के उदयन, विद्धशालभंजिका का विद्याधरमल्ल, कर्पूरमंजरी का चन्द्रपाल, कर्णसुन्दरी का कर्णराज, उषारागोदया का अनिरुद्ध, पारिजातमंजरी का अर्जुनदेववर्मन्, चन्द्रकला का चित्ररथदेव, कुवलयावली, वृषभानुजा और विवेकचन्द्रोदय के श्रीकृष्ण तथा मलयजाकल्याण का देवराज आते हैं।

अपने व्यापार के अनुसार ये पात्र (**नायक**)पुनः द्विविध होते हैं। एक प्रकार का नायक वह है जो राज्य की प्राप्ति के लिए स्वयं सक्रिय नहीं होता। उदयन, चन्द्रपाल कर्णराज, देवराज, विद्याधरमल्ल, अर्जुनदेववर्मन्, चित्ररथदेव आदि ऐसे नायक हैं जिन्होंने अपना समय केवल नायिका से प्रेम करने में बिताया है। कनिष्ठा नायिका की प्राप्ति किस प्रकार हो इसी के लिए वे सदा व्यस्त रहते हैं।

द्वितीय प्रकार का नायक वह है जो राज्य अथवा नायिका की प्राप्ति के लिए स्वयं भी युद्धरत होता है, अपने शौर्य-पराक्रम का परिचय देता है। जिस पुरुषार्थ का

परिचय कृष्ण, जरासंध, रुक्मी आदि देते हैं, उदयन, चन्द्रपाल, देवराज, कर्णराज, विद्याधरमल्ल सदृश नायकों में उसकी झलक तक देखने को नहीं मिलती।

नाटिका के इस प्रधान पुरुषपात्र अर्थात् नायक का विवेचन सिद्धान्त और प्रयोग दोनों की दृष्टि से करना अपेक्षित है।

आचार्यों ने नायक की प्रकृति को ध्यान में रखकर इसके चार प्रकार बतलाये हैं—धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत।[1] इसके अतिरिक्त नायक को उत्तम, मध्यम, अधम वर्गों में रखा गया है।[2] पुनः नायिका के प्रति प्रवृति के अनुसार चार प्रकार दक्षिण, शठ, धृष्ट, तथा अनुकूल का उल्लेख है।[3] दक्षिण नायक को अनेक नायिकाओं से तुल्य अनुराग होता है।[4] दूसरी नायिका को पाने के लिए नायक के प्रयत्न को देख पहली नायिका को कष्ट होता रहता है; किन्तु पूर्व नायिका के प्रति उसका अनुराग समाप्त नहीं होता। नाटिका का नायक इसी कोटि में आता है। वह न तो शठ हो सकता है और न धृष्ट ही, क्योंकि इन दोनों प्रकार के नायकों को अपनी पूर्व की नायिका के प्रति अनुराग नहीं होता।

नाटिका का नायक धीरललित[5] होता है। नायक के चारों भेद (धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोदात्त, धीरोद्धत) में धीर विशेषण का प्रयोग किया गया है। आचार्यो के अनुसार अत्यधिक विपत्ति में न घबड़ाना ही धीर होता है।[6] पुनः धीर का अर्थ धी

१. धनञ्जय, **दशरूपक**, पृ-७९

भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्।

२. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, सू-२३२ (पृ-२६९)

उत्तमा मध्यमा नीचा प्रकृतिर्नृस्त्रियोस्त्रिधा।

३. धनञ्जय, **दशरूपक**, पृ-८७

स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वां प्रत्यन्यया हृतः २/६।

४. धनञ्जय, **दशरूपक**, पृ-८८

दक्षिणोऽस्यां सहृदयः

५. शिंगभूपाल, **रसार्णवसुधाकर**, पृ-१५

निश्चिन्तो धीरललितस्तरुणो वनितावशः १/७५

६. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, पृ-२५

धीरो धैर्यं महाव्यसनेऽप्यकातर्यं विशेषणं येषां ...

तुल०, शिंगभूपाल, रसार्णवसुधाकर, पृ-२४१

इष्टार्थसिद्धिपर्यन्ता चिन्ता धीरिति कथ्यते,

अर्थात् बुद्धि से सम्पन्न होना बताया गया है। धीरललित में कातरता नहीं होती। धीरललित नायक को कला में आसक्ति होती है।[७] अर्थात् गीत वाद्य आदि कलाओं में अभिरुचि रखता है। वह राज्य का भार मंत्री आदि को सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है। उसके आचरण में क्रूरता नहीं वल्कि उसका स्वभाव कोमल होता है। धीरललित नायक राजा अर्थात् क्षत्रिय होता है।

आचार्यों ने उत्तम, मध्यम, नीच को स्पष्ट करते हुए कहा है कि उत्तम पात्र, विपत्तिग्रस्त की रक्षा करता है, वह सबके अनुकूल होता है; वह लोक व्यवहार में निपुण शास्त्रविचक्षण, धीर-गम्भीर, पराक्रमी तथा न्याय के प्रति आग्रही होता है।[८]

मध्यमप्रकृति का पात्र मध्यम अर्थात न अधिक उत्कृष्ट और न अधिक अपकृष्ट गुणों से युक्त होता है।[९] नीच प्रकृति पात्र पाप कर्म में निरत तथा कृतघ्नता आदि दुर्गुणों से युक्त होता है।[१०]

आचार्यों के अनुसार उत्तम, मध्यम, नीच वर्गों में से प्रत्येक प्रकृति के पुनः अपने-अपने गुणों के तारतम्य से तीन-तीन प्रकार सम्भव है।[११]

किसी रूपक के सभी पात्रों का उत्तम, मध्यम, नीच इन वर्गों में विभाजन तो सम्भव दीखता है, पर नायक के प्रत्येक भेद धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त तथा धीरोद्धत का उत्तम, मध्यम, नीच ये तीन प्रकार मानना आलोचनीय प्रतीत होता है। धीरोद्धत, नायक नीच वर्ग का ही हो सकता है तथा धीरोदात्त उत्तम वर्ग का। इस प्रकार प्रकृति

---

७. धनञ्जय, **दशरूपक**, पृ-७६

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।

८. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**,—(सू-२३३) पृ-३६०

शरण्यो दक्षिणस्त्यागी लोक-शास्त्रविचक्षणः।
गाम्भीर्य-धैर्य-शौण्डीर्य-न्यायवानुत्तमः पुमान्॥

९. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, सू(२३४) पृ-३७०

मध्यो मध्यगुणः

१०. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, सू(२३५) पृ-३७०

नीचः पापीयान् पिशुनोऽलसः।
कृतघ्नः कलही क्लीवः स्त्रीलीलो रूक्षवाक् जडः॥

११. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, सू(२३२) पृ-३६९

एकैकापि त्रिधा स्वस्वगुणानां तारतम्यतः

के अनुसार प्रत्येक नायक का तीन प्रकार उत्तम-मध्यम-नीच होना सम्भव नहीं, क्योंकि आचार्यों के स्वरूप-निरूपण के अनुसार धीरोदात्त 'नीच' नहीं हो सकता और न धीरोद्धत 'उत्तम'।

उत्तम, मध्यम, नीच का अर्थ अगर अपने-अपने वर्ग के गुणों के आतिशय्य या न्यूनता से है तो यह सम्भव है, पर वैसी स्थिति में दो विन्दुओं पर विचार करना अपेक्षित होगा। एक तो ऐसी स्थिति में 'नीच' की परिभाषा बदलनी पड़ेगी। धीरोदात्त, उत्तम, मध्यम तथा अधम से भी निम्न कोटि का हो सकता है, पर उसे लक्षण-ग्रन्थों में दी गयी परिभाषा के अनुसार 'नीच' कहना अनुचित होगा। दूसरे धीरोदात्त या धीरोद्धत का मध्यम-नीच के रूप में वर्गीकृत होना रचयिता की कारयित्री प्रतिभा के अभाव का द्योतक होगा।

वस्तुतः उत्तम-मध्यम-नीच यह त्रिविध वर्गीकरण विषयिगत है। अतः इस वर्गीकरण की सार्थकता सन्दिग्ध है। दूसरे, जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, नायक को सदा सर्वातिशायी पात्र होना चाहिए। अगर गुणों के तारतम्य के आधार पर नायक उत्तम, मध्यम या नीच हो तो नायक की सर्वातिशायिता निर्दुष्ट रह पायगी तथा यह एक प्रकार से नाट्यकार की अक्षमता मानी जाएगी।

आचार्यों ने नायक के स्वरूप को स्पष्ट करने में ऐकमत्य का परिचय नहीं दिया है। सागरनन्दी के अनुसार नायक सर्वगुणसम्पन्न तथा कथाव्यापी होता है।[१२] भोजराज की मान्यता है कि नायक की ख्याति होनी चाहिए अर्थात् रूपक के प्रत्येक अंग की घटनाओं में उसका प्रभाव परिलक्षित होना चाहिए।[१३] रामचन्द्रगुणचन्द्र के अनुसार नायक व्यसनी नहीं होता है तथा प्रधान फल का भोक्ता वही होता है।[१४] शिंगभूपाल का विचार है कि नायक प्रधान रस का आश्रय होता है।[१५]

---

१२. सागरनन्दी, **नाटकलक्षणरत्नकोष**, पृ-१०३

तेषु सर्वगुणोपेतः कथाव्यापी च नायकः।

बीजविन्द्वादिसंवलितस्य नाटकस्य नाट्यम् अन्तं नयतीति नायकः

१३. भोजराज, **सरस्वतीकण्ठाभरण**, पृ-५५७

१४. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, सू(२३६) पृ-३७२

प्रधानफलसम्पन्नोऽव्यसनी मुख्यनायकः।

१५. शिंगभूपाल, **रसार्णवसुधाकर**, पृ-८

स्वच्छस्वादुरसाधारो वस्तुच्छायामनोहरः।

सेव्यः सुवर्णनिधिवद् नाट्यमार्गस्य नायकः॥ १/५६

इस प्रकार एक मत के अनुसार नायक मुख्यरसाश्रयी होता है। दूसरे मत के अनुसार नायक फलभोक्ता होता है। तीसरे मत के अनुसार नायक कथाव्यापी होता है तथा कथावस्तु को उपसंहार की ओर ले जाता है। इस प्रकार नायक के स्वरूप-निरूपण के क्रम में कथाव्यापित्व, फलभोक्तृत्व तथा रसाश्रयित्व इन तीनों का उल्लेख किया गया है। ऐसा सम्भव है कि नायक के ये तीनों अभिलक्षण एक ही पात्र में पाये जायँ, यथा अभिज्ञानशाकुन्तल के दुष्यन्त में। इसके विपरीत ऐसा भी संभव है कि ये तीनों अभिलक्षण तीन पात्रों में पाये जायें। वेणीसंहार नाटक में कथाव्यापित्व का सम्बन्ध दुर्योधन से है तो फलभोक्तृत्व का भीम से तथा मुख्यरस वीर का आश्रय दुर्योधन भीम, कर्ण, अर्जुन हैं। मुद्राराक्षस में कथाव्यापित्व तथा रसाश्रयित्व चाणक्य में है तो फलभोक्तृत्व चन्द्रगुप्त में।[१६]

वस्तुतः कथाव्यापित्व तथा रसाश्रयित्व एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। प्रायेण जो पात्र किसी रूपक की सभी घटनाओं पर प्रभावी होता है वह मुख्य रस का आश्रय भी होता है तथा नाटक के सभी अंकों में उसकी व्याप्ति होती है। इस प्रकार जो पात्र कथाव्यापी या रसाश्रयी होता है उसे ही नायक मानना चाहिए।

नाटिका के लक्षण-निरुपण के क्रम में कहा गया है कि नायक अर्थात् प्रधान पुरुष पात्र राजवंशोत्पन्न हाता है। नायिका ज्येष्ठा और कनिष्ठा दो प्रकार की होती है। नाटिका के सभी व्यापार अन्तःपुर से घटित होते हैं। नायक कनिष्ठा नायिका से प्रेम करता है और इसी कारण नायक सदा ज्येष्ठा नायिका से भयभीत एवं आशंकित रहता है। नायक और कनिष्ठा नायिका के पारस्परिक मिलन में ज्येष्ठा नायिका विघ्न भी उत्पन्न करती है। परन्तु अन्त में जब ज्येष्ठा आश्वस्त हो जाती है कि इस विवाह से नायक को चक्रवर्त्तित्व या इसी प्रकार का कुछ लाभ होगा तो वह कनिष्ठा नायिका के साथ नायक के विवाह के लिए अपनी सहमति देकर सारी घटनागत कटुता भुला देने का प्रयास करती है।

आचार्यों के अनुसार नाटिका 'स्त्रीमहीफला' होती है।[१७] अर्थात् कन्या-प्राप्ति के माध्यम से नायक को राज्यप्राप्ति होती है। इस प्रकार नाटिका के नायक को कनिष्ठा नायिका की उपलब्धि तो होती ही है, साथ ही वह अतिरिक्त भूभाग का स्वामी बन जाता है। कनिष्ठा नायिका से विवाह कर लेना ही राज्यप्राप्ति के लिए पर्याप्त होता है। यही कारण हो सकता है कि नाटिका में प्रायः नायक नायिका के सम्पर्क के लिए पागल बना दीख तो पड़ता है परन्तु खोये या नये राज्य को अधिगत करने के लिए वह जरा भी व्यग्र नहीं दीखता।

---

१६. कौर, इन्दर, **नायक वर्गीकरण**, कुरल पृ०-२६

१७. रामचन्द्र गुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, सू (१२१) पृ-२१३

चतुरङ्का बहुस्त्रीका नृपेशा स्त्री-महीफला।

रत्नावली और प्रियदर्शिका नाटिकाओं का नायक उदयन है। दोनों ही नाटिकाओं में नायक अपनी नायिकाओं से मिलने के लिए सचेष्ट है। उसकी पूरी शक्ति कनिष्ठा नायिका को प्राप्त करने के लिए योजना बनाने में लगी रहती है। इन नाटिकाओं में उदयन के प्रणयातुर क्रियाकलापों का ही वर्णन है।[१८] नायक का छद्मवेश धारण करना, ज्येष्ठा नायिका की अनुमति से दोनों का विवाह इन सभी का सविस्तर वर्णन है। प्रियदर्शिका नाटिका में चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में नायक उदयन वासवदत्ता को सूचित करता है कि उसके सम्बन्धी दृढवर्मा की सहायता के लिए सेनापति विजयसेन के नेतृत्व में कलिंगराज पर आक्रमण किया गया है।[१९] इस सूचना के अनन्तर ही बिजयसेन का प्रवेश होता है और वह कलिंगराज की मृत्यु तथा दृढ़वर्मा के सिंहासनारूढ़ होने का उल्लेख करता है।[२०]

स्पष्ट है कि प्रियदर्शिका तथा रत्नावली का नायक उदयन केवल शृंगारिक क्रियाओं में ही लिप्त रहता है। चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के लिए वह स्वयं कुछ भी नहीं करता। ऐसा लगता है मानो नाटिका के सिद्धान्त पक्ष को ध्यान में रखते हुए, चक्रवर्तित्व प्राप्ति का उल्लेख करके खानापुरी की गयी है।

राजशेखरविरचित 'कर्पूरमंजरी' तथा 'विद्धशालभंजिका' के नायक चन्द्रपाल और विद्याधरमल्ल उदयन की कोटि के ही हैं। विद्धशालभंजिका में विद्याधरमल्ल, मृगाङ्कावली और कुवलयमाला की प्रणयकथा वर्णित है। लाट देश के राजा चन्द्रवर्मा अपनी पुत्री मृगाङ्कावली को मृगाङ्कवर्मन् नामक बालक के वेश में रखते हैं। विद्याधरमल्ल का मन्त्री भागुरायण इस रहस्य को जानता है तथा उसे यह भी ज्ञात है कि उसके साथ जिसका पाणिग्रहण होगा वह चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा। अतः बह

---

१८. श्रीहर्ष, **रत्नावली**

मनश्चलं प्रकृत्यैव दुर्लक्ष्यं च तथापि मे।
कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ३/२

१९. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, पृ-१६६

विजयवर्मा—देव श्रूयताम्। वयमितो देवादेशात्कतिपयैरेवाहोभिरनेककरितुरगपत्तिदुर्निवारेण महता वलसमूहेन गत्वा विन्ध्यदुर्गावस्थितस्य कोसलाधिपतेर्द्वारमवष्टभ्य सेनाः समावेशयितुमारब्धाः।

२०. श्रीहर्ष, **रत्नावली**

एकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः। ४/६

मृगाङ्कवर्मन् को विद्याधरमल्ल के पास भेजवा देता है ।[21] इधर विद्याधरमल्ल कुन्तल-राजकुमारी कुवलयमाला पर आसक्त हो जाता है । इस कण्टक को दूर करने के लिए महारानी कुवलयमाला का विवाह अपने मामा के पुत्र मृगांकवर्मन् से (जो वस्तुतः राजकुमारी है) करा देना चाहती है । पुनः महारानी विद्याधरमल्ल को मूर्ख बनाने के लिए मृगाङ्कवर्मन को बालक जानकर स्त्री के वेश में अलंकृत कराकर उसके साथ विद्याधरमल्ल का विवाह करा देती है । इस प्रकार रानी स्वयं धोखा खा जाती है । अन्ततः विवश होकर रानी को कुवलयमाला का भी विवाह राजा से कर देना पड़ता है ।[22] अन्य नाटिका की तुलना में विद्धशालभंजिका की एक विशेषता यह है कि विद्याधरमल्ल को एक नायिका के स्थान पर दो-दो नायिकाओं के साथ केलिक्रीड़ा की छूट मिल जाती है । नायक दोनों नायिकाओं के साथ प्रणयनिवेदन में समय बिताता रहता है । चतुर्थ अंक के अन्त में सेनापति का पत्र आता है कि कुन्तलाधिपति वीरपाल, कर्नाटक देश के राजा, सिंहलनरेश सिंहवर्मा, पाण्ड्यनरेश, मलयनरेश, आंध्र तथा कोंकण के अधिपति सभी पर विजय प्राप्त कर ली गई है ।[23]

इस प्रकार विद्याधरमल्ल प्रेम करने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करता । उसके मन्त्री भागुरायण के अनुसार तो मृगाङ्कावली से विवाह होने के कारण ही उसके शत्रु परास्त हो गये हैं और उसे चक्रवर्ती का पद प्राप्त हो गया है ।

कर्पूरमंजरी नाटिका में भी नायक चन्द्रपाल तान्त्रिक के इन्द्रजाल द्वारा लायी गयी लाट देश के राजा चन्द्रसेन की पुत्री कर्पूरमंजरी को देखकर आसक्त हो उठता है । तृतीय जवनिका तक नायक चन्द्रपाल द्वारा नायिका कर्पूरमंजरी के सौन्दर्य का वर्णन

---

२१. राजशेखर, विद्धशालभञ्जिका,

हरदासः—तस्मात् पुत्रावकल्पच्छलत इह महाराजसन्दर्शनार्थी
तेनाद्यानायितासौ निरुपधि दधता साधु षाड्गुण्यचक्षुः ।१।६।।

२२. राजशेखर, विद्धशालभञ्जिका, अं-४, पृ-११४

देवी—पश्य दैव-दुर्विलसितानि । यन्मया केलिक्रमेणालीकं परिकल्पितं तत् सत्यत्वेन परिणतम् । भवत्वेवं तावत् । मातुलसन्देशमन्तरेणापि मया परिणायितैवैषा ।

२३. राजशेखर, विद्धशालभञ्जिका, अंक-४, पृ-११८

तत्कुल्यापहृतराज्यः कुन्तलाधिपतिर्वीरपालो नाम देवं शरणमागतो देवादेशाच्च तं पुरस्कृत्य वयं पयोष्णी-परिसरे समावासिताः । तत्र च कार्णाटो युद्धनाट्ये'''संयताः संघत्तिम् ।। ४/२३

है । ज्येष्ठा नायिका विभ्रमलेखा कर्पूरमंजर को पहरे में रखती है ।[२४] परन्तु तान्त्रिक भैरवानन्द से दीक्षित होने के पश्चात् कुछ लेने के लिए आग्रह करती है तो वह लाट देश के राजा चन्द्रसेन की कन्या घनसारमंजरी से राजा का विवाह कर देने के लिए कहता है; क्योंकि विवाह के अनन्तर वह चक्रवर्ती सम्राट् बन जायेगा ।[२५] विवाह के अनन्तर विभ्रमलेखा को विदित होता है कि कर्पूरमञ्जरी ही घनसारमञ्जरी है ।

इस प्रकार कर्पूरमञ्जरी में नायक का एक ही कार्य रह जाता है—नायिका के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करना तथा उसे पाने के लिए हर सम्भव प्रयास करना । अतिरिक्त लाभ के रूप में उसे चक्रवर्तित्व की प्राप्ति हो जाती है ।

विल्हण विरचित कर्णसुन्दरी का नायक भीमराजतनय कर्णराज है । नायक विद्याधरों के राजा की कन्या कर्णसुन्दरी को देखकर उस पर आसक्त हो जाता है तथा उस कन्या की प्राप्ति में अपनी सारी शक्ति को केन्द्रित कर बैठता है । प्रायेण कर्णसुन्दरी के प्रणय-प्रसंगों का ही वर्णन है ।

अन्य नाटिका के सदृश इस नाटिका में भी नायक कनिष्ठा नायिका से मिलने के लिए अधीर है, साथ ही उसे ज्येष्ठा नायिका (महारानी) का भय भी है ।[२६] ज्येष्ठा नायिका छद्मवेश धारण कर नायक को वंचित करती है तथा विनोदवश उसे

---

२४. राजशेखर, **कर्पूरमञ्जरी**, ज-४, पृ-१६४

जदो प्पहुदि कप्पूरमंजरी रक्खाभवणादो सुरङ्गादुआरे देवीए दिट्ठा, तदो प्पहुदितं सुरङ्गादुआरं देवीए बहलसिलासञ्चएणणीरन्धं कदुअ पिहिदं । अणङ्गसेणा कलिंगसेणा । ······रक्खाणिमित्तं पुव्वदिसि णिउत्ताओ ।

२५. राजशेखर, **कर्पूरमञ्जरी**, ज-४, पृ-१७५

अत्थि एत्थ लाटदेसे चंडसेणो णाम राजा, तस्स दुहिदा घणसारमंजरा णाम, सा देवण्णेहि आदिट्ठ, एसा चक्कवट्टिधरिणी भविस्सदित्तिः···

२६. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**;

त्वां प्रत्येव मयापि नर्म कृतमित्युक्ते कुतो मन्यसे
निर्दोषोऽहमिति ब्रवीमि सहसा दृष्टव्यलीकः कथम् ।
क्षन्तव्यं मयि सर्वमित्यपि भवेदंगीकृतोऽयं विधिः
किं वक्तुं मम युक्तमित्यनुगुणं देवि त्वमेवादिश ॥३।३२

परिहास का पात्र बनाती है।[२७] चतुर्थ अंक में महारानी स्वयं राजा को कनिष्ठा नायिका सौंप देती है। अन्त में बीरसिंह सूचित करता है कि गर्जन नरेश को पराजित कर दिया गया है।[२८] राज्य की प्राप्ति के सम्बन्ध में अन्य कोई विवरण जिसका सम्बन्ध नायक के शौर्य से हो, इस नाटिका में नहीं मिलता है।

द्वादश शताब्दी के उत्तरार्ध के कवि रुद्रचन्द्रदेवकृत 'उषारागोदया' नाटिका का कथानक श्रीमद्भागवत पुराण से लिया गया है। इसका नायक श्रीकृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध है। असुरराज वाण की कन्या उषा और नायक अनिरुद्ध की प्रेमकथा इस नाटिका में वर्णित है। यह एक ऐसी नाटिका है जिसमें न तो नायक छिपकर प्रेम करता है और न ज्येष्ठा नायिका ही नायक के प्रणय-व्यापार में किसी प्रकार का विघ्न डालती है। किन्तु अन्य नाटिका के समान इसमें भी नायक ज्येष्ठा नायिका को प्रसन्न रखने में लगा रहता है।[२९] नाटिका के सभी पात्र नायक का विवाह कराने के लिये प्रयत्नशील हैं। अन्य नाटिकाओं की तुलना में यह नाटिका इस दृष्टि से भिन्न है कि इसमें अनिरुद्ध के पितामह श्रीकृष्ण तथा वाणासुर के परस्पर युद्ध का ओजपूर्ण वर्णन है।[३०]

परिजातमंजरी नामक दो अंक वाली नाटिका की रचना गौडदेशीय गंगाधरवंशीय कवि मदन ने की है। इसमें गुर्जर नरेश जयसिंह के साथ नायक अर्जुनवर्मदेव

---

२७. विल्हण, **कर्णसुन्दरी** अं-३, पृ-३८

वकुलावली—देव्या सर्वमपि श्रुत्वाहं भणिता। अद्य मया कर्णसुन्दरीरूपेण त्वया तस्याः सखीरूपेण गत्वार्यपुत्रो वञ्चयितव्यः।

२८. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

त्रातारं जगतां विलोलवलयश्रेणीकृतैकाटवं
सोन्मादामरसुन्दरीभुजलतासंसक्तकण्ठग्रहम्।
कृत्वा गर्जनकाधिराजमधुना त्वं भूरिरत्नांकुर-
च्छायाविच्छुरिताम्बुराशिरशनादाम्नः पृथिव्याः षतिः ॥४।२२

२९. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, अं-२, पृ-२४

कुमारः—देवीरञ्जनाय तत्र गच्छामः॥

३०. रुद्रचन्द्रदेव, **उषारोगादया**,

द्राक्सैन्ये तीव्रवेगे मनुजदनुजयोश्चण्डसङ्गप्रहारै-
रुद्दण्डैर्वाहुदण्डैरशनिसममहाभीम-कोदण्डकाण्डैः।
अन्योन्याघातभग्नावरणपरिसरोद्दामवक्षःस्थलासृक
धारासंसिक्तधूलीपरिचितसमरप्राङ्गणे रेजतुस्ते ॥२/२४

के भयंकर युद्ध का वर्णन है। नायक की विजय होती है। कथासूत्र को आगे बढ़ाने के लिये नाट्यकार ने चमत्कार के लिये देवताओं के द्वारा विजयी नायक (राजा) के ऊपर पुष्पवृष्टि के क्रम में पारिजात पुष्प से एक परमसुन्दरी कन्या का रहस्यमय आविर्भाव दिखलाया है। उसी समय नायक को आकाशवाणी द्वारा सूचित किया जाता है कि इस अपूर्व सुन्दरी को अपनाकर वह भी अपने पूर्वज भोजदेव के समान धारा नगर में शासन करेगा। तत्पश्चात् नायिका की प्राप्ति के लिये नायक की आकुलता, महारानी के कुपित होने और विदूषक एवं अमात्य द्वारा उसको अनुकूल करने आदि का चित्रण है।

चतुर्दश शताब्दी की विश्वनाथ रचित चन्द्रकला नाटिका का नायक चित्ररथ है। साहित्यदर्पण जैसे लक्षणग्रन्थ के प्रणेता की लेखनी से लिखी गयी नाटिका होने के कारण पाठकों के लिये विशेष आकर्षण का केन्द्र है। इस नाटिका की रचना शास्त्रीय पद्धति पर करके भी विश्वनाथ ने इसे अपने ढंग से आकर्षक बना दिया है। बिल्हण कवि की कर्णसुन्दरी के समान नायक अथवा नायिका के विरहोद्गार, उबाने वाले पद्यमय लम्बे-लम्बे वर्णनों का बाहुल्य इसमें नहीं है। इस प्रकार घिसे-पिटे ढांचे पर लिखी गयी रचना होकर भी पाठकों के मन में विकर्षण उत्पन्न नहीं करती है। विश्वनाथ ने, जहाँ तक बन पड़ा है, भाषा को सरल और प्राञ्जल रखने का प्रयास किया है। नाटिका की तकनीकी प्रकृति ही कुछ इस ढंग की होती है कि इसमें विलक्षणता और नवीनता तभी आ सकती है जब इसका लेखक परिपक्व हो। श्रीहर्ष या अन्य पूर्ववर्ती कवियों की तुलना में विश्वनाथ ने पर्याप्त प्रौढि और मौलिकता का परिचय दिया है।

जहाँ तक कनिष्ठा नायिका के भावी पति के विवाहोपरान्त चक्रवर्ती सम्राट् बन जाने की भविष्यवाणी का प्रश्न है, विश्वनाथ ने इसमें भी कुछ नवीनता ला दी है। कहा गया है कि बालिका के परिणय के पश्चात् ही लक्ष्मी स्वयं उसके पति के समक्ष उपस्थित होकर उसे अभीष्ट वरदान देगी।[31] प्रसंगों को रूढ़ परिवेश में रखकर भी लेखक ने आकाशवाणी के द्वारा लक्ष्मी के साक्षात् आगमन की सूचना देकर कुछ नयापन लाने का प्रयास किया है।

सूत्रधार और नटी द्वारा प्रस्तुत भूमिका में चिरमुक्त कुन्दलता का त्याग किये बिना भ्रमर द्वारा मादक सुगन्ध से भरपूर रसालवल्ली के चुम्बन का उल्लेख नाटिका

---

३१. विश्वनाथ, चन्द्रकला,

यस्तु भूमिपतिभूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति।
लक्ष्मीः स्वयमुपागत्य वरमस्मै प्रदास्यति ॥१/६

के नायक के रसलोलुप स्वभाव का संकेत देता है।[३२] नायक ही क्या, पुरुषमात्र का स्वभाव भ्रमर जैसा होता है। महारानी की अन्तरङ्गदासी रतिकला तीसरे अंक में यही कहती है कि पुरुष और भ्रमर दोनों का स्वभाव ही है—नित्य नयी की ओर दौड़ना।[३३]

प्रथम अंक में विदूषक रसालक के मुख से यह भी कहला दिया है कि महाराज ने अपने सभी शत्रुओं को जड़-मूल से उखाड़ फेंका है तथा सुयोग्य सचिवों पर राज्य के शासन का भार सौंप कर अब विलास और आनन्दमय जीवन बिताना भर ही उनका लक्ष्य रह गया है। ऐसी स्थिति में राजा को अब धरणी की नहीं अपितु तरुणी की ही चिन्ता हो सकती है।[३४]

विश्वनाथ ने इस नाटिका के नायक को भी अन्य नाटिकाओं के नायकों की तुलना में अधिक विवेकशील रूप में चित्रित किया है। नायिका के लिये चिंतित व्यग्र रहने पर भी यह नायक अपनी स्थिति को भूलता नहीं है। तीसरे अंक में वह स्वयं कहता है कि संसार में मेरे विवेकपरायण होने की चर्चा है, अतः ये मेरे प्रयास निरर्थक एवं मूर्खतापूर्ण हैं।[३५] वह अपनी पत्नी महारानी को भी कुछ करना नहीं चाहता।[३६] नायक नायिका को पाने के लिये व्याकुल तो है, पर अपनी

---

३२. विश्वनाथ, चन्द्रकला,

अमुञ्चन्नपि निजां तां कुन्दलतां सुचिरमुपभुक्ताम्।
चुम्बति रसालवल्ली-मभिनवमधुगन्धिकां भ्रमरः।१/४

३३. विश्वनाथ, चन्द्रकला, अं-३, पृ-६२

रतिकला—सखि पुरुषभ्रमराणां स्वभाव एषः यत् किल नवं नवमेवानुधावन्ति।

३४. विश्वनाथ, चन्द्रकला, अं-१, पृ-६

विदूषकः—उत्पाटिताशेषकण्टकस्य राज्यपालननियुक्तधीसचिवस्य कलितरतिमात्रकौतूहलस्य न खलु ते धरणीचिन्ता किन्तु तरुणीचिन्ता।

३५. विश्वनाथ, चन्द्रकला, अं-३, पृ-५०

राजा—आः कथं नाम लोकेषु विवेकितया प्रथितिभासादयितापि मया निष्फलप्रयासोऽयमनुभूयते (विचिन्त्य) तथाहि—
मूढानां बितथप्रयासपटुता।

३६. विश्वनाथ, चन्द्रकला, अं-३, पृ-५१

राजा—अलमकारणमनारतं देवीप्रकोपभीतिकातरस्य ममेवमारम्भः।
तथाहि एवं मति—देवी कुप्यति।

प्रतिष्ठा पर आंच आने देना नहीं चाहता। विवाहिता पत्नी को दुःख या क्रोध से मुक्त रखने की भी चिन्ता उसे है। इस प्रकार नायक के व्यक्तित्व का सम्पूर्णतया कामी और रसलम्पट होने से बचा लिया गया है। नाटिका के नायक का व्यक्तित्व शृंगारिक परिधि में बद्ध होने पर भी कवि की थोड़ी सहृदयता और सहानुभूति से ही उच्चाशय प्रतीत होने लगता है। प्रेमाकुलता की दशा में बिरह के उद्‌गार को दोष मानना उचित नहीं। अतः नायक के विवेक को अक्षुण्ण रखते हुए उसे उपयुक्त भूमिका में उतार कर विश्वनाथ ने प्रशंसनीय कार्य किया है। नाटिका की भूमिका में महाराज निश्शंक भानुदेव दिग्विजय का जो विस्तृत वर्णन कवि ने सूत्रधार से करवाया है[३७] वह केवल रचनात्मक चमत्कार ही नहीं हैं, अपितु ऐतिहासिक तथ्य भी है। इस प्रकार महाराज को लक्ष्यकर विदूषक के द्वारा किया गया परिहास भी तथ्यात्मक है।

चतुर्दश शताब्दी के आलंकारिक शिंगभूपाल की रचना कुवलयावली का वातावरण रहस्य से पूर्ण है। पुराण प्रसिद्ध नारदमुनि को कुवलयावली नाम की एक रहस्यमयी युवति कन्या मिलती है। उस कन्या का जन्म परिचय तो और भी विस्मय जनक है। पृथ्वी वालिका का रूप धारण कर नारद के पास जाती है और नारद जी उसे श्रीकृष्ण के राजमहल में महारानी रुक्मिणी के संरक्षण में रखकर उसके लिये उपयुक्त पति के अन्वेषण के लिये चल पड़ते हैं। कन्या को नारदजी एक रत्नमयी अंगूठी पहुचा देते हैं जिसके प्रभाव से वह वालिका पुरुषों को एक पाषाणमयी प्रतिमामात्र दीख पड़ती है। इसके पश्चात् अंगूठी खो जाती है और नायक श्रीकृष्ण की दृष्टि उस पर पड़ती है। वे प्रेमाभिभूत हो उसकी प्राप्ति के लिये सामान्य नायक की भांति उद्विग्न हो उठते हैं।[३८] तदुपरांत सत्यभामा के कोप का वर्णन करते हुए, नाटिकानुकूल प्रसंगों का तानाबाना बुनते हुए, अन्त में कवि ने नायक श्रीकृष्ण के पौरुष का परिचय देने के लिये एक दानव का प्रवेश रुक्मिणी के अन्तःपुर में करवाया है। दानव नायिका कुवलयावली को उठाकर ले भागता है। समाचार सुनकर श्रीकृष्ण उस दानव को युद्ध में परास्त कर उस कन्या को भवन में ले आते हैं। अन्त में, नारद कन्या के सम्बन्ध में सारे रहस्यों को खोल देते हैं। अन्ततः नायिका कुवलयावली तथा नायक श्रीकृष्ण

---

३७. विश्वनाथ, चन्द्रकला, पृ-२

३८. शिंगभूपाल, कुवलयावली, अं-१,पृ-१७

नूनमेतदन्वेषणाय सखीसमेता कुवलयावली पुनरिमं प्रदेशमायास्यति।
तदिहैव मुहूर्तमनालक्षितस्तामनुपालयामि।

परिणय सूत्र में आवद्ध हो जाते हैं। दानव के द्वारा कन्यापहरण के अनन्तर उसके उद्धार के क्रम में युद्ध के प्रसंग का समावेश कर नायक के पौरुष का परिचय दिया गया है।[३९]

सोलहवीं शताब्दी के कवि मथुरादास की कृति वृषभानुजा नाटिका राधा और कृष्ण के प्रेम पर आधारित है। इसके नायक श्रीकृष्ण हैं। अन्य नाटिकाओं के सदृश इसका भी नायक नायिका राधा के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध है। उसे पाने के लिए अधीर हो उठता है। बालसखा प्रियालाप से उसे इस प्रेम-व्यापार में अनेकविध सहायता मिलती है।

परम्परागत लक्षण-निरूपण के संदर्भ में वृषभानुजा नाटिका में उल्लेखनीय परिवर्त्तन दृष्टिगत होते हैं। प्रथमतः नाटिका की व्यापारस्थली राजा के अन्तःपुर से हटकर वृन्दावन की पवित्र भूमि है और यही कारण है कि इसमें विदूषक, मन्त्री, सेनापति सदृश प्रमुख पात्रों का अभाव है। इस नाटिका में ज्येष्ठा नायिका का भी अभाव है। अतः अन्य नाटिका के नायक के समान इस नायक को नायिका की प्राप्ति के क्रम में ज्येष्ठा नायिका के भय अथवा तज्जनित विघ्न बाधा की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। नायक-नायिका के गुप्तमिलन में व्यवधान उपस्थित करने का कार्य वृषभानु के घर की दासी नागरिका करती है।[४०] नाटिका के प्रारम्भ में नायक श्रीकृष्ण और नायिका राधा, दोनों के परिणय की पृष्ठभूमि, अन्य नाटिकाओं के सदृश, मंत्री अथवा

---

३९. शिंगभूपाल, कुवलयावली, अं-४, पृ० ६१-६२

नायकः—अयि प्रिये ! किं न वीरसमरसमयज्ञासि। यदेकाकिनि विरोधिनि यदुवीरसन्नाहमादिशसि।···तदेनां गगनभाग एव समालम्ब्य विह्वलां तरलतनुतरतरङ्गशीकर-शिशिरगन्धवाहे विलासवनदीर्घिकातटे मन्दमवतारयामि।

४०. मथुरादास, वृषभानुजा, पृ० ३८

राधा—(विचिन्त्य। आत्मगतम्) अदूरे भविष्यति स दुर्लभजनः। परिहासशीला खल्वेष। चम्पकलता। कदापि नागरिका दृष्टिपथं करोति तम्। (इति नागरिकामग्रहस्ते गृहीत्वा) हला, अम्बा माँ विना दुःखमनुभवति तद्गृहं गमिष्यामि।

सेनापति द्वारा प्रस्तुत नहीं की गयी है। अपितु इस काम में एक सम्मानित वृद्धा सहायक होती है। इस नाटिका में नायक गान्धर्व विधि से नायिका से विवाह कर लेता है।

अष्टादश शताब्दी की, वीरराघव रचित मलयजाकल्याण नाटिका में तोण्डीर के अधिपति देवराज और मलयजा नाम की सुन्दरी राजकुमारी की प्रेमकथा का वर्णन किया गया है। नायक देवराज के व्यक्तित्व के अन्य किसी पक्ष को उजागर करने का प्रयास नाट्यकार ने नहीं किया है। यथारीति नायिका के सौन्दर्य पर मुग्ध होना, उसकी प्राप्ति के लिए अधीर होना, नायिका से छिपकर मिलना, ज्येष्ठा नायिका के क्रोध का पात्र होना आदि घिसी-पिटी रूढ़ियों का वर्णन है। नायक में किसी प्रकार का पौरुष नहीं दिखाई पड़ता है। अकस्मात् जामदग्न्य ऋषि प्रकट होकर महाराज को आश्वस्त करते हैं और महारानी की अनुकूलता की भविष्यवाणी करते हैं। अन्त में, नायक-नायिका के विवाह सूत्र में बंध जाने के पश्चात् महाराज को संवाद मिलता है कि उनके सभी शत्रु पराजित हो गये हैं तथा उनका राज्य निष्कंटक हो चुका है।[४१]

विवेकचन्द्रोदय नाटिका अठारहवीं शताब्दी के शिवकवि द्वारा विरचित है। इसमें श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण वाले पुराण प्रसिद्ध प्राचीन प्रसंग को नाटिका की भूमिका में प्रस्तुत किया गया है। शिशुपाल एक असफल प्रतिनायक है। उसके समर्थक राजाओं के साथ बलदेव का युद्धवर्णन संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

नाटिका की कथावस्तु की प्रकृति के अनुकूल इसका नायक धीरललित स्वभाव का कोई प्रसिद्ध राजा होता है। राजा के अन्तःपुर से सम्बद्ध होने के कारण राजा के अतिरिक्त वे ही पुरुषपात्र इसमें नियोजित किये जाते हैं जिनका प्रवेश वहां ग्राह्य माना गया है। अतः राजा के कार्यव्यापार को दृष्टि में रखते हुए इसके सहायक विदूषक सेवक, कञ्चुकी आदि का ही समावेश नाटिका में सम्भव है। कोई ऐतिहासिक राजा, जिसके पौरुष तथा पराक्रम का आख्यान अन्य प्रकार की काव्य-विधाओं में भरपूर मिलता है, वही यदि नाटिका के नायक के रूप में चित्रित किया जाता है,

---

४१. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, पृ० ४०

यथानियोगं दण्डचक्रसहायेन समुत्सारिताः क्षुद्रम्लेच्छबलवजाः स्थापिताश्च यथापुरं स्वेषु स्वेषु समन्तात् रक्षकाः सुभिक्षञ्च, सर्वतो जनपदेष नीरोगाः निरुपद्रवाश्च प्रकृतयः प्रमोदन्ते, परं श्रीमच्चरणकमलदर्शनोत्-कण्ठया ताम्यन्ति भूयाँश्च समयो मृगयाव्यासङ्गेनातीतः…

तो स्वभावतः वह शृंगारिक परिवेश में सांस लेता हुआ दीखता है।[४२] वह वीरता का कोई ऐसा आचरण नहीं कर पाता है, जिसकी अमिट छाप पाठकों अथवा दर्शकों पर चिरकाल तक बनी रह सके। वत्सनरेश उदयन का पराक्रमी व्यक्तित्व रत्नावली प्रियदर्शिका सदृश नाटिकाओं में एक विलासी तथा कामुक राजा के रूप में चित्रित मिलता है। पराक्रम और पुरुषार्थ के उल्लेख के लिए उस राजा की सेना और सेनापति के युद्ध कार्यों के विवरण की केवल आवृत्ति अन्तःपुर में दी जाती है।

विभिन्न नाटिकाओं के प्रमुख पुरुषपात्र नायक पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटिका के फल का भोक्ता नायक होता है अर्थात् कनिष्ठा नायिका की उपलब्धि उसे ही होती है तथा मुख्य रस शृंगार का वह आश्रय भी होता है; परन्तु नाटिका की सम्पूर्ण घटनाओं को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला पात्र ज्येष्ठा नायिका है। यद्यपि ज्येष्ठा नायिका नायक की पत्नी होती है किन्तु घटनाओं की गतिविधि पर उसी का नियंत्रण होता है। नायक उसके आदेशानुसार बेढंगी हरकतें करने लगता है, जैसा कि कर्णसुन्दरी नाटिका में दिखाया गया है। वह छद्मवेश धारण करता है तथा ज्येष्ठा नायिका को प्रसन्न करने के लिए ऊल-जलूल हरकतें करता है। वह ज्येष्ठा की कृपा पर निर्भर रहता है तथा ज्येष्ठा ही अन्ततः विधिवशात् उसकी क्षुद्र प्रार्थना को स्वीकार कर लेती है। रत्नावली, प्रियदर्शिका, विद्धशालभञ्जिका, कर्णसुन्दरी आदि के नायक का व्यक्तित्व गरिमापूर्ण नहीं है। इन नाटिकाओं के नायक नायकोचित गुणों से हीन प्रतीत होते हैं।

नायक के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'नाट्यम् अन्त नयति, इति नायकः।' इसके विपरीत किसी भी नाटिका के नायक में यह क्षमता नहीं है कि वह उसकी घटनाओं पर प्रभावी हो सके तथा उन्हें नियंत्रित कर सके। आचार्यों ने नायक को कथाव्यापी माना है अर्थात् उसका चरित्र इतना प्रभावशाली हो कि वह घटनाओं को नियंत्रित कर सके। परन्तु यह मान्यता नाटिका के नायक के सन्दर्भ में स्वीकार्य नहीं जान पड़ती।

उपरिनिर्दिष्ट विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि अगर ज्येष्ठा नायिका से विवाहित होना या कनिष्ठा नायिका के प्रति शृंगारिक प्रकृति का अधिकारी होना या मुख्य रस

---

४२. शिवकवि, विवेकचन्द्रोदय,

गत्वाद्यैव विमर्द्य चैद्यमशकं हत्वा जरासन्धकं
कृत्वांगेषु विलक्षणं च बहुधा तद्भ्रातरं रुक्मिणम्।
जित्वाऽन्यानपि भीमभूमिरमणं सम्भाव्य सत्कारतः
सम्भूयास्य सुहृद्गणैः प्रियतमां तां रुक्मिणीमानये ४६/१

श्रृंगार का आश्रय होना नायकत्व का आधार न माना जाय तो नाटिका के मुख्यपात्र को नायक मानना कठिन है। आचार्यों की नायक सम्बन्धी मान्यता की अन्वर्थता नाटिका के नायक के सम्बन्ध में नहीं दीखती। वस्तुतः रत्नावली, प्रियदर्शिका, कर्ण-सुन्दरी आदि नाटिकाओं के व्यक्तित्वहीन पात्र को नायक पद पर अभिषिक्त करना समीचीन नहीं। ऐसे पात्रों को मुख्यपात्र मान लिया जा सकता है; परन्तु उसमें नायक की विशेषताओं की झलक भी देखने को नहीं मिलती।

विदूषक—

नाटिकाओं के पुरुषपात्र के द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत विदूषक, मन्त्री, सेनापति, नायक के प्रतिद्वन्द्वी आदि आते हैं। ये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नायक के प्रयोजन की सिद्धि में सहायक होते हैं। विदूषक नायक के प्रणय-व्यापार में तथा मन्त्री, सेना-पति आदि पात्र नायक की राज्यप्राप्ति एवं उसके संचालन में सहायता करते हैं।

विदूषक उच्चवर्गीय तथा सामान्यतः ब्राह्मण हुआ करता है। वह (राजा) नायक का सहचर तथा परममित्र होता है। अन्तःपुर में उसका प्रवेश निर्बाध रहता है। वह अपनी वैयक्तिक क्षमता के अनुसार राजा और रानी का प्रियपात्र बनकर आन्तरिक तथा व्यक्तिगत विषयों में भी अपना परामर्श देता रहता है।

नाट्य में विदूषक का प्रयोग प्रधान रूप से हास्य की विकृति के लिए ही किया गया है।[४३] साधारणतया उसके व्यक्तित्व को हास्यजनक वस्त्र और आकृति एवं उक्ति से समन्वित कर चित्रित करने की परम्परा है।[४४] मोदक प्रिय होना उसका जातीय संस्कार है। लगभग सभी नाट्यकारों ने विदूषक के भोजनविलासी होने की चर्चा की है। इसके अतिरिक्त विदूषक प्रेमविषयक व्यापार में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नायक के साथ हास परिहास किया करता है, तथा सहायता भी पहुंचाता है। आगत और सम्भाव्य विघ्नों को दूर करने में विदूषक अपनी बुद्धि का भरपूर उपयोग करता है। वियोग की अवस्था में नायक को आश्वस्त करने में विदूषक व्यस्त और चिन्तित दीख पड़ता है। तथा नायक को नायिका को उपलब्ध कराने में सक्रियरूप से

---

४३. धनञ्जय, **दशरूपक**, पृ० ९३

हास्यकृच्च विदूषकः।

तु० रामचन्द्र गुणचंद्र, **नाट्यदर्पण**, पृ० ३७६

विदूषको हास्यनिमित्तं भवति।

४४. शिंगभूपाल, **रसार्णवसुधाकर**, पृ० २१

विकृतांगवचोवेशैर्हास्यकारी विदूषकः।

१/९२

जागरूक रहता है। महारानी के भय से आक्रांत राजा और कनिष्ठा नायिका के मिलन के लिए विदूषक सदा प्रयत्नशील रहता है। वियोग में व्याकुल और समागम के लिए व्यग्र नायक की सहायता विदूषक करता है।

इस प्रकार विदूषक की अनिवार्यता के साथ ही उसकी हास्यकारी भूमिका भी उसे महत्त्व प्रदान करती है। हास-परिहास विदूषक के व्यक्तित्व की विशेषता है। धार्मिक कृत्यों में भी विदूषक अपनी इस विशेषता से मुक्त नहीं रहता। राजा के प्रेम-व्यापार की प्रत्येक दशा में अपनी हास्यजनकता बनाये रखता है। विदूषक का हास्य की सृष्टि में योगदान अनेकविध है।[४५] हास्य की विवृति अङ्गकृत, काव्यकृत तथा नेपथ्यकृत त्रिविध होती है। सामाजिक द्वारा हास्य की अनुभूति के लिए विदूषक उक्त तीनों साधनों को अपनाता है। निकलते हुए दांत, खल्वाट मस्तक, टेढ़े-मेढे हाथ पैर विदूषक की विकृत आकृति को उभार देते हैं। इसी प्रकार असम्बद्ध अहेतुक, अर्थहीन, अश्लील कथन द्वारा हास्य की काव्यकृत अभिव्यक्ति होती है।[४६]

भरत ने धीरोद्धत, धीरललित, धीरोदात्त तथा धीरप्रशान्त इन चार प्रकार के नायकों के लिए चार प्रकार के विदूषकों का होना रूपक में अपेक्षित माना है। ये विदूषक हैं— लिंगी, द्विज, राजजीवी और शिष्य।[४७] देवों के लिए विदूषक लिंगी या संन्यासी, राजा के लिए लिंगी, द्विज और राजजीवी, अमात्य नायक के लिए राजजीवी तथा ब्राह्मण नायक के लिए शिष्य वर्ग को विदूषक के रूप में स्वीकृत किया गया है।[४८]

---

४५. भरत, **नाट्यशास्त्र**, १२/१३८-१४२

४६. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, पृ०-३७६

हास्यं च अस्य अंग-नेपथ्य-वचोविकारात् त्रेधा
तत्रांगहास्यं खलति-खञ्ज-दन्तुर-विकृताननत्वादिना।
नेपथ्यहास्यमत्यायताम्बरत्वोल्लोकित-विलोकित गमनादिना।
वचोहास्यमसम्बद्धानर्थकाश्लीलभाषणादिना भवति।

४७. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, सू (२५२), पृ० ३७६

स्निग्धा धीरोद्धतादीनां यथौचित्यं वियोगिनाम्।
लिंगी-द्विजो राजजीवी शिष्यश्चैते विदूषकाः॥
तु० भरत, **नाट्यशास्त्र**, ३४/१६-२०

४८. रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, पृ- ३७७

लिंगी देवतानां ब्राह्मणस्य शिष्यः राज्ञां
तु शिष्यवर्जास्त्रयः। एवं वणिजादेरपीति।

शारदातनय ने चारों प्रकार के नायकों के विदूषकों के गुणों का उल्लेख किया है। देवताओं का विदूषक सत्यवादी, त्रिकालज्ञ, कृत्याकृत्य-विशेषज्ञ, विचार-विमर्श में प्रवीण हुआ करता है। राजा का विदूषक शिष्ट परिहास करने वाला, धन और स्त्रियों के प्रति शुद्धमना, देवी की परिचारिकाओं का प्रिय, अन्तःपुर में विचरण करने वाला और प्रणय-कोप में देवी को प्रसन्न रखने वाला होता है। अमात्य का विदूषक अश्लील वक्ता तथा दम्पती के अपराधों को व्यक्त करने वाला होता है। वह भक्ष्य और अभक्ष्य सभी पदार्थों का सेवन करता है। इसके अंग और वेश सभी विरूप होते हैं। वणिक् के विदूषक का वेश उक्ति एवं परिहास की विसंगति से पूर्ण होता है।[४९]

रूपक के प्रारम्भ में त्रिगत पूर्वरंगकृत्य में भी विदूषक को सम्मिलित माना गया है।[५०] सूत्रधार और पारिपार्श्विक इन दोनों के वार्तालाप के बीच विदूषक कुछ असम्बद्ध सा बोल पड़ता है। इससे उसके विसंवादी स्वभाव का भी परिचय मिलता है। चार प्रकार के नायकों के लिए विदूषक का चतुर्विध वर्गीकरण नाटकीय पात्र के रूप में एक ओर तो विदूषक की अनिवार्यता प्रमाणित करता है तो दूसरी ओर कथानक के विकास की स्वाभाविकता को प्रभावित भी करता है। रूपक में विदूषक की स्थिति अनिवार्य कर देने के कारण अनेकत्र वह आरोपित पात्र के रूप में दीख पड़ता है। इसके अतिरिक्त उसकी उपस्थिति के कारण कथानक में अनपेक्षित अंशों का भी समावेश हो जाता है।

भरत ने प्रमुख पात्रों में विदूषक को भी सम्मिलित किया है और देवताओं

---

४९. शारदातनय, **भावप्रकाशन**, पृ-४११

नायकानामथैतेषां चत्वारः स्युर्विदूषकाः।
विदूषकस्तु देवानां सत्यवाक्च त्रिकालवित्॥
....
विदूषकस्तु भूपानामग्राम्यपरिहासकः।
अर्थेषु स्त्रीषु शुद्धश्च देवीपरिजनप्रियः॥
....
परिहासप्रायवाक्यः परिहासकथारुचिः।
एवमादिरमात्यादेर्विदूषकगुणक्रमः। ६/१२२-१२६

५०. भरत, **नाट्यशास्त्र**, पृ-५२५

विदूषकः सूत्रधारस्तथा वै पारिपार्श्वकः।
यत्र कुर्वन्ति सञ्जल्पं तच्चापि त्रिगतं मतम् ५/२८

द्वारा नाटकीय पात्रों की सुरक्षा की चर्चा है। नायक की रक्षा इन्द्र, नायिका की रक्षा सरस्वती, विदूषक की रक्षा ओंकार तथा शेष पात्रों की रक्षा शिव करते हैं।[५१] भरत का यह कथन पात्रों को धार्मिक भावना से सम्बद्ध तो करता है पर इसके द्वारा किसी नाटकीय आवश्यकता की पूर्ति होती नहीं दीखती।

आलंकारिकों ने ही विदूषक को अनिवार्य पात्र के रूप में माना हो ऐसी बात नहीं। भास, कालिदास, हर्ष सदृश कवियों ने भी विदूषक को कथा सूत्र से सम्बद्ध करके उसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है। नाटिकालेखकों की परम्परा में श्रीहर्ष प्राचीनतम है। उसकी उपलब्ध दो नाटिकाओं रत्नावली और प्रियदर्शिका में विदूषक राजा के वयस्य, नर्मसचिव तथा अन्तःपुर के विशिष्टपात्र के रूप में चित्रित हुआ है।

रत्नावली का विदूषक मोदकप्रिय या नायक उदयन का नर्मसचिव ही नहीं है, अपितु नाटिका का एक आवश्यक पात्र भी है। इस नाटिका में विदूषक के बहुज्ञ होने का भी संकेत मिलता है। प्रस्तावना के समाप्त होते ही मंच पर नायक उदयन के साथ विदूषक की बातचीत का प्रसंग आता है। वह चेटियों के मलयानिल के वर्णन में रस लेता दीखता है। गीत और नृत्य से इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि वह स्वयं उनके साथ नाचने लगता है।[५२] सखियों के द्वारा जिज्ञासा करने पर कि कौन-सा गीत गाया जा रहा है? वह उत्तर देता है कि यह द्विपदी खण्ड है। शारीरिक या मानसिक श्रम से वह दूर ही रहना चाहता है। इस प्रकार रत्नावली नाटिका के विदूषक में मोदकप्रियता[५३], नर्मसाचिव्य तथा हास्यप्रियता आदि सभी विशेषताएं विद्यमान हैं।

प्रियदर्शिका नाटिका के विदूषक का नाम बसन्तक है। वह ब्राह्मण है और जातीय गुण के अनुकूल भोजन के लिए निमन्त्रण पाने पर कोई भी कष्ट उठाने को तत्पर हो जाता है। परन्तु ज्ञानार्जन में उसकी रुचि नहीं है।

---

५१. भरत, नाट्यशास्त्र, पृ-१००

नायकं रक्षतीन्द्रस्तु नायिकां च सरस्वती।
विदूषकमथोङ्कारः शेषास्तु प्रकृतीर्हरः॥ १/९७

५२. श्रीहर्ष, रत्नावली, अं-१, पृ-३०

विदूषकः—भो वयस्य अहमप्येतयोर्मध्ये गत्वा
नृत्यन् गायन् मदनमहोत्सवं मानयिष्यामि।

५३. श्रीहर्ष, रत्नावली, अं-१, पृ-३१

विदूषकः—किमेतेन खण्डेन मोदकाः क्रियन्ते।
चेट्यौ—(विहस्य) नहि नहि पठ्यते खल्विदम्॥

प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक का आरम्भ ही विदूषक के प्रवेश से होता है। धारागृह उद्यान का वर्णन करता हुआ वह मंच पर प्रवेश करता है, तथा कमलचयन में लगी हुई नायिका आरण्यका की ओर राजा का ध्यान आकृष्ट करता है। वह राजा को नायिका के समक्ष जाने के लिए प्रेरित करता है।

तृतीय अंक में विदूषक नायिका के लिए राजा की व्याकुलता का वर्णन करता है।[५४] चतुर्थ अंक में नायिका आरण्यका की तथा उसकी मुक्ति के लिए उलझन में पड़े हुए राजा को जैसा उपाय वह बतलाता है वैसा किसी अनुभवी मन्त्री से ही सम्भव है।

राजशेखरकृत कर्पूरमंजरी में भी विदूषक एक महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में चित्रित है। कर्पूरमंजरी का विदूषक कपिंजल राजा का नर्मसहचर विनोदी मित्र है। जवनिका के प्रारम्भ में कपिंजल जिस प्रकार चेटी के साथ वाक्कलह करता है, स्वभावतः दर्शक उसके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। विदूषक के रूप में कपिंजल अत्यन्त निर्बोध असम्बद्ध बातें करता है। वह अपनी स्त्री के पण्डित पितामह के यहाँ पुस्तकों की देखभाल करता था और इसी के आधार पर वह अपने को विद्वान् समझता है।[५५] राजा अपने सुख-दुःख, प्रेमविरह सभी तरह की बातें कपिंजल से करता है। कपिंजल भी खुलकर हर बातों में सुझाव देता है।

राजशेखर की विद्धशालभंजिका नाटिका का विदूषक चारायण एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसमें प्राचीन संस्कृत नाट्य साहित्य में विदूषक की विशेषता है, और साथ ही हास्यकालीन संस्कृत रूपक के प्रतीक प्रहसन के विदूषक की विशेषता भी। चारायण एक ओर उदार सहानुभूतिप्रवण और भोजनप्रिय ब्राह्मण है तो दूसरी ओर प्रहसन के भाँड की तरह कोरे ग्राम्य और विकृत हास्य का जनक भी।

---

५४. श्रीहर्ष प्रियदर्शिका, अं-३, पृ-४६

विदूषकः—अतिमहान्खलु प्रियवयस्यस्या-
रण्यकाया उपर्यनुरागः। येन
परित्यक्तराजकार्यस्तस्या एव
दर्शनोपायं चिन्तयन्नात्मानं विनोदयति।
(विचिन्त्य) कुत्रेदानीं तां प्रेक्षे।
अथवा तत्र दीर्घकायामन्विष्यामि।

५५. राजशेखर, कर्पूरमञ्जरी, अं-१, पृ-२१

विदूषकः— भो! जस्स मे ससुरस्स ससुरो
पण्डिअधरे पुत्थिआइं बहंतो आसि

नाटिका के प्रथम अंक में चित्रशाला में उपस्थित राजा को अंकित चित्रों की जानकारी जिस ढंग से विदूषक देता है उससे उसकी चित्रकला-विषयक दक्षता का परिचय मिलता है।[५६] इसके साथ ही मर्कट के चित्र को देखने के बाद राजा के यह कहने पर कि विदूषक यह तुम्हारी ही आकृति चित्रित है,[५७] वह कह उठता है कि मैं इस चित्र में कहां हूं? मेरी ब्राह्मणी तो मुझे साक्षात् कामदेव समझती है।[५८] वह ब्राह्मण होने के नाते यज्ञोपवीत छूकर राजा को आशीर्वाद देता है कि उसका वह स्वप्न, जिसमें उन्होंने एक अलौकिक सुन्दरी को देखा है और जिसके रूपजाल में उनका मन उलझ सा गया है, सत्य हो जाय।[५९]

अन्य ब्राह्मणों की तरह चारायण भी भोजनप्रिय है और वह भोज्य पदार्थों की चर्चा को किसी प्रसंग से जोड़ने में कुशल है। राजा के गुप्त प्रेम-प्रसंग की जानकारी के लिए चारायण विरह सन्तप्त नायिका मृगांकावली के लिए शीतोपचार की सामग्री को ले जाती हुई दासी के मुख से सारी बातें उगलवा लेता है। स्वप्न में देखी गई सुन्दरी के वर्णन में मुग्ध विभोर राजा से वह कहता है कि स्वप्न में देखी गयी मोदक-राशि के सहारे नगर भर को निमंत्रित करके खिलाने जैसी बात ही आप सोच रहे हैं।[६०]

---

५६. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-१, पृ-२२

विदूषकः—प्रियवयस्येतस्तावद् आलिखितस्फटिक-
गर्भभवनभित्तिचित्रकर्मणि निवेश्यतां दृष्टिः।
एष तावद्देवो देव्या समं वासकाभिनिवेशी
आलिखितः।...........

५७. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-१, पृ-२

राजा—सखे त्वमेषोऽभिलिखितः।

५८. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-१ पृ-२२

विदूषकः—सा मां भणति त्वं प्रत्यक्षः
कामदेव इति।

५९. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-१, पृ-११

विदूषकः—(यज्ञोपवीतं परिमृश्य) शुष्ककुशरज्जु
कर्कशदारस्य मम ब्राह्मणस्य वचनेन
सत्यस्वप्नत्वं ते भवतु।

६०. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-१, पृ-१४

विदूषकः—एष स्वप्नलब्धैर्मोदकैर्ग्राममम्
उपनिमन्त्रयसे।

महारानी क्षुब्ध होकर एक बालक को स्त्री वेश में सुसज्जित कर विदूषक चारायण का कपट-विवाह उससे करा देती है। विदूषक इस मजाक के प्रतिशोध में देवी की आप्तदासी की पुत्री मेखला को प्रेत का भय दिखाकर आतंकित करता है[६१] और उसके अल्पायु होने का उल्लेख करता है। मेखला विवश होकर विदूषक की पूजा करने लगती है।[६२]

कर्णसुन्दरी नाटिका में विल्हण ने विदूषक की अवतारणा तो की है, किन्तु उसे कोई नाम नहीं दिया है। उसकी पत्नी का भी उल्लेख केवल ब्राह्मणी कहकर किया गया है। विदूषक के जातीय वैशिष्ट्य इसमें विद्यमान हैं यथा मोदकप्रियता, युद्ध के वर्णन मात्र से त्रस्त हो जाना, बातचीत के बीच मूर्खता का परिचय देना। परन्तु कहीं-कहीं विदूषक ने अपने चातुर्य और बुद्धिमत्ता का भी परिचय दिया है, यथा महारानी की चेटी से गुप्त रहस्य की बातों की जानकारी प्राप्त करके राजा के प्रणय-व्यापार में सहायता पहुंचाना। द्वितीय अंक में प्रमोद उद्यान में राजा के साथ नायिका का मिलन विदूषक की चतुरता के कारण ही सम्भव हो पाया है। कर्णसुन्दरी के विदूषक में हास्यकारिता की अपेक्षा नायक की सहायता करने की क्षमता पर्याप्त मात्रा में दीख पड़ती है। संस्कृत में विट की अनेक विशेषताएं तथा काव्यमयी वर्णनाभङ्गी दीर्घ उपदेश आदि विदूषक के व्यक्तित्व में परिलक्षित होती हैं।[६३]

रुद्रचन्द्रदेव रचित 'उषारागोदया' के विदूषक का नाम गिरिवर है। वह नायक अनिरुद्ध का नर्मसुहृद् है। उषारागोदया की कथावस्तु श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध और वाणासुर की पुत्री उषा के प्रणय-व्यापार से सम्बद्ध है। इन दोनों का विवाह सम्पन्न कराने के लिए नारद स्वयं तत्पर हैं। फलस्वरूप अन्य नाटिका के सदृश इसमें विदूषक को नायक के प्रणय-व्यापार में सहायता करने को कुछ रह नहीं जाता। उधर उषा की प्रियसखी चित्रलेखा भी इस प्रणय-व्यापार में सहायता कर रही है। इस प्रकार

---

६१. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-३, पृ-६६

मेखला—(पादयोरन्तरे प्रविशन्ती)

भोः ! परित्रायस्व माम्।

६२. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, अं-३, पृ-६८

मेखला—(बद्धाञ्जलिः) आर्य चारायण ! अयं
जनस्त्वां महाब्राह्मणं शरणं प्रतिपद्यते
(इति पादौ शिरस्यारोपयति)

६३. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-४, पृ ५०

महारानी—एष सम्प्राप्तः भर्त्ता समं
ब्राह्मणबिटेन............।

विदूषक गिरिवर का कार्य नायक के साथ एकान्त में वार्तालाप करना तथा सान्त्वना देना भर रह गया है। वस्तुतः इस नाटिका में विदूषक की अवतारणा केवल नाटिका के लक्षण को ध्यान में रखकर की गयी है। नाटिका के कथानक के विकास में उसका कोई योगदान नहीं है।

चन्द्रकला नाटिका के विदूषक का नाम कुसुम ऋतु के आधार पर रसालक रखा गया है। यह नामकरण आचार्यों द्वारा प्रतिपादित लक्षण-निरूपण के अनुसार है। स्वभावतः अन्य नाटिकाओं के विदूषक की सामान्य विशेषताएँ इसमें भी दीखती हैं। अपनी उक्तियों से लोगों को हँसाना, पेटूपन का परिचय देना तथा दासियों से उलझना रसालक में भी पाया जाता है। नायक चित्ररथदेव के नर्मसचिव के रूप में वह नायक के प्रत्येक प्रणय-प्रसंग में सहायता करता है।[६४] नायक को नायिका के समीप ले जाने में सहायता करने के लिये वह स्वयं बघेरा बनकर अनुकूल वातावरण बना डालता है। इस प्रकार रसालक का चरित लक्षण ग्रन्थों का अनुसरण मात्र है।

शिङ्गभूपाल विरचित कुवलयावली नाटिका का विदूषक श्रीवत्स है। इसके मुख्य पात्र कृष्ण, नारद और रुक्मिणी हैं। नारद के आदेश से पृथ्वी कुवलयावली के रूप में रुक्मिणी के साथ रहती है। विदूषक श्रीवत्स कृष्ण को कुवलयावली के प्रति व्याकुल देखकर अन्य नाटिकाओं के विदूषक के विपरीत कह उठता है कि राजा का प्रेम अस्थिर हुआ करता है।[६५] श्रीवत्स रुक्मिणी को अन्तःपुरचारिणियों के साथ योगमाया महोत्सव देखने के लिये भेज देता है। इस प्रकार नायक और नायिका के परस्पर दर्शन-मिलन की योजना सम्भव हो पाती है।

रुक्मिणी को सत्यभामा के माध्यम से कृष्ण और कुवलयावली के परस्पर आकर्षण का पता चल जाता है और तब वह कुवलयावली को छिपा देती है। दानव द्वारा कुवलयावली के अपहृत कर लिये जाने पर अन्ततः उसे कृष्ण की सहायता लेनी पड़ती है। इसी के पश्चात् नारद से रुक्मिणी को कुवलयावली की वास्तविकता मालूम हो जाती है और वह नारद की अनुशंसा पर कुवलयावली और कृष्ण के विवाह के लिये सहमति दे देती है।

---

६४. विश्वनाथ, चन्द्रकला, पृ-४४

विदूषकः—तदिदानीमेतु एतु प्रियवयस्यः। यथा देवी प्रसादं गच्छति यथा च तव चन्द्रकलया पुनः समागमो भवति तथाहमेव सम्पादयामि।

६५. शिंगभूपाल, कुवलयावली, अं-२, पृ-२०

विदूषकः—राजानो नवप्रिया भवन्तीतीदानीं सत्यो लोकवादः।

इस नाटिका में नारद की उपस्थिति के कारण विदूषक को कुछ करने को तो रह नहीं जाता और जो कुछ भी वह कर पाता है वह एक बँधी-बँधायी परम्परा का निर्वाहमात्र है।

वृषभानुजा नाटिका अन्य नाटिकाओं से कुछ भिन्न है। एक तो इसमें ज्येष्ठा नायिका, मन्त्री, सेनापति आदि का अभाव है। दूसरे विदूषक का भी समावेश नहीं किया गया है। नायक के बालसखा प्रियालाप के द्वारा ही कवि मथुरादास ने विदूषक की भूमिका सम्पन्न करवायी है। नायक के प्रणय-प्रसंग में परामर्शदाता प्रियालाप ही है। फलस्वरूप इस नाटिका में अन्य नाटिकाओं की तुलना में जटिलता अत्यल्प है। ज्येष्ठा नायिका के अभाव के कारण विदूषक या नायक को नायिका की सम्प्राप्ति के लिए विषम परिस्थितियों का सामना नहीं करना पड़ता। न तो ज्येष्ठा नायिका के कोप की चिन्ता है और न नायिका-मिलन में उसके द्वारा नियोजित किसी अवरोध की। नायिका को 'महीफला' बताया गया है, पर मन्त्री के अभाव में उसका भी संकेत नहीं मिलता। वस्तुतः कृष्ण-राधा के पौराणिक आख्यान से हटकर पृथ्वीलाभ की कल्पना नाट्यकार को अरुचिकर लगी होगी या अस्वाभाविकता की सम्भावना के कारण कथानक में राज-अन्तःपुर सम्बन्धी विवरण का समावेश नहीं किया गया होगा। राधा की प्राप्ति के माध्यम से किसी भूभाग की उपलब्धि दूरारूढ कल्पना ही होती।

इस प्रकार इस नाटिका में बालसखा प्रियालाप का चरित्त सीधा सरल बन पड़ा है। कृष्ण और राधा के प्रणय की तीव्रता को क्षीण होने नहीं देना ही प्रियालाप का एकमात्र कर्त्तव्य रह गया है। उसके आचरण में कहीं ओछापन दृष्टिगोचर नहीं होता।

वीरराघव प्रणीत मलयजाकल्याण नाटिका का विदूषक सोमशर्मा है। अन्य नाटिका के विदूषक के समान वह ज्येष्ठा नायिका के कोप से नायक को बचाने का यथासम्भव प्रयास करता है। विदूषक सोमशर्मा के सहयोगी के रूप में जामदग्न्य (भार्गव) ऋषि का प्रवेश कराया गया है।[६६]

नायक और मलयजा के परिणय-संस्कार के समय भार्गव स्वयं उपस्थित हैं और मलयजा के पिता को संस्कार कराने के लिए कहते हैं। अन्तिम दृश्य में अमात्य भी उपस्थित हैं पर वह कोई सक्रिय सहयोग नहीं देता। शत्रु विजय की सूचना भी भार्गव ही देते हैं—लेखवाह द्वारा लाये गये पत्र को पढ़कर। अमात्य लेखवाह को

---

६६. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-३, पृ-३२

जामदग्न्यः—(सस्मितम्) अवगतं वक्तव्यम्। सपत्नीसंरम्भवेगेन विस्मृतस्वात्मानं महादेवीं प्रतिबोध्य सर्वं संविधास्यामि।

पारितोषिक देता है।[६७] महादेवी का अनुरञ्जन करने का उत्तरदायित्व भी भार्गव ने स्वीकार किया है। इस प्रकार अन्तिम अंक में विदूषक का कार्य मुख्यतः भार्गव द्वारा सम्पन्न होता है। विदूषक सोमशर्मा का चरित्रांकण लक्षण ग्रन्थों का अनुसरण मात्र है। अन्य नाटिकाओं के विदूषक की तुलना में नाटकीय घटनाओं की परिणति में सोमशर्मा का योगदान अत्यल्प है।

शिवकविविरचित विवेकचन्द्रोदय नाटिका विशेषतः उल्लेखनीय रचना है। नाटिका की परम्परागत विशेषताएं इसमें नहीं पायी जातीं। चार अंकों वाली इस नाटिका में प्रतीकात्मक पात्रों का समावेश किया गया है। इन पात्रों के माध्यम से राज्यप्राप्ति या पृथ्वीलाभ का संकेत तो नहीं मिलता, पर राजा के अपेक्षित गुणों एवं प्रशासन के लिए अनिवार्य परिस्थिति का उल्लेख किया गया है। सुशासन एवं सुराजा की विशेषताओं का विवेचन किया गया है।

उपरिनिर्दिष्ट नाटिका में 'महीफला' विशेषता का अभाव तो है ही, इसके अतिरिक्त ज्येष्ठा नायिका का भी अभाव है। कृष्ण रुक्मिणी से विवाह करना चाहते हैं, परन्तु किसी ज्येष्ठा के नहीं होने के कारण उसकी ईर्ष्या के कारण सम्भाव्य उलझनों से नायक नायिका बच गये हैं। इस नाटिका में नायक-नायिका के अवरोध के रूप में स्वयं रुक्मी है, जो रुक्मिणी का भाई है। वह शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह कराना चाहता है। इस प्रकार अवरोध के रूप में प्रतिनायक की अवतारणा की गयी है, जो अन्य नाटिका में नहीं दीखती।

वस्तुतः नाटिका का नायक राजा होने के कारण प्रतिनायक की अवतारणा नाट्यकार के लिए आपत्ति का कारण बन सकती थी। विवेकचन्द्रोदय में प्रतिनायक का अंकन इसके पौराणिक आख्यान पर आधारित रहने के कारण सम्भव हो पाया है।

इस नाटिका में भी विदूषक का अभाव है। नायक कृष्ण के मित्र या परामर्शदाता या सहायक के रूप में उद्धव की अवतारणा की गयी है। उद्धव रुक्मिणी और कृष्ण के परिणाम में परामर्श देकर सहायता करते हैं। नाटिका की विशेषता 'महीफला' इसमें भी परिलक्षित नहीं होती।

अमात्य और सेनापति—

नायक के मुख्य सहायक पुरुषपात्रों को दो वर्गों में रखा गया है। एक वर्ग ऐसे

---

६७. वीरराघव, **मलयजाकल्याण**, अं-४, पृ-४०
अमात्यः—(उत्थाय) इदमिति।

पात्रों का है जो नायक के प्रणय-व्यापार में सहायक हैं और दूसरे वर्ग में ऐसे पात्र हैं जो राजकार्य में सहायता करते हैं।

नायक के प्रणय-व्यापार में सहायक पात्रों में मुख्य तो विदूषक है जिसका विवेचन किया जा चुका है। दूसरे वर्ग में सेनापति-मन्त्री सदृश पात्र हैं जिनका सम्बन्ध मुख्यतः राजकार्य से हैं।

श्रीहर्षरचित रत्नावली नाटिका में राजकार्य में सहायता करने वाले पात्र तीन हैं—यौगन्धरायण, विजयवर्मा तथा वसुभूति। यौगन्धरायण राजा उदयन का अत्यन्त प्रिय प्रधानमन्त्री है। राजा अपना राज्य कार्यभार मन्त्री यौगन्धरायण को सौंपकर निश्चिन्त होकर विलास में लिप्त रहता है।[६८] मन्त्री में भी इतनी निष्ठा है कि राजा की उन्नति एवं राज्यवृद्धि के लिए सर्वथा प्रयत्नशील रहता है।[६९] यहां तक कि कनिष्ठा नायिका रत्नावली का अन्तःपुर में आगमन उसी के प्रयास से होता है। उदयन किसी प्रकार सिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली में आसक्त हो जाय, उसे कन्या-प्राप्ति के साथ-साथ राज्यप्राप्ति भी हो जाय, यही यौगन्धरायण की योजना है।[७०] मन्त्री यौगन्धरायण विदूषक के सदृश उदयन के प्रणय-व्यापार में कूटनीति की चाल तो नहीं चलता पर उदयन रत्नावली को अन्तःपुर में देखकर ऐसी पृष्ठभूमि यौगन्धरायण द्वारा ही तैयार की जाती है। उदयन का प्रधान सेनापति विजयवर्मा रुमण्वान् का भगिनीपुत्र तथा वसुभूति सिंहल के राजा विक्रमबाहु का प्रधान मन्त्री है। इन दोनों का प्रवेश केवल चतुर्थ अंक के अन्त में हुआ है। विजयवर्मा राजा उदयन को राज्य-प्राप्ति की शुभ सूचना देता है तथा सेनापति रुमण्वान् द्वारा कोसलाधिपति के परास्त

---

६८. श्रीहर्ष, रत्नावली, अं-१, पृ-२०

······योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः।

६९. श्रीहर्ष, रत्नावली, अं-४, पृ-२०३

यौगन्धरायण—(कृताञ्जलिः) देव श्रूयताम्। इयं सिंहलेश्वरदुहिता
सिद्धेनादिष्टा यथा थोऽस्याः पाणिं ग्रहीष्यति स
सार्वभौमो राजा भविष्यति। ततस्तत्प्रत्ययादस्माभिः
स्वाम्यर्थं बहुशः प्रार्थ्यमानेनापि···,

७०. श्रीहर्ष, रत्नावली, अं-४, पृ-२०६

राजा—किमतः परमपि प्रियमस्ति। यतः—

नीतो विक्रमबाहुरात्मसमतां प्राप्तेयमुर्वीतले
सारं सागरिका ससागरमहीप्राप्त्येकहेतुः प्रिया।
देवी प्रीतिमुपागता च भगिनीलाभाज्जिताः कोसलाः
किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभे यस्मै करोमि स्पृहाम् ॥४/२१

किये जाने का सविस्तर वर्णन करता है।[७१] तत्पश्चात् सिंहलेश्वर का प्रधानमन्त्री वसुभूति राजकन्या रत्नावली को ढूंढता हुआ पहुंचता है। नाटिका के अन्त में वसुभूति सबके समक्ष सागरिका ही सिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली है[७२] इस रहस्य का उद्घाटन करता है और इस प्रकार नायक-नायिका के मिलन में सहायक होता है।

प्रियदर्शिका नाटिका में रुमण्वान् राजा उदयन का प्रधानमन्त्री है तथा विजयसेन सेनापति। नाटिका के प्रारम्भ में रुमण्वान् के साथ विजयसेन आता है तथा विन्ध्यकेतु को किस प्रकार पराजित किया गया इसकी सूचना राजा को देता है। साथ ही विन्ध्यकेतु के घर में पायी गयी एक कन्या को लाकर राजा के सम्मुख उपस्थित करता है।

पुनः विजयसेन सूचित करता है कि कलिंग नरेश को मारकर दृढ़वर्मा को प्रतिष्ठापित कर दिया गया है।[७३] इसी अवसर पर यह रहस्य प्रकट होता है कि विन्ध्यकेतु के यहां पायी गयी कन्या, जो अब तक अन्तःपुर में पल रही है, दृढ़वर्मा की पुत्री है तथा उदयन की वाग्दत्ता है। इस प्रकार विजयसेन सेनापति का आगमन आरण्यका या प्रियदर्शिका (दृढ़वर्मा की पुत्री) की पहचान में सहायक होता है।

राजशेखर कृत 'कर्पूरमंजरी' सट्टक में राजमन्त्री या सेनापति का कोई योगदान नहीं है; किन्तु 'विद्धशाल-भंजिका' में कनिष्ठा नायिका का अन्तःपुर में आगमन सम्राट् विद्याधरमल्ल के मन्त्री भागुरायण के प्रयास से ही होता है, जिसकी सूचना

---

७१. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, ४/५

अपिच।

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृत्तोत्तमांगे क्षणं
व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्वलद्वह्निनि।
आहूयाजिमुखे स कोसलपतिभङ्ग्प्रतीपीभव
न्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ॥४/६

७२. श्रीहर्ष, **रत्नावली**, अं-४, पृ-१६८

वसुभूति—...वसन्तकस्य कण्ठे रत्नमाला, अस्याश्च सागरात्प्राप्तिः, तथा व्यक्तं सिंहलेश्वरस्य दुहिता रत्नावलीयम्।

७३. श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**,

हत्वा कलिंगहतकं ह्यस्मत्स्वामी निवेशितो राज्ये
देवस्य समादेशाद्रिपुजयिना विजयसेनेन ॥४/७

नाटिका के प्रारम्भ में मन्त्री भागुरायण के शिष्य हरदास से मिलती है।[७४] चतुर्थ अंक में मन्त्री भागुरायण की उक्तियों से ज्ञात होता है कि लाट प्रदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा की कन्या को मंगाकर राजा को चक्रवर्ती बनाने में भागुरायण ने चाणक्य के समान नीतिविशारद होने का परिचय दिया है।

विल्हण रचित कर्णसुन्दरी नाटिका में नायक के सहायक पात्र के रूप में अमात्य अथवा सेनापति की भूमिका नगण्य सी है। अमात्य ज्येष्ठा नायिका के भगिनीपुत्र को जिसकी आकृति कर्णसुन्दरी से पूर्णतया मिलती है, अपने यहाँ कर्णसुन्दरी के साथ रख लेता है। प्रणिधि के माध्यम से इसका संकेत दिया जा चुका है कि नायक को चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होगी।[७५] इस पृष्ठभूमि में राजा को लज्जित करने के लिए ज्येष्ठा नायिका अपने भगिनीपुत्र का कन्या रूप में राजा के साथ विवाह करा देना चाहती है; पर अमात्य द्वारा उस भगिनीपुत्र के स्थान पर कर्णसुन्दरी भेज दी जाती है। नायक और नायिका कर्णसुन्दरी का विवाह सम्पन्न करने में अमात्य का इतना ही सहयोग है। अन्य नाटिकाओं में कनिष्ठा नायिका की प्राप्ति के माध्यम से ही राज्य-लाभ होता है; क्योंकि प्रायः नायिका के पिता का ही राज्य, नायक को मिल जाता है। इसके विपरीत नाटिका में, चतुर्थ अंक के अन्त में, प्रतिहारी नायक को सूचित करती है कि गर्जन नगर पर विजय प्राप्त करने के लिए भेजे गये रुच्चिक का संदेश आया है कि गर्जनाधिपति को परास्त कर दिया गया है तथा राजा पृथ्वी के अधिपति हो गये हैं।[७६]

---

७४. राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**,

लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपतितिलकः कल्पिता तेन पुत्री
निष्पुत्रेणैकपुत्रः कथितमपि तथा मन्त्रिणे तस्य चारैः।
तस्मात् पुत्रावकल्पच्छलत इह महाराजसन्दर्शनार्थं
तेनाद्यानायितासौ निरुपधि दधता साधु षाड्गुण्यचक्षु। १/६

७५. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, अं-१, पृ-५

तेनैवंविधेन व्यतिकरेण मां प्रति भर्तुश्चक्रवर्त्तित्वमभिहितमासीत्।

७६. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

त्रातारं जगतां विलोलवलयश्रेणीकृतैकारवं
सोन्मादामरसुन्दरीभुजलतासंसक्तकण्ठग्रहम्।
कृत्वा गर्जनाधिराजमधुना त्वं भूरिरत्नांकुर-
च्छायाविच्छुरिताम्बुराशिरशनादाम्नः पृथिव्याः पतिः॥ ४/२२

चन्द्रकला नाटिका का अमात्य सुबुद्धि है। वह अपने कर्तव्यों का निर्वाह अतिशय कुशलता से करता है। नायिका चन्द्रकला की प्राप्ति और उससे संबंधित भविष्यवाणी को जानकर अमात्य सुबुद्धि इस धुन में लग जाता है कि किस प्रकार अपने महाराज चित्ररथदेव का विवाह उससे करा दिया जाए, ताकि महाराज को लक्ष्मी से अभीष्ट वरदान मिल जाए। इसकी सिद्धि के लिए वह चन्द्रकला को अपनी संबंधिनी के रूप में अन्तःपुर में रख देता है। एकमात्र दासी सुनन्दना को ही उसकी योजना की जानकारी है। सुबुद्धि महामात्य होकर भी महारानी के कोप से घबड़ाता है और चाहता है कि महाराज स्वयं उस बालिका के प्रति आकृष्ट हो जाएं! सुनन्दना की निपुणता से सब कुछ सम्भव हो जाता है। नाटिका के अन्तिम अंक में चित्ररथदेव एवं उसकी रानी को यह सूचना दी जाती है कि पाण्ड्यराज की पुत्री, जिसका विवाह चित्ररथदेव से ही होना था, अमात्य सुबुद्धि के ही संरक्षण में है। सुबुद्धि की बुलाहट होती है और पूछने पर वह बतलाता है कि पाण्ड्य राजा की कन्या चन्द्रकला उसकी सम्बन्धिनी के रूप में महारानी के ही संरक्षण में अन्तःपुर में रह रही है। वह आकाशवाणी का उल्लेख करता है कि उस चन्द्रकला से जिसका विवाह होगा उसे महालक्ष्मी स्वयं प्रकट होकर अभीष्ट वर प्रदान करेंगी।[७७]

इस नाटिका में विवाह के अनन्तर पृथ्वी-लाभ का कोई संकेत नहीं है। फलस्वरूप अमात्य या सेनापति के लिए इस नाटिका में विशेष कुछ करने को रह नहीं गया है। वस्तुतः इस प्रकार की अन्य नाटिका में पृथ्वीलाभ की सूचना देने के लिए अन्तिम दृश्य में सेनापति या मंत्री दृष्टिगोचर होते हैं। प्रस्तुत नाटिका में अमात्य सुबुद्धि को इस प्रकार की सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। वस्तुतः नाटिका के अन्तिम दृश्य में अमात्य या सेनापति की उपस्थिति अत्यन्त औपचारिक रही है। इस दृष्टि से चन्द्रकला नाटिका में सुबुद्धि के नियोजन में कृत्रिमता नहीं है और यह अधिक स्वाभाविक है।

मलयजाकल्याण नाटिका का नायक देवराज मलय देश के राजा की पुत्री

---

७७. विश्वनाथ, **चन्द्रकला**, अं-४, पृ-७६

"यस्तु भूमिपतिर्भूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति।"
लक्ष्मीः स्वयमुपागत्य वरमस्मै प्रदास्यति॥
इत्यमानुषां गिरमाकर्ण्य स्वामिने देया परिणायनीयेत्याकाङ्क्ष्यमाणेन देवीप्रकोपभीरुणा च स्वयमशक्नुवता मया "मम वंशजेयं सखीपदे स्थापनीयेति" देव्यै समर्पिता।

मलयजा को आखेट के लिए विचरण करते समय देखता है और उस पर आसक्त हो जाता है। इस नाटिका में जामदग्न्य ऋषि राजा देवराज को आश्वस्त कर देते हैं कि मलयजा उसे मिलेगी तथा महारानी (ज्येष्ठा नायिका) भी अनुकूल रहेगी। जामदग्न्य ऋषि की अवतारणा के कारण तथा अमात्य सदृश पात्रों की आवश्यकता नहीं रह जाती है, इस नाटिका में सेनापति की अवतारणा तो नहीं ही है, अमात्य के लिए भी कुछ करने को नहीं है। अन्तिम दृश्य में भी जहाँ देवराज को सूचना दी जाती है कि शत्रु परास्त हो गये हैं तथा राज्य में स्थायित्व आ गया है, सेनापति और अमात्य की कोई भूमिका नहीं है अन्य नाटिकाओं में पृथ्वीलाभ की सूचना अमात्य और सेनापति के द्वारा दी जाती है। परन्तु इस नाटिका में यह सूचना लेखवाह द्वारा दी जाती है। अमात्य देवराज का संकेत पाकर लेखवाह को मोतियों की माला अर्पित करने का कार्य सम्पन्न करता है। अमात्य का प्रवेश और एक स्थल पर हुआ है जहाँ जामदग्न्य ऋषि द्वारा देवराज को दिये गये आदेश को कि वह मलयजा से विवाह कर ले, दुहराता है।

उषारागोदया, कुवलयावली और वृषभानुजा तथा विवेकचन्द्रोदय इन नाटिकाओं के नायक पुराण प्रसिद्ध कृष्ण तथा अनिरुद्ध हैं। फलस्वरूप अमात्य या सेनापति ऐसे पात्रों की अवतारणा इन नाटिकाओं में नहीं की गई है। उद्धव 'उषारागोदया' में, उद्धव और सात्यकि 'विवेकचन्द्रोदय' में नायक के परामर्शदाता के रूप में अमात्य के कार्य का निर्वाह करते हैं। जहाँ तक युद्ध में विजय प्राप्त करने का प्रश्न है, कृष्ण स्वयं युद्ध में भाग लेते हैं। इसके चलते किसी सेनापति की भूमिका की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं दीख पड़ी है। इन नाटिकाओं में पृथ्वीलाभ का भी उल्लेख नहीं है। इस प्रकार सेनापति या अमात्य के माध्यम से बिजय प्राप्ति की सूचना देने की अपेक्षा नहीं रह गई है। इस दृष्टि से ये नाटिकाएं अन्य नाटिकाओं से भिन्न हैं।

अन्य पात्र—

इसका उल्लेख किया जा चुका है कि पुरुष पात्रों के तृतीय वर्ग के अन्तर्गत नायक या नायिका तथा उनके सहायकों के आदेश का पालन करने वाले चरित्र आते हैं। कञ्चुकी, पत्रवाह, दूत, सारथि, द्वारपाल, ऐन्द्रजालिक, तान्त्रिक, वैतालिक, बन्दिगण, मुनिकुमार सदृश पात्र ऐसे ही हैं। इनका नियोजन अन्य मुख्य पात्रों के कार्य में सहायता देने के लिए किया गया है। वस्तुतः इन पात्रों का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। रत्नावली का कञ्चुकी बाभ्रव्य; प्रियदर्शिका का कञ्चुकी विनय-बसुः; कपूर्रमंजरी का सिद्धपुरुष (तान्त्रिक) भैरवानन्द, वैतालिक रत्नचण्ड, कांचन-चण्ड; विद्धशालभंजिका का पत्रवाहक कुरङ्गक, लाटाधिपति का दूत; कर्णसुन्दरी का प्रणिधि; उषारागोदया का कंचकी, मुनिकुमार, वैतालिक, श्रीकृष्ण का सारथि दारुकि;

चन्द्रकलानाटिका का कंचुकी, प्रमोदोद्यान का संरक्षक शबर तथा पाण्ड्यराज का संदेशहारक बन्दी, दूत; कुवलयावली नाटिका का मातलि; वृषभानुजा का सुबल तथा श्रीदाम जो नायक का मित्र है, मलयजाकल्याण का कंचुकी दौवारिक, द्वारपाल, कौमुद, जामदग्न्य भार्गव, तापसकुमार, दाक्षायण, और दैवधन; विवेकचन्द्रोदय नाटिका के बलभद्र, ऐन्द्रजालिक, वृद्धश्रवा, चारुकण्ठ, सिद्धिदेव, इन्द्र, चन्द्रबल सदृश पात्र नायक नायिका एवं मुख्य सहायकों के निमित्त रंगमंच पर अवतीर्ण होते रहते हैं। इन पात्रों की नियति मुख्यपात्र के आदेश एवं इच्छा का अनुपालन करना मात्र है। ऐसे पात्र नाटिका के अतिरिक्त रूपक की अन्यविधाओं में भी पाये जाते हैं। नाटिका के संदर्भ में ऐसे पात्रों की कोई ऐसी स्वतंत्र भूमिका नहीं रहती जो कथा-वस्तु के विकास में योग दे सके या अन्य पात्रों के व्यक्तित्व की विशेषताओं को उद्घाटित कर सके। अतः चरिताङ्कन की दृष्टि से इस वर्ग के पात्र महत्त्वहीन हैं।

———

सप्तम अध्याय

भाषिकी संरचना

प्रस्तुत अध्याय में नाटिका की भाषिकी संरचना लोकव्यवहार के अनुरूप थी या लक्षण ग्रन्थ का अनुपालन मात्र थी इसका विवेचन किया गया है। बुद्ध के समय से प्रायेण संस्कृत लोक-व्यवहार का माध्यम नहीं रह गयी थी। इसके अतिरिक्त दर्शकों के शिष्ट वर्ग तक नाटिका के अभिनय के सीमित होने के कारण नाटिका में लोकभाषा का वैविध्यपूर्ण रूप दृष्टिगोचर नहीं होता।

इस अध्याय के आरम्भ में नाट्यशास्त्र के आचार्यों की भाषा-प्रयोग से सम्बद्ध मान्यताओं का विवेचन किया गया है। तदनन्तर कतिपय नाटिकाओं में प्रयुक्त भाषा-सम्बन्धी विवरण है। अन्ततः आचार्यों के सिद्धान्त निरूपण के आलोक में नाटिकाओं के भाषा प्रयोग एवं उनके वैविध्य के औचित्य की आलोचना है।

दृश्यकाव्य अभिनय प्रधान होता है।[1] आलंकारिकों ने अभिनय के चार अंग माने हैं—आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य।[2] इन चार अंगों में वाचिक अभिनय को नाट्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में वागभिनय को नाट्य के शरीर के रूप में माना है।[3]

भरत से लेकर विश्वनाथ तक सभी प्रमुख आलंकारिकों ने रूपक के पात्रों द्वारा प्रयुक्त होनेवाली भाषाओं पर विचार किया है। भरत ने रूपक के पात्रों की भाषाओं के चार प्रकार बतलाये हैं—अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा तथा योन्यन्तरी-भाषा[4] उक्त चार भाषाओं में आर्यभाषा की ही प्रमुखता रूपकों में देखी जाती है।

---

१. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,
दृश्यं तत्राभिनेयम्। ६/१

२. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण,
आंगिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा। ६/२

३. भरत, नाट्यशास्त्र,
वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता। १४/२

४. भरत, नाट्यशास्त्र,
भाषा चतुर्विधा ज्ञेया दशरूपे प्रयोगतः। १७/२६

भरत ने आर्यभाषा को संस्कृत और प्राकृत दो भेदों में बांटा है।[५] संस्कृत भाषा के अधिकारी वक्ता के लिए भरत का यह आदेश है कि नायक, चाहे धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त अथवा धीरोद्धत किसी भी वर्ग का हो, उसे रूपक में संस्कृत का प्रयोग करना है। किन्तु परिस्थितिवश उक्त नायक के लिए प्राकृत को भी अपेक्षित बतलाया गया है।[६] जैसे भास रचित 'पञ्चरात्र' नाटक में नायक अर्जुन ने बृहन्नला के परिवर्तित वेश में, परिस्थिति के कारण, प्राकृत का प्रयोग किया है। कीथ ने भी इस ओर संकेत किया है।[७]

संस्कृत भाषा का प्रयोग उन लोगों के लिए वर्जित माना गया है जो ऐश्वर्य से प्रमत्त हैं, जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, जो दरिद्रता से पीड़ित हैं, जो स्वेच्छाचारी हैं और जो उच्चवर्ग के होकर भी शिक्षारहित हैं।[८] प्राकृत का प्रयोग ऐसे पात्रों के लिए भी अनुमोदित है जो जीविका के लिए छद्मरूप में साधुओं के समूह में प्रविष्ट हो गये हैं तथा बौद्ध संन्यासी, तपस्वी तथा भिक्षुक हैं।[९]

नपुंसक पात्र के (उच्च से निम्न वर्ग तक) तथा अन्य निम्न जाति के लोगों के

---

५. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

आर्यभाषाश्रयं पाठ्यं द्विविधं समुदाहृतम्।
प्राकृतं संस्कृतं चैव चातुर्वर्ण्यसमाश्रयम्। १७/३१-३२

६. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

धीरोद्धते सललिते धीरोदात्ते तथैव च।१७/३२
धीरप्रशान्ते च तथा पाठ्यं योज्यं तु संस्कृतम्। १७/३३
एतेषामपि सर्वेषां नायकानां प्रयोगजम्। १७/३३
कारणव्यपदेशेन प्राकृतं संप्रयोजयेत्॥ १७/३४

७. कीथ, **संस्कृत नाटक**, पृ०-३५६

८. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

दरिद्रयाध्ययनाभावयदृच्छादिभिरेव च। १७/३४
ऐश्वर्येण प्रमत्तानां दारिद्र्येण प्लुतात्मनाम्।
अनधीतोत्तमानां च संस्कृतं न प्रयोजयेत्।१७३५

९ भरत, **नाट्यशास्त्र**,

व्याजलिङ्गप्रविष्टानां श्रमणानां तपस्विनाम्।
भिक्षुचक्रचराणां च प्राकृतं संप्रयोजयेत्। १७/३६

लिए प्राकृत का ही विधान किया गया है।[10] दूसरी ओर भरत के ही अनुसार रानियों, वेश्याओं तथा शिल्पजीवियों के लिए स्थितिवश संस्कृत भाषा का प्रयोग मान्य है।[11] इन लोगों को अपवाद मानकर प्राकृत से भिन्न भाषा के प्रयोग को मान्यता क्यों दी गई है इसका भी उल्लेख भरत स्पष्टतः कर देते हैं। राजरानी होने के नाते किसी अन्य राजा के साथ सन्धिविग्रह के सम्बन्ध का अवसर आ सकता है। अतः उस समय रानी संस्कृत का प्रयोग कर सकती हैं। वह पढ़ी लिखी होने के कारण संस्कृत के प्रयोग की क्षमता को भी प्राप्त कर चुकी होती है। साथ ही ग्रह, नक्षत्र तथा पक्षियों के शुभाशुभ की जानकारी भी रानी के लिए अपेक्षित है।[12]

वेश्याओं के लिए उनका कहना है कि वह तरह-तरह के लोगों के सम्पर्क में रहती है, अतः उनके लिए भी प्रयोजनानुसार संस्कृत बोलना मान्य समझा गया है।[13]

कलाओं के विशिष्ट ज्ञान का उपचार करने के लिए, राजा को प्रसन्न करने के हेतु किसी शिल्पकारिणी के लिए भी नाटक में संस्कृत-भाषण का निर्देश है।[14]

नाट्य में काव्य का निर्माण भिन्न-भिन्न देश के विद्वानों के द्वारा होता है। अतः वे अपने अभिप्राय के अनुसार अपनी-अपनी तात्कालिक देशभाषा का प्रयोग करते हैं। मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीक एवं दाक्षिणात्या इन सातों भाषाओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि राजाओं के अन्तःपुर की आश्रित भाषा

---

१०. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

स्त्रीनीचजातिषु तथा नपुंसके प्राकृतं योज्यम्। १७/३७

११. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

राज्ञ्याश्च, गणिकायाश्च शिल्पकार्यास्तथैव च।
कलावस्थान्तरकृतं योज्यं पाठ्यं तु संस्कृतम्।१७/३९

१२. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

सन्धिविग्रहसंबन्धं तथा च प्राप्तवाग्गतिम्।
ग्रहनक्षत्रचरितं खगानां रुतमेव च।
सर्वमेतत्तु विज्ञेयं काव्यबन्धे शुभाशुभम्। १७/४०-४१

१३. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

क्रीडार्थी सर्वलोकस्य प्रयोगे च सुखाश्रयम्।
कलाभ्यासाश्रयं चैव पाठ्यं वेश्यासु संस्कृतम्। १७/४२

१४. भरत, **नाट्यशास्त्र**,

कलोपचारज्ञानार्थी क्रीडार्थी पार्थिवस्य च।
निर्दिष्ट शिल्पकार्यास्तु नाटके संस्कृतं वचः॥ १७/४३

मागधी है, तथा चेट, राजपुत्र एवं श्रेष्ठि-जन की भाषा अर्धमागधी है। विदूषक की भाषा प्राच्या, धूर्तों की भाषा आवन्ती तथा नायिका एवं उनकी सखियों की भाषा शौरसेनी है। युद्धवीरों और नागरिकों की भाषा दाक्षिणात्या और उदीच्यों की भाषा बाह्लीका है।[१५]

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने, भरत की तुलना में, समासशैली में विभिन्न भाषाओं के प्रयोग का विवरण दिया है। उनके अनुसार देवताओं और नीचों को छोड़कर अवशिष्ट पात्रों अर्थात् उत्तम-मध्यम पुरुषों की भाषा संस्कृत होनी चाहिए। अधम पुरुष की भाषा पैशाची और मागधी है।[१६] रामचन्द्र गुणचन्द्र भी स्त्रियों के लिए प्राकृतों का ही विधान करते हैं तथा भरत के समान वे भी कार्यवश पटरानी-मन्त्री-पत्नी, वेश्या तथा संन्यासी को संस्कृत भाषा का प्रयोग करने का अधिकार देते हैं।[१७]

बालक, नपुंसक, ग्रहग्रस्त, मत्त, दारिद्रयग्रस्त, स्त्रीप्रकृतिवाले तथा ऐश्वर्यमत्त उत्तम पुरुष की भाषा प्राकृत मानते हैं।[१८]

चतुर्दश शताब्दी के विश्वनाथ ने भी रूपकों की भाषा सम्बन्धी चर्चा की

---

१५. भरत. **नाट्यशास्त्र**,

अथवा छन्दतः कार्या देशभाषा प्रयोक्तृभिः।
नानादेशसमुत्थं हि काव्यं भवति नाटके ॥ १७/४७
मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्धमागधी।
बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्त भाषाः प्रकीर्तिताः ॥१७/४७
मागधी तु नरेन्द्राणामन्तःपुरसमाश्रया।
चेटानां राजपुत्राणां श्रेष्ठिनां चार्धमागधी ॥१७/५०
प्राच्या विदूषकादीनां धूर्तानामप्यवन्तिजा।
नायिकानां सखीनां च शूरसेन्यविरोधिना ॥
योधनागरकादीनां दक्षिणात्याथ दीव्यताम्।
बाह्लीकभाषोदीच्यानां खसानां च स्वदेशजा ॥१७/५२

१६. रामचन्द्र गुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**,

देवानीचनृणां पाठः संस्कृतेनाथ जातुचित्।
महिषी-मन्त्रीजाया-पण्यस्त्रीणामव्याजलिङ्गिनाम् ॥४/३९

१७. रामचन्द्र गुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**,

भाषा-प्रकृति-वृत्तादेः कार्यतः क्वापि लंघनम्।४/४२

१८. रामचन्द्र-गुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**,

बाल-षष्ठग्रहग्रस्तमत्त-स्त्रीरूप-योषिताम्।
प्राकृतेनोत्तमस्वापि दारिद्रयैश्वर्यमोहिनः ॥ ४/४०

है । उनके अनुसार उत्तम तथा मध्यम श्रेणी के पण्डित पुरुषों की भाषा शौरसेनी प्राकृत किन्तु गाथा (छन्द) में इनकी भाषा माहाराष्ट्री प्राकृत होती है ।[१९] उत्तम संन्यासिनी की भाषा संस्कृत होती हैं, साथ ही कतिपय रानियों मन्त्रिकन्या और वेश्याओं की भी ।[२०] रानी, सखी, बालक, धूर्त्त और अप्सराओं की भाषा में, इनकी चतुरता सूचित करने के लिए संस्कृत को भी ग्रहण किया जा सकता है ।[२१] कार्यवश उत्तमादि पुरुषों की भाषा बदल भी दी जा सकती है ।[२२]

जो पात्र जिस देश का हो उसकी भाषा भी उसी देश की होनी चाहिए । अन्त:पुर में रहने वाले वामनादि की भाषा मागधी, चेट, राजकुमार और सेठ वर्ग की अर्द्धमागधी है । विदूषक आदि प्राच्या बोलते हैं तो धूर्त्त लोग अवन्तिजा ।

वीरयोद्धा नागरिक और जुआरियों की भाषा दाक्षिणात्य (वैदर्भी) होती है । शबर और शकारादि की उक्तियों में शाबरी भाषा का प्रयोग किया जाता है । उत्तर-देश निवासियों की बाह्लीक, द्राविड आदि देशवासियों की भाषा द्राविड़ी होती है, अहीरों की भाषा आभीरी और चाण्डाल आदि की भाषा चाण्डाली । काष्ठपात्र नौकादि से जीविका निर्वाह करने वाले की भाषा आभीरी अथवा शाबरी, लोहार आदि की भाषा पैशाची, उत्तम या मध्यम जासियों की शौरसेनी, बालकों, नपुंसकों नीचग्रहों, (बालग्रह आदि का विचार करने वाले) उन्मत्त और आतुर पुरुषों की भाषा शौरसेनी किन्तु कहीं-कहीं संस्कृत भी होती है । ऐश्वर्य से मत्त, दरिद्र, भिक्षुक, वल्कल-

---

१९. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण,**

पुरुषाणामनीचानां संस्कृतं स्यात्कृतात्मनाम् । ६/१५८
शौरसेनी प्रयोक्तव्या तादृशीनां च योषिताम् ।
आसामेव तु गाथासु महाराष्ट्रीं प्रयोजयेत् ।। ६/१५९

२०. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण,**

संस्कृतं संप्रयोक्तव्यं लिंगिनीषूत्तमासु च ।
देबीमन्त्रिसुतावेश्यास्वपि कैश्चित्तथोदितम् ।। ६/१६७

२१. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण,**

योषित्सखीबालवेश्याकितवाप्सरसां तथा ।
वैदग्ध्यार्थं प्रदातव्यं संस्कृतं चान्तरान्तरा ।। ६/१६९

२२. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण,**

यद्देशं नीचपात्रं तु तद्देश्यं तस्य भाषितम् ।
कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाविपर्ययः ।।६/१६८

धारी की भाषा प्राकृत होनी चाहिए।[२३]

उपर्युक्त आलंकारिकों के भाषासम्बन्धी विचारों से यह ज्ञात होता है कि उत्तम तथा मध्वम वर्ग के सभी पुरुष पात्र तथा स्त्री पात्र प्रयोजनानुसार संस्कृत अथवा प्राकृत भाषा का प्रयोग कर सकते हैं। किन्तु इस नियमन का अनुपालन किसी भी रूपक उपरूपक में नहीं पाया जाता। ऐसी स्थिति में नाट्यशास्त्रकारों द्वारा 'प्रयोजनानुसार' भाषा प्रयोग की सुविधा देने का क्या अर्थ होता है जब किसी ने इसका पालन ही नहीं किया ?

कवियों से यही अपेक्षा की जाती है कि उनकी कृतियों को चाहे जिस दृष्टि से पढ़ा जाए उनमें स्वाभाविकता अवश्य है। काव्य के विभिन्न भेदों में रूपक ही एक ऐसा परिक्षेत्र है जिसमें पाठकों की उक्त जिज्ञासा का समाधान हो सकता है। पद्यात्मक प्रबन्ध काव्य की रचनाओं में कवियों की अनुभूतियां और उनकी अभिव्यक्ति में उतनी स्वाभाविकता की अपेक्षा करना सम्भव नहीं है जितनी कि रूपक में। रूपक के दृश्य होने के कारण उसके परिशीलन में पाठक अथवा दर्शक में परितृप्ति की मात्रा ही रचना की सफलता का मापदण्ड होती है।

सप्तम शताब्दी के श्रीहर्ष की नाटिकाओं के भाषा-प्रयोग को सर्वप्रथम देखा जाए। इनमें सूत्रधार संस्कृत और कहीं प्राकृत में संलाप करते हैं जिसे तटस्थभाव से विचार करने पर अस्वाभाविक ही कहा जा सकता है। रत्नावली के पुरुष पात्रों में

---

२३. भरत, नाट्यशास्त्र,

अत्रोक्ता मागधीभाषा राजान्तःपुरचारिणाम्।
चेटानां राजपुत्राणां श्रेष्ठानां चार्धमागधी॥ १७/६०
प्राच्या विदूषकादीनां धूर्तानां स्यादवन्तिजा।
योधनागरिकादीनां दाक्षिणात्या हि दीव्यताम्॥ १७/६१
शबराणां शकादीनां शबरीं संप्रयोजयेत्।
बाह्लीकभाषोदीच्यानां द्राविडीद्रविडादिषु॥ १७/६२
आभीरेषु तथाभीरी चाण्डाली पुक्कसादिषु।
आभीरी शाबरी चापि काष्ठपात्रोपजीविषु॥ १७/६३
तथवाङ्गारकारादौ पैशाची स्यात्पिशाचवाक्।
चेटीनामप्यनीचानामपि स्यात्संस्कृतं क्वचित्॥ १७/६४
बालानां षण्ढकानां च नीचग्रहविचारिणाम्।
उन्मत्तानामातुराणां सैव स्यात्संस्कृतं क्वचित्॥ १७/६५
ऐश्वर्येण प्रमत्तस्य दारिद्र्योपद्रुतस्य च।
भिक्षुवल्कधरादीनां प्राकृतं संप्रयोजयेत्॥ १७/६६

राजा उदयन, मन्त्री यौगन्धरायण, मन्त्री वसुभूति तथा कंचुकी बाभ्रव्य ही संस्कृत का प्रयोग करते हैं, जबकि विदूषक, ऐन्द्रजालिक तथा रानी वासवदत्ता से लेकर सखी, दूती, चेटी, प्रतिहारी सभी नारीपात्र प्राकृत का प्रयोग करते हैं। श्रीहर्ष की दूसरी कृति प्रियदर्शिका में भी ऐसी ही बात देखी जाती है। विदूषक को छोड़कर सभी पुरुष पात्र वत्सराज, मन्त्री विजयसेन, रुमण्वान्, कंचुकी संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं और रानी से लेकर सखी चेटी सभी स्त्रीपात्र प्राकृतभाषी हैं। श्रीहर्ष के पश्चात् महाकवि राजशेखर की नाटिका में भाषाप्रयोग में कुछ भिन्नता पायी जाती है। विद्धशालभंजिका के प्रथम अंक में प्राकृत-भाषी विदूषक दक्षिणानिल का वर्णन संस्कृत में धाराप्रवाह पद्यरचना करके राजा को सुनाता है,[२४] और राजा उसके संस्कृत-प्रयोग पर आश्चर्य भी प्रकट करता है।[२५] नियमानुकूल प्राकृतभाषी विदूषक किस प्रकार एकाएक संस्कृत का प्रयोग कर बैठता है, यह स्पष्ट नहीं है।

इसी नाटिका के तृतीय अंक में विचक्षणा नामक एक दासी भी प्राकृत के बदले संस्कृत में पद्यरचना कर डालती है।[२६] स्त्रीपात्र से यदि संस्कृत का प्रयोग करवाना राजशेखर को अभीष्ट था तो महारानी को इससे वंचित क्यों रखा गया है, जिसे नियम के पालनमात्र के लिए राजा की संस्कृतमयी उक्तियों के उत्तर में सदा प्राकृत का प्रयोग करना पड़ा है। आलंकारिकों ने भाषा-प्रयोग में रानी को ही संस्कृत प्रयोग के लिए थोड़ी छूट दी है। राजशेखर का क्या यह एक वहम ही कहा जायगा कि एक दासी के मुख से निःसंकोच संस्कृत में पद्यरचना करवा डाली है। यहां न तो कोई प्रयोजन है और न विशेष स्थिति ही स्पष्ट है। अतः यह कवि की स्वेच्छाचारिता का ही परिचायक है।

---

२४. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका,**

इह हि नववसन्ते मञ्जरीपुञ्जरेणु-
च्छुरणधवलदेहाबद्धहेलं चरन्ति।
तरलमलिसमूहा हारिहुंकारिकण्ठा
बहुलपरिमलाली सुन्दर सिन्धुवारम्॥ १/३०

२५. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका,** अं-१, पृ-१९

राजा—(किञ्चिद्विहस्य) सखे ! संस्कृतेऽपि प्रगल्भसे।

२६. राजशेखर, **विद्धशालभंजिका,**

सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवी-
मारात् त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेशं विषं मन्यते।
आस्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारशय्यातले
संकल्पोपनमत्तदाकृति-रसायत्तेन चित्तेन सा।३/२

तु० राजशेखर, विद्धशालभंजिका, ३/१

विल्हण विरचित 'कर्णसुन्दरी' नाटिका में भाषा-प्रयोग सम्बन्धी कुछ अनियमितता देखी जाती है। नियमानुसार राजा, मन्त्री संस्कृत बोलते हैं, किन्तु विदूषक, रानी, सखी प्राकृतभाषी होते हुए भी संस्कृत भाषा का व्यवहार यत्र तत्र करते पाये जाते हैं। प्रथम अंक में विदूषक राजा के साथ वार्तालाप करते हुए संस्कृत में पद्यरचना करता है।[२७] इसी नाटिका के द्वितीय अंक में सखी और नायिका के बातचीत के क्रम में सखी संस्कृत में दो पद्य रच कर सुनाती है।[२८] नायिका भी अपने प्रेमप्रसंग में, महारानी के कोप की परवाह किये बिना नायक से मिलने की योजना संस्कृत में रचित पद्य के माध्यम से प्रस्तुत करती है।

राजशेखर की परंपरा में, विल्हण की रचना कर्णसुन्दरी में भाषा प्रयोग-सम्बन्धी भिन्नता पायी जाती है। इस नाटिका में नायिका, सखी तथा विदूषक द्वारा संस्कृत भाषा के प्रयोग का औचित्य विचारणीय है।

चौदहवीं शताब्दी के शिंगभूपाल ने, जो स्वयं एक आलंकारिक हैं, स्वलिखित नाटिका कुवलयावली के इक्कीस पात्रों में से बीस पात्रों से नियमानुसार भाषा-प्रयोग कराकर, अन्त में परिचारिका-वर्ग की एक सामान्य दासी घनसारिका द्वारा संस्कृत का प्रयोग करवाया है।[३०] भाषा-प्रयोग की दिशा में उक्त प्रकार की अव्यवस्था को

---

२७. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

कुर्वाणाः प्राणनाथे प्रणयकलिरुषं जर्जरा गुर्जरीणां······
कामारम्भश्रमाम्भःकणहरणरसोल्लासिनो वान्ति वाताः। १/५०

२८. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

नीरागा मृगलाञ्छने मुखमपि स्वं नेक्षते दर्पणे।
मुग्धाक्षी सुभग त्वयि प्रतिपदं प्रेमाधिकं पुष्यति। २/२९

तु० विल्हण, कर्णसुन्दरी २/३०

२९. विल्हण, **कर्णसुन्दरी**,

जाने सखि स्मरशिखिज्वलिता जनस्य
तस्य व्रजामि निकटं परिभूय लज्जाम्।
पश्चाद्यथाभिरुचितं विदधातु देवी
किं दुःसहविरहपावकतोऽहि वा स्यात्॥ २/३४

तु० विल्हण, **कर्णसुन्दरी**, २/३५

३०. शिंगभूपाल, **कुवलयावली**,

आस्ते पीठे क्षणमिव बहिर्मन्त्रिवृद्धानुरोधाद्
धत्ते हेलां परिजनवचोविक्रियासु क्रियासु।
नेच्छत्यन्तःपुरपरिचयं राजकार्यापदेशात्
तस्याः प्रेम्णा तटकितधृतिश्चक्रवर्ती यदूनाम्॥ ४/१

भाषाओं की संक्रमणकालीन स्थिति के नाम पर स्वीकार करना उचित नहीं जान पड़ता है। आलंकारिकों की भाषा सम्बन्धी अधिनायकवादी मान्यताओं पर इसे एक प्रकार का कठोर प्रहार ही समझना चाहिए।

नाटिका के विकास के क्रम में सोलहवीं शताब्दी की मथुरादासविरचित वृषभानुजा नाटिका में भी उक्त प्रकार की भाषा सम्बन्धी अव्यवस्था पर्याप्तमात्रा में मिलती है। इसमें यथारीति नटी और सूत्रधार प्राकृत तथा संस्कृत में सम्भाषण करते हैं; किन्तु प्राकृत-भाषी वर्ग के विदूषक, नायिका राधा, सखी चम्पकलता और सखी तमालिका प्राकृत-भाषा को छोड़कर संस्कृत का व्यवहार प्रचुर मात्रा में करती है।

विदूषक उच्चवर्ग में उत्पन्न होने के कारण संस्कृत[31] का ज्ञाता हो सकता है, किंतु निम्नवर्ग की सखियों में इतनी क्षमता की कल्पना करना कठिन है। उक्त नाटिका में सखी चम्पकलता,[32] सखी तमालिका[33] एक बार ही नहीं, अनेक बार संस्कृत में पद्यरचना करती हैं। भाषा के विकास के क्रम में प्राकृत का व्यवहार जनसाधारण में सामान्य रूप से होने लगा था और इसीलिए नाटक अथवा नाटिकाओं में भाषाओं के प्रयोग की व्यवस्था आलंकारिकों को करनी पड़ी थी। मथुरादास ने प्राकृत को छोड़कर संस्कृत का प्रयोग इन पात्रों से क्यों करवाया है, यह एक अनुत्तरित प्रश्न है। कोई पात्र संस्कृत में पद्यरचना कर सकता है, किन्तु सम्भाषण में संस्कृत के प्रयोग में सर्वथा

---

३१. मथुरादास, **वृषभानुजा**,

प्रियालापः—सुधारश्मिः सद्यस्तिमिरनिकरान्तं विरचय-
न्नलिन्देभ (म्भः) स्पन्दं शशिमणिसमुत्थं च वितरन्।
उदेत्यादौ रक्ताम्बुजसमरुचि कैरववने
प्रमोदं तन्वानो मधुपवनितागीतिमधुरम्॥ ३/७

३२. मथुरादास, **वृषभानुजा**, ३/६, ४/३, ४/६, ४/१०, ४/१८०, ४/२५

चम्पकलता—आलिजनेषु सुतनु सखि संप्रवृत्ते
कर्णं ददाति रतिकेलिकथाप्रसङ्गे।
बालाजनेन परतोऽति वितन्यमाने
लीलाविधौ च पुनरेव ददाति चित्तम् ३/८

३३. मथुरादास, **वृषभानुजा**, ४१४,४१६

तमालिका—उत्पादयत्यलमिदं मनसो विषादं
सीदत्सरोरुहमिमं वदनं त्वदीयम्।
ज्ञात्वा निदानमहमत्र समानदुःखा
प्राणैरपि प्रियतमे भवितुं समीहे॥ ४/१

असमर्थ है —ऐसा कैसे मान लिया जाय । संस्कृत में पद्यरचना करने वाले प्राकृत-भाषी पात्र कहीं भी संस्कृत भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं। कर्णसुन्दरी और वृष-भानुजा इन दो नाटिकाओं में नायिका संस्कृत का प्रयोग करती है।[३४] उक्त पात्रों में नायिका ही परिस्थितिवश अपवाद रूप में संस्कृत भाषा का प्रयोग करने की अधिका-रिणी हो सकती है,[३५] जैसा कि नाट्यशास्त्रज्ञों का आदेश है। मथुरादास द्वारा भाषा-प्रयोग में इस तरह की क्रांति करने का उद्देश्य क्या रहा होगा यह कथमपि स्पष्ट नहीं होता।

यहाँ विचारणीय बिन्दु यह है कि संस्कृत रूपकों में और विशेषकर नाटिकाओं में विभिन्न पुरुषपात्र अथवा नारीपात्रों के मुख से रूपककारों ने संस्कृत अथवा प्राकृत के अनेकानेक उपभेदों का प्रयोग करवाया है। पढ़ने या सुनने में यह अस्वाभाविक जैसा प्रतीत होता है कि किसी रूपक में संस्कृतभाषी वक्ता नायक के साथ प्राकृतभाषिणी नायिका या अन्य नारी धड़ल्ले से संलाप करती है। प्रश्न उठता है कि क्या भरत आदि मान्य आचार्यों द्वारा पात्रानुसार भाषा-विभाजन के कारण ही रूपककार इस कष्टसाध्य और बहुलांश में अस्वाभाविक प्रयास करने को बाध्य हुए ? अकेले मृच्छकटिक प्रकरण में संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत के प्रायः सभी उपभेदों का प्रयोग मिलता है, जिनका प्रयोग नायक नायिका के अतिरिक्त राजसभा से सम्बद्ध पुरुष तथा स्त्री पात्र करते हैं। यदि तकनीकी नियमों के कारण ऐसा किया गया है तो कहना पड़ेगा कि इससे काव्य की इस विधा की स्वाभाविकता नियम-परिपालन के दलदल में विनष्ट हो जाती है।

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में प्राकृत को स्त्र्युचित भाषा स्वीकार किया है।[३६] साथ ही यह भी छूट दे दी है कि विशेष परिस्थितियों में नारीपात्र संस्कृत का भी प्रयोग करने में समर्थ हैं।[३७] तो फिर 'स्त्रीप्राया' सट्टक की तरह केवल संस्कृत भाषा में रचित रूपक के किसी प्रभेद की कल्पना भरत ने क्यों नहीं की जिसमें संस्कृत-भाषी स्त्री-पुरुष पात्र ही होते। किसी अन्य पात्र के द्वारा संस्कृत-भाषा के पूछे गये प्रश्नों का उत्तर संस्कृत में न देकर प्राकृत में ही दिया जाए, ऐसे बन्धन के पीछे कौन-

---

३४. मथुरादास, वृषभानुजा, ४/७, ५/८, ४/१४

संयोगेऽमृतसंकाशो वियोगे विषसन्निभः।
नादोऽयं सखि हेतुर्मे जीवने मरणेऽपि वा ॥ ४/११

३५. भरत, नाट्यशास्त्र, १७/३९

३६. भरत, नाट्यशास्त्र,

स्त्रीनीचजातिषु तथा नपुंसके प्राकृतं योज्यम् । १७/३७

३७. भरत, नाट्यशास्त्र, १७/४०-४१

सा उद्देश्य रहा होगा ? राजशेखर तो संस्कृत-भाषा की अपेक्षा प्राकृत की ही वकालत डटकर करते दीखते हैं।

अन्तःपुर से सम्बद्ध होने के कारण नायिका चेटी से किस प्रकार प्राकृत में संलाप करती है उसी प्रकार विदूषक को भी राजा के साथ रहस्य की बात संस्कृत में ही करनी चाहिए थी ; किन्तु ऐसा पाया नहीं जाता, जो निश्चय ही अस्वाभाविक प्रतीत होता है। यहां यह भी बात सोचने की है कि विदूषक को दोनों भाषाओं संस्कृत तथा प्राकृत का ज्ञान है तभी तो वह राजा के द्वारा संस्कृत में व्यक्त प्रेमालाप अथवा विषयवस्तु से सम्बद्ध गम्भीर उक्ति को समझते हुए, उत्तर (प्राकृत में) देता है और राजा भी उस प्राकृत को समझ लेते हैं। उसी प्रकार नायक राजा अपनी नायिका से प्रेम निवेदन संस्कृत में करता है, जिसे समझकर नायिका (ज्येष्ठा या कनिष्ठा, प्राकृत में उत्तर देती है। क्या किसा प्रकार यह प्रेमालाप स्वाभाविक कहा जा सकता है, जबकि राजा और रानी दोनों को शास्त्रकारों ने 'कारणव्यपदेशेन' भाषा परिवर्त्तन का अधिकार दिया है ?

कहा गया है कि जो शिक्षित नहीं हैं वह संस्कृत में न बोलकर प्राकृत में बोले। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि प्राकृत-भाषी अशिक्षित है तो वह संस्कृत में कहे गये वाक्य को समझकर कैसे प्रत्युत्तर देता है ? पुनः, जो दो भाषाओं का ज्ञाता है उसे शिक्षा रहित कैसे कहा जा सकता है। रूपक उपरूपक में जब राजा अथवा शिष्टजन रानी अथवानिम्न श्रेणी के दासी आदि प्राकृत-भाषी पात्रों से वार्तालाप करते हैं, तो उन्हें अशिक्षित जानकर प्राकृत का ही प्रयोग करना चाहिए। किन्तु कहीं भी रूपकों में राजा मन्त्री प्राकृत बोलते हुए नहीं पाये जाते हैं। इसका क्या हेतु हो सकता है ? क्या शिक्षित राजा अथवा शिष्टजन के लिए प्राकृत कोई निषिद्ध या वर्जित भाषा थी ?

नाटक-नाटिका के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि किसी रूपक में जितने पात्र मञ्चस्थ होते हैं, वे सभी पात्र संस्कृत-प्राकृत दोनों का ज्ञान रखने वाले होते हैं और साथ ही दर्शक-सामाजिक भी उन-उन भाषाओं के ज्ञाता होते हैं, तो फिर पात्र विशेष के लिए श्रेणी-विभाजन के नाम पर पृथक्-पृथक् भाषाओं के प्रयोग की परम्परा सहेतुक प्रतीत नहीं होती।

यदि यह कहा जाय कि मञ्चस्थ पात्र अथवा सामाजिक उक्त दोनों भाषाओं का पूर्ण ज्ञान नहीं रखते हैं तो रसानुभूति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। तब ऐसी स्थिति में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के सम्मिश्रण का क्या तुक हो सकता है ?

भरत आदि आचार्यों ने भाषा अथवा विभाषाओं का पात्रविशेष के लिए निर्देश क्या अपने समय में प्रचलित समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा प्रयुक्त की जाने

वाली भाषाओं की स्थिति को देखते हुए किया था ? अथवा अपनी ओर से भाषाओं तथा विभाषाओं के प्रयोग में अपने आदेशों और आदर्शों को मापदण्ड बनाकर भविष्य के रूपक-लेखकों पर थोप दिया था ? भरत, रामचन्द्र, गुणचन्द्र, विश्वनाथ आदि आचार्य पात्र विशेष के लिए अमुक-अमुक भाषाओं का निर्देश भी करते हैं और परिस्थिति की विवशता के नाम पर अपने ही द्वारा स्थिर किए गए निर्देशों को लक्ष्य बनाते हुए उनमें परिवर्त्तन की भी छूट देते हैं ।

रूपकों की रचना के क्रम में सामाजिक स्थिति, साधारणीकरण की सहजता और स्वाभाविकता आदि पर विचार करके यदि शास्त्रकारों का भाषासम्बन्धी निर्देश होता तो प्रायः यह विभाजन भ्रामक प्रतीत न होता । रूपकों के प्राण उनकी प्रेषणीयता में बसते हैं । इनकी सारी भाषाओं का एक साथ ज्ञाता होने वाले समाज की केवल एक आदर्श कल्पना ही की जा सकती है । पुनः विभिन्न पात्रों द्वारा प्रयुक्त प्राकृतों का संस्कृत रूपान्तर प्रत्येक रूपक में देने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? यह रूपान्तर क्या नाट्यकारों ने परवर्त्ती काल के सामाजिक अथवा पाठक को ध्यान में रखकर किया है ? रूपकों के पुरुष और नारी-पात्रों पर भिन्न भाषाओं को लादने का क्या औचित्य हो सकता है ? इस प्रकार समाज विशेष की स्थिति, विशेषपात्रों द्वारा भाषाविशेष के प्रयोग करने का कठोर बन्धन क्या अर्थ रखता है ?

रूपकों में विभिन्न पात्रों के लिए भाषा-प्रयोग सम्बन्धी आचार्यों की जो उक्तियाँ हैं उनका विश्लेषण करने पर किसी रूपक में भाषा-वैविध्य के निम्नलिखित आधार स्थिर किये जा सकते हैं ।

भाषा प्रयोग की विविधता का एक आधार सामाजिक स्तरीकरण हो सकता है । नीच वर्ग तथा अनीच वर्ग के लिए भिन्न भाषाओं के प्रयोग का उल्लेख इसी की ओर संकेत करता है ।

दूसरा आधार व्यवसाय हो सकता है । शिल्पी, मन्त्री, गणिका, चेट, श्रेष्ठी, लिंगी, काष्ठपात्रोपजीवी आदि के लिए अलग-अलग भाषा नियत की गई है ।

तीसरा आधार योनि-भेद माना गया है । इसी कारण स्त्री, नपुंसक के लिए भिन्न-भिन्न भाषा का प्रयोग निर्धारित किया गया है ।

चौथा आधार आर्थिक स्थिति है । दारिद्रय से ग्रस्त, ऐश्वर्यत्रमत्त द्वारा अलग-अलग भाषा के प्रयोग का उल्लेख इसी की ओर संकेत करता है । धूर्तों के लिए पृथक् भाषा-प्रयोग का विधान पात्रों के गुणावगुण को आधार बनाकर किया गया है ।

भाषा-प्रयोग में विविधता का एक महत्त्वपूर्ण आधार क्षेत्रीयता है । उदीच्य द्राविड, मागध, खस आदि वर्गों के उल्लेख से यह स्पष्ट है ।

भाषा प्रयोग की विविधता के उपर्युक्त ये सभी आधार परस्पर व्यावर्तक

नहीं हैं। अतः एक आधार अनुसार निर्धारित भाषा, दूसरे आधार के अनुसार नियत भाषा से भिन्न है। उदाहरण स्वरूप अनीच पुरुष-पात्रों की भाषा संस्कृत होनी चाहिए। वैसी स्थिति में आचार्यों द्वारा राजपुत्र, श्रेष्ठी, विदूषक आदि की भाषा को संस्कृत से भिन्न बताना कहां तक उचित है ?

इसी प्रकार मानसिक स्थिति के आधार पर भाषा प्रयोग के विधान का समर्थन करना कठिन है। उन्मत्त, रोगी, धूर्त अलग-अलग भाषा का प्रयोग करें—इसका तर्कसम्मत कारण नहीं दीख पड़ता है। इस उलझन को दूर करने के लिए इनमें प्राथमिकता निर्धारित की जा सकती है, पर आचार्यों की उक्तियो में प्राथमिकता का कोई संकेत नहीं मिलता। क्या सामाजिक आधार की तुलना में व्यवसाय को प्रश्रय दिया जाय या व्यवसाय की तुलना में योनिभेद या क्षेत्रीयता को ? आचार्यों के भाषा-प्रयोग सम्बन्धी विवेचन में इन बिन्दुओं पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

वस्तुतः 'कारणव्यपदेश' तथा 'वैग्ध्य' इन दोनों के आधार पर संस्कृत या प्राकृत किसी भी भाषा के प्रयोग की छूट देकर आचार्यों ने अपनी स्थापनाओं की सार्थकता क्षीण कर दी है। इस प्रकार उनकी भाषा प्रयोग सम्बन्धी व्यवस्था निरर्थक प्रतीत होने लगती है। तब क्या यहां उत्सर्ग-अपवाद का सम्बन्ध मान लिया जाय ? पर इसमें भी विसंगति दीखती है। दारिद्रय से आक्रांत पात्र को संस्कृत का आश्रयण नहीं करना चाहिए, पर मृच्छकटिक का चारुदत्त संस्कृत में ही बोलता है।

आचार्यों की भाषा सम्बन्धी मान्यताओं के सन्दर्भ में कतिपय बिन्दु विचारणीय हैं तथा एतत्सम्बन्धी समाधान अपेक्षित है।

प्रथमतः अगर किसी रूपक के सभी पात्रों में कथोपकथन को समझने की क्षमता मान ली जाय तो वैसी स्थिति में यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या सभी पात्र सभी भाषाओं से परिचित हो सकते हैं ? संस्कृत, मागधी, अर्धमागधी, प्राच्या, आवन्तिजा, द्राविड़ी, शाबरी, आभीरी, शौरसेनी, माहाराष्ट्री इन सभी भाषाओं को समझने की क्षमता क्या सभी पात्रों में सम्भव है ?

वस्तुतः प्रेषणीयता की दृष्टि से किसी एक रूपक में इतने प्रकार की भाषाओं के प्रयोग का औचित्य स्वीकार करना कठिन है।

इस सन्दर्भ में दूसरा विचारणीय बिन्दु रसानुभूति है। रूपक में रसाभिव्यंजना का अत्यधिक महत्त्व है (अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः)। अगर रूपक में रस की सम्यक् विवृति अपेक्षित हो और धनिक के शब्दों में रस काव्यार्थाश्रित हो तो सामाजिक की रसानुभूति के लिए जो भूमिका अपेक्षित है, क्या भाषा की विविधता के रहते हुए सम्भव है ? भाषा की विविधता के परिवेश में सामाजिक के लिए तो यह किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हो सकता।

इन सारी स्थितियों पर विचार करने के पश्चात् लक्षणकारों द्वारा दिये गये भाषा सम्बन्धी विवरण किसी निश्चयात्मक निर्णय पर नहीं पहुंचाते । नायिकाओं की भी भाषासम्बन्धी स्थिति पाठकों और आलोचकों को दोलायमान मन:स्थिति में लाकर छोड़ देती है । ऐसी परिस्थिति में यह कहना होगा कि भरत आदि मान्य आलंकारिकों ने सामान्य जीवन में स्वाभाविक रूप में प्रचलित भाषाओं की उपेक्षा करते हुए आदर्शवादी दृष्टिकोण अपनाकर तदनुकूल भाषिक मापदण्ड नाट्यलेखकों पर थोप दिया है ।

संस्कृत नाटिका के संदर्भ में यह बात कही जा सकती है कि इसका अभिनय गिने-चुने जनों के लिए अन्तःपुर के परिवेश में होता था । अत: उपरिनिर्दिष्ट विसंगतियाँ नाटिका के सन्दर्भ में सम्भव नहीं हो सकती । पर विभिन्न नाटिकाओं के पात्रों के भाषा प्रयोग के विश्लेषण द्वारा यह स्पस्ट किया जा चुका है कि ये विसंगतियां नाटिका के सन्दर्भ में भी उतनी ही सुस्पष्ट हैं जितनी अन्य रूपक भेदों में ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भाषा प्रयोग सम्बन्धी मान्यताओं के सन्दर्भ में आचार्यों ने गतानुगातिकता का पालन किया है । फलत: कालान्तर में भाषा प्रयोग रूढ़िपालन का पर्याय बनकर रह गया । संस्कृत नाटिका के सन्दर्भ में भी यह स्थिति परिलक्षित होती है ।

— —

सहायक ग्रन्थ सूची

अग्निपुराण, (स०) श्रीरामशर्मा (१९३९) बरेली, वेदनगर, संस्कृत संस्थान

अभिनवगुप्त, अभिनवभारती, (स०) नगेन्द्र (१९६०), दिल्ली, हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

अश्वघोष, सौन्दरनन्द, (स०) सूर्यनारायण चौधरी (१९५९) पूर्णिया संस्कृत भवन।

उपाध्याय, बलदेव (१९५३) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बनारस

——— (१९६६) महाकवि भास एक अध्ययन, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन

ऋग्वेद, (स०) मैकडोनल (१९३४) लन्दन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

ओझा, दशरथ (स० २०११) हिन्दी नाटकों का उद्भव और विकास, दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स।

कठोपनिषद्, (सं०) सुरेन्द्रदेव शास्त्री (१९३८) वाराणसी, चौखम्बा विद्या भवन

कालिदास, मेघदूत, (स०) (१९६४) वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन

——— कुमारसम्भव, (स०) सूर्यकान्त (१९६२) दिल्ली साहित्य अकादमी

——— अभिज्ञानशाकुन्तल, (स०) शारदारंजन राय (१९५३) कलकत्ता।

कालिदास रघुवंश, (सं०२००७) उज्जैन, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्।

कालिदास, विक्रमोर्वशीय (स०) रामचन्द्र मिश्र (१९४३) वाराणसी चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

———मालविकाग्निमित्र, स० (सं ३००७) काशी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्।

कीथ, ए०बी०, संस्कृत नाटक, (अनु०) उदयभानु सिंह, (१९७१) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

कृष्णमिश्र, प्रबोधचन्द्रोदय (स०) सीताकृष्ण नम्बियार, (१९७१) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास

गैरोला, वाचस्पति, (१९६०) **संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास**, बनारस, चौखम्बा विद्याभवन ।

———————(१९६७), **भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनयदर्पण**, इलाहाबाद, ३५/९ करेला बाग कालोनी ।

चतुर्वेदी, सीताराम (१९६४) **अभिनवनाट्यशास्त्र**, इलाहाबाद, किताबमहल ।

————————**कालिदास ग्रन्थावली**, (स० २००७) काशी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्

जगन्नाथ, **रसगंगाधर**, (स०) राकेशभट्ट (१९३९) बम्बई, निर्णयसागर प्रेस ।

तिलक,बालगंगाधर (१९७३) **श्रीभगवद्गीतारहस्य**, पुणें, केसरी मुद्रणालय ।

त्रिपाठी, रमाकान्त, (१९६९) **संस्कृत नाट्य सिद्धांत**, बनारस, चौखम्बा विद्य - भवन ।

दण्डी, **काव्यादर्श**, (अनु०)व्रजरत्नदास (सं०१९८८) बनारस, मास्टर खेलाड़ी लाल

———**काव्यादर्श**, (स०) पं० रंगाचार्य रेड्डी शास्त्री (१९३८) पुणे, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट

दामोदर गुप्त, **कुट्टनीमत**, वाराणसी, इन्डोलौजीकलहाउस

दास, श्यामसुन्दर, (स०२००८) रूपकरहस्य, प्रयाग, इण्डियन प्रेस लिमिटेड ।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद, 'अशोक के फूल' **गद्य संकलन**, मुजफ्फरपुर, बिहार विश्वविद्यालय ।

धनञ्जय, **दशरूपक** (स०) भोलाशंकर व्यास (१९६२) वाराणसी चौखम्बा संस्कृत सीरीज ।

नगेन्द्र, (स०२०१४), **अरस्तू का काव्यशास्त्र**, इलाहाबाद, भारती-भण्डार ।

———(१९६८) **भारतीय नाट्य साहित्य**, एस० चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली ।

पद्मपुराण, (स०) श्रीराम शर्मा, (१९६८) बरेली, संस्कृत संस्थान ।

पाण्डेय, चन्द्रशेखर तथा नानूराम व्यास, (१९६०) **संस्कृत साहित्य का इतिहास**, कानपुर, साहित्य निकेतन ।

पाणिनि, **अष्टाध्यायी** (स०) गोपाल शास्त्री (१९४७) वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज

पोद्दार, कन्हैयालाल (स० २०११) **संस्कृत साहित्य का इतिहास**, काशी नागरी प्रचारणी सभा ।

बाणभट्ट, **हर्षचरित** (स०) वी० पी० काणे (१९६५) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास ।

बिल्हण, **कर्णसुन्दरी,** (स०) पण्डित दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरंग (१९३२) बम्बई पाण्डुरंग जावजी।

भट्टनारायण, **वेणीसंहार** (सं) गौरीनाथ पाठक (स०१९७७) काशी, शारदा भवन।

भट्टोजिदीक्षित, **सिद्धांतकौमुदी** (स०) श्री सीताराम शास्त्री (वि. द. १९७७) वाराणसी राजस्थान संस्कृत कालेज।

भरत, **नाट्यशास्त्र** (१८९४) बम्बई, निर्णय सागर प्रेस।

——**नाट्यशास्त्र,** (स०) मधुसूदन शास्त्री (स०२०५८) काशी, हिन्दु विश्वविद्यालय अनुसन्धान समिति।

भवभूति, **महावीरचरित** (स०) रामचन्द्र मिश्र (१९५५) वाराणसी चौखम्बा विद्याभवन।

भवभूति, उत्तररामचरित (स०) शेषराजशर्मा (१९६२) वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

भवभूति, **मालतीमाधव** (स०) शेषराज शर्मा (१९५४) वाराणसा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

भास, **स्वप्नवासवदत्त** (स०) पी० पी० शर्मा (१९४५) इलाहाबाद, रामनारायण लाल।

——**प्रतिमानाटक** (स०) रामचन्द्रमिश्र (१९५०) वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय।

——**अभिषेकनाटक** (स०) रामचन्द्र मिश्र (१९६२) वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन।

भामह, **काव्यालंकार** (स०) देवेन्द्रनाथ शर्मा (१९६२) पटना, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, **सत्यहरिश्चन्द्र** (सं० १९७२) पटना, लक्ष्मी प्रकाशन।

भोजदेव, **सरस्वतीकण्ठाभरण** (स०) कामेश्वर नाथ मिश्र (१९७६) वाराणसी चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

मथुरादास, **वृषभानुजा,** (स०) पं० शिवदत्त (१९२७) बम्बई. निर्णयसागर प्रेस।

मदन, **पारिजातमञ्जरी,** (स०) (१९०६) बम्बई, एजुकेशन सोसाइटी प्रेस।

मनुस्मृति (स०) हरगोविन्दशास्त्री (१९५५) वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

मम्मट, **काव्यप्रकाश,** (स०) डा० सत्यव्रत सिंह (१९६०) वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन।

रघुवंश, (१९६१) **नाट्यकला**, दिल्ली; नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

राजशेखर, **विद्धशालभञ्जिका**, (स०) रमाकान्त त्रिपाठी (१९६५) वाराणसी, चौखम्बा विद्या भवन।

——— बालरामायण, (स०) जीवानन्द विद्यासागर, (१८८८) कलकत्ता।

——— **कर्पूरमञ्जरी**, (स०) रामकुमार आचार्य (१९६३) वाराणसी, विद्याभवन।

रामचन्द्रगुणचन्द्र, **नाट्यदर्पण**, (स०) डा० नगेन्द्र, (१९६१) दिल्ली, हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय।

रुद्रचन्द्रदेव, **उषारागोदया**, (स०) बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, जबलपुर विश्वविद्यालय भाषा तथा शोध संस्थान।

रूपगोस्वामी, **नाटकचन्द्रिका**, (स०) बाबूलाल शुक्ल शास्त्री (१९६४), वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

लाल, लक्ष्मीनारायण (१९६५) **रंगमंच और नाटक की भूमिका**, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

वामन, **काव्यालंकारसूत्रवृत्ति**, (स०) आचार्य विश्वेश्वर शिरोमणि, (सं०) नगेन्द्र (१९५४) दिल्ली, आत्माराम एन्ड सन्स।

वाल्मीकीय रामायण (अनु०) रामनारायणदत्त (स० २०१७) गोरखपुर, गीता प्रेस।

विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण** (स०) शालग्राम शास्त्री (१९६१) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

——— **साहित्यदर्पण**, (स०) हेमचन्द्र भट्टाचार्य (१९३४ बंगाब्द) कलकत्ता

———**चन्द्रकला**, (सं०) बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, (१९६७) वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सिरीज।

विष्णुपुराण, (अनु०) श्री मुनिलाल गुप्त, गोरखपुर, गीता प्रेस।

वीरराघव, **मलयजाकल्याण** (स०) बाबूलाल शुक्ल शास्त्री जबलपुर, शोध संस्थान, जबलपुर विश्वविद्यालय

वेदव्यास, **महाभारत**, (स०) रामनारायणदत्त, शास्त्री गोरखपुर, गीताप्रेस।

शर्मा, एच, (१९२५) **पद्मपुराण और कालिदास**, कलकत्ता, कलकत्ता ओरियन्टल इन्स्टिटच्यूट।

शर्मा, गजानन, (१९७१) **प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी**, इलाहाबाद, रचना प्रकाशन।

शर्मा, चित्रा (१९६९) **संस्कृत नाटकों में समाज-चित्रण**, दिल्ली मेहरचन्द, लक्ष्मणदास।

शर्मा, द्वारका प्रसाद (१९५०) **संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ**, इलाहाबाद रामनारायण लाल।

शारदातनय, **भावप्रकाशन**, (स० १९३०) बड़ौदा, ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट।

शार्ङ्गदेव, **संगीतरत्नाकर**, (स० १९४५) वाराणसी, आनन्दाश्रम मुद्रणालय (चौखम्बा)।

शिङ्गभूपाल, **रसार्णवसुधाकर**, (स०) गणपति शास्त्री (१९१६) त्रिवेन्द्रम् गवर्नमेन्ट प्रेस।

——— कुवलयावली, (स० १९४१) त्रिवेन्द्रम, त्रिवेन्द्रम संस्कृत-सीरीज

शिवकवि, **विवेकचन्द्रोदय**, (स०) के०वी० शर्मा (१९६६) होशियारपुर, विश्वेश्वरा नन्द-संस्थान।

शुक्ल, रामलखन (१९७०) **संस्कृतनाट्यकला**, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

शूद्रक, **मृच्छकटिक**, (स०) हेमचन्द्र भट्टाचार्य (१८७८) कलकत्ता।

श्रीहर्ष, **रत्नावली**, (स०) कुमुदरंजनराय (१९४४) कलकत्ता।

———**रत्नावली**, (स०) रामचन्द्र मिश्र (१९६६) वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

श्रीहर्ष, **प्रियदर्शिका**, (स०) रामचन्द्र मिश्र (स०२०२१) वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन।

सहाय, राजवंश, (१९६७) **भारतीय काव्यशास्त्र का प्रतिनिधि सिद्धांत**, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन।

सागरनन्दी, **नाटकलक्षणरत्नकोष**, (स०) बाबूलाल शुक्ल (१९७२) वाराणसी संस्कृत सीरीज।

सिंह इन्द्रपाल (१९६०) **संस्कृत नाटक समीक्षा**, कानपुर, साहित्य निकेतन।

————(१९६७) **शृंगार रस की शास्त्रीय विवेचना**, वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

सोमदेव भट्ट **कथासरित्सागर**, अनु० (केदारनाथ शर्मा), (१९६१) पटना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।

हिन्दी विश्वकोष (१२), (स०) नागरी प्रचारणी सभा (१९७०) बनारस

हिन्दी साहित्य कोष (स०) धीरेन्द्र वर्मा आदि (स० २०१५) बनारस, ज्ञानमण्डल लिमिटेड ।

हेमचन्द्र, **काव्यानुशासन** (१९०१), बम्बई, निर्णयसागर प्रेस ।

Alteker, A.S.,(1956), **The Position of Hindu Civilization**, Banaras, Motilal Banarasidas.

Dasgupta, S.N. (1962), History of Sanskrit Literature (classical period), Calcutta, University of Calcutta.

De, S.K. (1960), History of Sanskrit Poetics, Calcutta, K. L. Mukhopadhyaya.

Devi, Ratnamayi (1964), **Women in Sanskrit Drama**, Delhi, Meharchand Lachhman Das.

Keith, A.B. (1920) **A History of Sanskrit Literature**, London, Oxford University.

Macdonell, A. A. (1958) **History of Sanskrit Literature**, Delhi, Munshi Ram Manoharlal.

Mankad, D.R., (1930) **Types of Sanskrit Drama**, University Praka shan Mandir, D. karavadu.

Mainkar, T.G. (1971), Studies in Sanskrit Dramatic Criticism.

Mukherjee, R.K. (1965) Harsha, Delhi, Motilal Banarasidas.

Maxmuller, **History of Ancient Sanskrit Literature**, (ed.), S.N. Sastri (1968)Varanasi, Chowkhamba Publications.

Rangacharya, A.(1967), **Drama in Sanskrit Literature**, Bombay Popular Prakashan.

Whitney, W.D., Sanskrit Grammar, (ed.), (1962) Delhi, Motilal Banarasidas

संकेत-सूची

OUR OTHER PUCLICATIONS

A Handbook of Genernal Linguistics, *Jha Brajendra* (*in Press*). Rs. 150.00.

Agricultural Price Policy & Stabilization Measures in India, 1983 *Singh L. S.* Rs. 150.00.

Agricultural Taxation in India 1986. Jha G. N. Rs. 135.00.

The Bhagvata Purana, 1984. *Prasad S. S.* Rs. 200.00.

Civilizational Regions of Mithila and Mahakoshal, 1982 *Jha Makhan* Rs. 120.00.

Dinkar Ki Urvashi (Hindi) 1982 *Ray R. N.* Rs. 65.00

Development of Small Scale Industries in Bihar 1984 *Akram S.* Rs. 150,00

Federal Finance in Developiug India, 1982 *Jha P. K.* Rs. 250.00

Financing of Indian Five year Plans 1986, *Sharma R. D. P.* Rs. 150.00.

Fundamental Rights and Constitutional Amendments, 1985, *Pandey R. D.* Rs. 150.00.

Humanistic Trends In Indian Ethics, 1986 *Sinha L. K.* Rs. 120.0

Indian Nationalism and External Forces, 1985 *Choudhary V.* Rs. 150.00.

Law of Karma, 1985 *Jha Nirmala* Rs. 100.00.

A New Reading of Paradise Lost, 1984 *Jha Brajendra*, Rs. 8.000

A New Reading of Paradise, Regained 1984 *Jha Brajendra*, Rs. 70.00.

Philosophy and Language, 1984 *Choudhary R.* Rs. 70.00

Poems from the Middle East, 1984, *Jha Brajendra*, Rs. 25.00

A Primer of Existentialism 1982, *Sinha M. N.* Rs. 40.00.

Problem of Unemployment 1982, *Roy P. K.* Rs. 120.00.

Prem Chand Kaleen Upanyason Mein Gramin Jeevan (Hindi) 1985 *Singh P. N.* Rs. 100.00.

Public Expenditure and Economic Development in Indai, 1983, *Singh* B. N. P. Rs. 120.00

Regulated Markets in India, 1983 *Singh L. P.* Rs. 135.00.

Relevance of Gandhism 1985, *Choudhary G. P.* Rs. 90.00.

Surathcharit Mahakavya : Ek Parishilan, 1984, *Jha Stish Chandra*, Rs. 100.00.

Sanskriti, Natika Vimarsh (Hindi) 1986, *Sinha Jaishri* Rs. 150.00

Transition in Textile Industry 1985, *Sinha A. K.* Rs. 120.00.

The Aesthetics of Tension, 1986 *Prasad P.* Rs. 100.00.

CAPITAL PUBLISHING HOUSE

DELHI—6